संयुक्त-प्रान्त, मध्य-प्रदेश और, बम्बई प्रान्तों के शिक्षा विभागों-द्वारा स्वीकृत

# शालोपयोगी भारतवर्ष

अथवा

## हिन्दुस्तान का संक्षिप्त इतिहास

प्रकाशक—
साहित्य भवन लिमिटेड
प्रयाग

मुद्रक—
के० पी० दर
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

# FOREWORD

(By G S Sardesai B A, Author of Musalmani, Marathi and British Riyasats)

---

Man is as he has made himself man will be as he will made himself This is a simple and self-evident proposition which explains the working of history through ages and supplies the basis of all education During my onerous but pleasant duties as a tutor to the sons of H H the Maharajah of Baroda, I was called upon to teach the subject of Indian History, and realising the need of a suitable text book on the subject, for the use of primary and secondary schools, leading up to the matriculation standard, I produced with that object, nearly thirty years ago, a work in Marathi, which has, as time went on, run into fifteen editions each embodying the results of my reading, travel and experience The book has now been largely used by students in the Bombay Presidency and has been spoken of, by experts and educationists, in such commendable terms, that I am now strongly persuaded to bring out its Hindi and Urdu versions, in the hope

that if it has any merits, they may be equally shared by the large number of Hindi and Urdu speaking students, in Central and Northern India

While I believe I have spared no pains in making this text-book, as up to date and compre hensive in its character, as its size and price would permit, I must put down a word of warning to all students and teachers, as a piece of my personal experience not to depend entirely upon any text-book as such, if they wish to obtain a real insight into the subject No single text-book can meet all the needs of school going students In History, as in other subjects of educative value, it is the effort of the student that counts, and not the actual output of information, compressed in a single volume, of limited scope A text book has, therefore, merely to be used as a useful guide, suggestive of the various channels of thought, and research, into which the students' efforts could be profitably directed and in this sense, I trust, my labours in the present production may prove of some help and guidance in this vital subject, which of all others possesses a nation-building importance

Time and space, which are the soul of history, will be found sufficiently marked throughout the

treatment and the arrangement of the subject The Source Method also by its means can be followed as much as possible, with the help of the illustrations and maps, supplemented by suitable questions from the teacher, so as to create interest for the student The geographical peculiarities of India, explained in the introductory lesson and the chronological chart of the world's celebrities should be clearly noted and supplied by the teacher, so as to lead the student ultimately to view the world's history as a comprehensive whole

The book being originally meant for Marathi students only, naturally contained such feature as would appeal to their environment, in the peninsular part of India In this Hindi edition, however, I have tried, as far as I could to bring in the special features of the North Indian History, through the various stages Indeed, in the present atmosphere of the constitutional reforms what the student needs to realise most, is the prominent idea of a united India of the future, in which all the harmful provincialisms will have to be specially eleminated Let us hope this subject of national history will be helpful in the achievement of this much desired unity of India

# सर देसाई रचित

# शालोपयोगी भारतवर्ष

अर्थात्

## भारत का संक्षिप्त इतिहास

### अनुक्रमणिका



## प्रथम भाग—प्राचीन भारत

### पहला अध्याय

### प्राचीन काल

## दूसरा अध्याय

### बौद्ध काल—ई० स० पू० ६००-३२३



## तीसरा अध्याय

### हिन्दू-साम्राज्य—काल ई० स० पू० ३२२—ई० स० ७१०



## चतुर्थ अध्याय

### माडलिक राज्यों का प्रसार—ई० स० ६०० ११९३



# दूसरा भाग—मुस्लिम शासन-काल

## पहला अध्याय

### पठानों का शासन—सन् ९९९-१५२७

## दूसरा अध्याय

### मुगल वंश



## तृतीय अध्याय

### पराक्रमी अकबर



## चतुर्थ अध्याय

### जहाँगीर और शाहजहाँ

## दूसरा अध्याय

### बौद्ध काल—ई० स० पू० ६००-३२३



## तीसरा अध्याय

### हिन्दू-साम्राज्य—काल ई० स० पू० ३२२—ई० स० ५१०



## चतुर्थ अध्याय

### माडलिक राज्यों का प्रसार—ई० स० ६०० ११९३



# दूसरा भाग—मुस्लिम शासन-काल

## पहला अध्याय

### पठानों का शासन—सन् ९९९-१५२५

## दूसरा अध्याय

### मुगल वंश



## तृतीय अध्याय

### पराक्रमी अकबर



## चतुर्थ अध्याय

### जहाँगीर और शाहजहाँ

## ग्यारहवाँ अध्याय

### नारायणराव और सवाई माधवराव



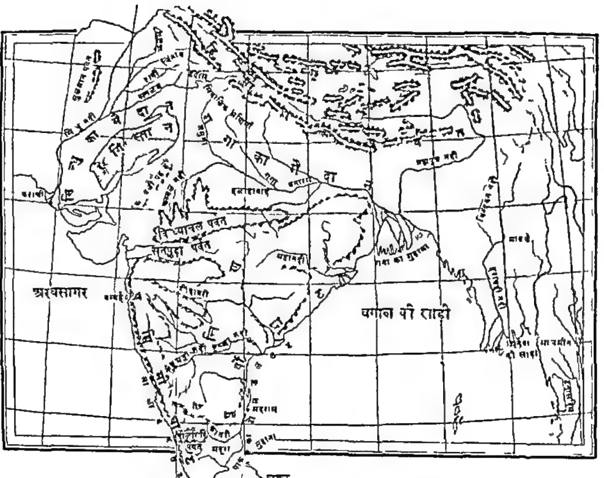
## बारहवाँ अध्याय

### छत्रपति द्वितीय शाहू, पेशवा द्वितीय बाजीराव



## तेरहवाँ अध्याय

### महाराष्ट्र शक्ति का अंत


अरबसागर
सतपुड़ा पर्वत
इलाहाबाद
कराची

# शालोपयोगी भारतवर्ष

अर्थात्

# भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास

## १—भौगोलिक स्थिति

कोई भी देश क्यों न हो, उस देश की भौगोलिक स्थिति का असर उस देश के इतिहास पर जरूर पड़ता है। इसलिए बिना भारत का भूगोल भली भाँति समझे यहाँ के इतिहास की घटनायें ठीक तरह समझ में नहीं आ सकतीं। यह भारत का भूगोल उस विषय की पुस्तक से अलग समझना चाहिए। यहाँ इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली केवल आवश्यक भौगोलिक बातें ही दिखाई जायँगी।

१—भारत एक बहुत लम्बा-चौड़ा देश है। यद्यपि यह एशिया का ही एक खंड है, तो भी एशिया के अन्य खंडों से, समुद्र और पर्वतों के बीच में आजाने से, यह बिलकुल अलग है, अर्थात् उन देशों का आदमी भारत में नहीं आ सकता। केवल पश्चिमोत्तर-सीमा में बाहर से आने के लिए कुछ इने गिने दुर्गम पहाड़ी मार्ग हैं।

२—समुद्र की यात्रा आज कल जैसी सरल न थी। परन्तु इधर दो-चार सौ वर्षों से भारत के जल मार्ग भी खुल गये हैं।

३—भारत के समुद्री किनारों पर अनेक बन्दरगाह हैं। ये भारत के प्रवेश द्वार हैं। ऐसे बन्दरगाह पश्चिम-तट पर अनेक हैं, लेकिन पूर्वी तट पर बहुत कम मिलते हैं और वे भी पश्चिमी बन्दरगाहों के समान अच्छे नहीं हैं।

४—व्यापार की सुविधा के लिए पूर्व काल में बड़े बड़े नगर केवल बड़ी बड़ी नदियों के किनारे बसाये जाते थे। लेकिन योरपीयों के भारत में आने से बड़े बड़े जहाजों के सुभीते के लिए कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, करांची इत्यादि नगर व्यापार की दृष्टि से बड़ी मंडी बन गये हैं। इसीलिए ये बड़ी बड़ी रेल्वे लाइनों के केन्द्र बनाये गये हैं।

५—खम्भात की खाड़ी से लेकर महानदी के मुहाने तक जो जंगल पश्चिम से पूर्व तक फैला हुआ है उसके बीच में विन्ध्याचल पहाड़ की श्रेणी है। इस श्रेणी ने भारत को उत्तर और दक्षिण—इन दो भागों में बाँट दिया है। भारत के ये दो विभाग बहुत प्राचीन काल से माने जाते हैं। प्राचीन काल में यह जंगल इतना सघन था कि इसको पार करना बड़ा कठिन काम था।

६—उत्तर भारत एक लम्बा-चौड़ा मैदान है। इस भाग में सिन्धु और गंगा दो बड़ी नदियाँ तथा इनकी अनेक सहायक नदियाँ बहती हैं, जिससे यह देश बड़ा उपजाऊ बन गया है। इसी देश को पहले 'आर्यावर्त' कहते थे, यहीं 'आर्य-सभ्यता' की उन्नति हुई थी। इसलिए इन नदियों की रचना और देश पर पड़नेवाले प्रभाव की बात जाननी और समझनी जरूरी है।

७—भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत माला है और दक्षिण में

अगाध भारत-महासागर है। इसलिए उत्तर-भारत में निश्चित रूप में वृष्टि होती है। उपजाऊ भूमि और सिंचाई के लिए जल सुलभ होने से इस देश का मुख्य धंधा खेती है। अन्य धंधे इसी के सहारे पनपते हैं।

८—अनुकूल जलवायु, उपजाऊ भूमि और उद्योगशील तथा बुद्धिमान लोगों के बसने से यह देश पूर्व काल में ही अपार सम्पत्ति का घर बन चुका था। यहाँ अनेक विद्याओं तथा कलाओं की उन्नति हुई। इसीलिए यह सारे संसार में इतना प्रसिद्ध हो गया कि विदेशों की दृष्टि इसी पर गड़ गई।

९—भिन्न भिन्न प्रकार के जल-वायु, फल-फूल, वनस्पतियाँ, पक्षी एवं अन्य प्राणी, खनिज-सम्पत्ति इत्यादि सभी इस देश में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इसलिए पश्चिमी तट के बंदरगाहों पर विदेशों के जहाज इन चीजों को लेने के लिए आते थे। इससे यहाँ का व्यापार बहुत चढ़ा-बढ़ा था। इस व्यापारिक उन्नति के कारण ही इसे लोग 'सुवर्ण-भूमि' कहते थे। श्रीकृष्ण की सोने की द्वारका-नगरी और सुदामा को दी गई सोने की सुदामापुरी (पोरबंदर) की कथायें उस समय का वैभव आज भी हमें बताती हैं।

## २—स्थल-निर्देश

आज-कल रेल-पथों के खुल जाने से यात्रा के प्राचीन कालीन मार्ग और लड़ाई तथा प्रबंध के स्थानों का महत्व कुछ भी नहीं रह गया। इसलिए पहले की घटनाओं को यथावत् समझने के लिए उस समय की स्थिति को ध्यान में रखना जरूरी है। हिमालय-पर्वत श्रेणी के दक्षिण का भूभाग गंगा की ओर दक्षिण में ढालू

होगया है। पजाव मे भूमि दक्षिण ओर करॉची तक ढालू होती चली गई है। इसीलिए पंजाब की सभी नदियाँ दक्षिण की ओर मुँह करके वहती हैं। लेकिन सतलज और यमुना के वीच का मैदान थोड़ा ऊँचा होगया है। इसलिए दिल्ली से पूर्व यमुना और गंगा पूर्व की ओर वहती हैं। और दक्षिण की ओर से मालवे के पठार से निकल कर चम्बल, वेतवा, केन यमुना में और कर्मनाशा और सोन गगा मे आकर मिलती हैं। अर्थात् मालवा का भूभाग ऊँचा होगया है और वह उत्तर की ओर ढालू है। साराश यह

गा-यमुना का प्रवाह-मार्ग वहुत नीचा है। इसलिए पूर्व-काल में यह मार्ग यात्रा के लिए अधिक सुभीते का था। पहले इसी मार्ग पर वड़े वड़े क़िले और मोर्चे वने थे। यहाँ के कन्नौज, आगरा, कालिंजर, इलाहावाद, जौनपुर, चुनारगढ, रोहतासगढ, वक्सर, मुङ्गेर इत्यादि अनेक स्थानों का उल्लेख मुसलमानी शासन-काल के तथा उसके वाद के इतिहास में वारवार हुआ है। भागलपुर के आगे गंगा-नदी राजमहल की पहाड़ियों से टकरा कर मणिहारी के पास मुड़ कर दक्षिण-वाहिनी हो जाती है। उस स्थान से उसका वंगाल का मार्ग शुरू होता है। इसी से पूर्व-काल में जो सेनाएँ लड़ने के लिए वहाँ जाती थीं उन्हें इसी राह से होकर जाना पड़ता था।

# ३—पृथिवी का क्षेत्र-फल और जन-सख्या

## (वर्ण और धर्म)

| देश | क्षेत्रफल वर्ग मील | जन-सख्या | पृथिवी भर की वर्ण-सख्या | |
|---|---|---|---|---|
| ग्रेट ब्रिटेन व आयर्लैंड | १ ला० २१ ह० | ४ क० ७० ला० | गोर (काकेशियन) | ७७ करोड़ |
| इतर ब्रिटिश राज्य | १ क० २५ ला० | ३९ क० ८५ ला० | पीत (मगोलियन) | ५४ करोड़ |
| ब्रिटिश साम्राज्य का योग | १ क० २७ ला० | ४४ क० ५५ ला० | कृष्ण (इथिओपियन) | १७॥ करोड़ |
| ब्रिटिश भारत | १० ला० ९३ ह० | २४,६९,९७,११२ | ताम्र (अमरीकन) | २ करोड़ २० ला० |
| भारतीय राज्य | ७ ला० ० ह० | ७,१२,३९,०८९ | | ५० करोड़ ७० ला० |
| कुल भारत | १८ ला० २ ह० | ३१,८९,३६,२०१ | कुल जोड़ | |
| योरप | ३७ लाख | ३८ करोड़ | पृथिवी भर के धर्म | सख्या |
| एशिया | १६८ लाख | ८० करोड़ | ईसाई | ४७ करोड़ |
| अफ्रीका | १२० लाख | २० करोड़ | बौद्ध | ४२ करोड़ |
| अमरीका | १६५ लाख | १२ करोड़ | हिन्दू | २१ करोड़ |
| आस्ट्रेलिया | ३० लाख | | मुसलमान | २० करोड़ |
| कुल पृथिवी | ५२० लाख | १५० कोटि | यहूदी | ८० लाख |
| पानी का भाग | १४५० लाख | ? | अन्य | २० करोड़ |
| पृथिवी | १९७० लाख | | कुल योग | १५० क० |

# ४—भारत की जन-संख्या

## (१) प्रान्तानुसार

### ( सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार )

| प्रान्त | संख्या | देशी रजवाड़े | संख्या |
|---|---|---|---|
| बङ्गाल | ४,६६,९५,५३६ | हैदराबाद | १,२४,७१,७७० |
| संयुक्त प्रान्त | ४,५३,७५,७८७ | मैसूर | ५९,७८,८९२ |
| मद्रास प्रान्त | ४,२३,१८,९८५ | ट्रावंकोर | ४०,०६,०६२ |
| बिहार और उड़ीसा | ३,४०,०२,१८९ | काश्मीर | ३३,२०,५१८ |
| पञ्जाब | २,०६,८५,०२४ | ग्वालियर | ३१,८६,०७५ |
| बम्बई प्रान्त | १,९३,४८,२१९ | बड़ोदा | २१,२६,५२२ |
| ब्रह्मदेश | १,३२,१२,१९२ | राजपूताना | ९९,४४,३८४ |
| अन्य सब | २,५२,५९,१८० | अन्य सब | ३,०९,०४,८६६ |
| कुल ब्रिटिश भारत | २४,६९,९७,११२ | कुल देशी रजवाड़े | ७,१९,३९,०८९ |

कुल भारत ३१,८९,३६,२०१—पुरुष १६,३९,९१,१४१, स्त्रियाँ १५,४९,४५,०६०

## (२) भारत की धर्मानुसार जन-संख्या

### ( सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार )

| | | | |
|---|---|---|---|
| हिन्दू* | २१,६७,३४,५८६ | ईरानी (पारसी) | १,०१,७७ |
| सिख | ३२,३८,८०३ | मुसलमान | ६,८७,३५,२ |

* अस्पृश्य जातियों की जन-संख्या अनुमान से ५ करोड़ है ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| जैन | ११,७८,५९६ | ईसाई | ४७,५४,०७९ |
| बौद्ध | १,१५,७१,२६८ | जङ्गली | ९७,७४,६११ |
| यहूदी | २१,७७८ | इतर | १७,१८९ |
| | | कुल योग | ३१,६१,२८,७२१ |

## ( ३ ) भारत के नगरों की जन-संख्या

### ( सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार )

| | | | |
|---|---|---|---|
| कलकत्ता | १३,२७,५४७ | नागपुर | १,४५,१९३ |
| बम्बई | ११,७५,९१४ | श्रीनगर | १,४१,७३५ |
| मद्रास | ५,२६,९११ | मथुरा | १,३८,८९४ |
| हैदराबाद (दक्षिण) | ४,०४,१८७ | बरेली | १,२९,४५९ |
| रंगून | ३,४१,९६२ | मेरठ | १,२२,६०६ |
| दिल्ली | ३,०४,४२० | त्रिचनापली | १,२०,४२२ |
| लाहोर | २,८१,७८१ | जयपुर | १,२०,२०७ |
| अहमदाबाद | २,७४,००७ | पटना | १,१९,९७६ |
| लखनऊ | २,४०,५६६ | ढाका | १,१९,४५० |
| बगलोर | २,३७,४९६ | सूरत | १,१७,४३४ |
| कराँची | २,१६,८८३ | अजमेर | १,१३,५१२ |
| कानपुर | २,१६,४३६ | जबलपुर | १,०८,७९३ |
| पूना | २,१४,७९६ | पेशावर | १,०४,४५२ |
| बनारस | १,९८,४४७ | रावलपिण्डी | १,०१,१४२ |
| आगरा | १,८५,५३२ | बड़ोदा | ९४७१२ |
| अमृतसर | १,६०,२१८ | इन्दौर | ९३,९५१ |
| इलाहाबाद | १,५७,२२० | मेसूर | ८३,९५१ |
| मंडाले | १,४८,९१७ | ग्वालियर | ८०,३८७ |

## ५—विद्यार्थियों के लिए काल-परिज्ञान

चाहे किसी भी देश का इतिहास हो, उसका कुछ न कुछ सम्बन्ध समस्त ससार के इतिहास से अवश्य रहता है। इसलिए प्राचीन काल की घटनाएँ किस प्रकार घटित हुईं और बाद को उनका किस तरह विभाग हुआ, यह समझने और उनका स्मरण रखने के लिए मुख्य मुख्य घटनाओ की समय-सूचक सूची की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए नीचे दी हुई समय-सूचक सूची के भारत के इतिहास के साथ साथ ध्यान में रक्खे जाने से ससार में होनेवाले भिन्न भिन्न स्थानों के समकालीन प्रसिद्ध व्यक्ति तथा घटनाएँ विद्यार्थी की समझ में आ जायँगी। इस पाठ के प्रारंभ का कुछ अंश एच० जी० वेल्स की पुस्तक से लिया गया है। इसके अलावा बहुत सी बातों का काल निर्णय अभी नहीं हुआ है।

### ईसवी सन् के प्रारम्भ होने से पूर्व की घटनाएँ

३० हजार—वर्त्तमान ससार का पहला पूर्ण मनुष्य फ्रास-स्पेन की भूमि में तैयार हुआ। इसके बाद का युग प्राचीन पाषाण-युग कहलाता है। सभी मानव-जातियों की उत्पत्ति एक ही स्थान में नहीं हुई। जल-वायु के योग से और अन्य पोषक सुविधाओं के योग से पृथिवी के अनेक भागों में भी मानव जाति की उत्पत्ति हुई।

१० हज़ार—नवीन पाषाण-युग—खेती करने तथा जानवरों के पालने का प्रारम्भ, जोतना, पेरना, काटना, ढलना, टोकरी इत्यादि बिनना, काठ के हल व चरखे, मढी हुई

छोटी नावें काम में लाना, देवता के संतोष के लिए मनुष्य की बलि देना इत्यादि बातों का प्रारम्भ।

७ से ६ हजार—पश्चिमी एशिया और मिस्र में दीवारों से घिरे हुए नगरों का बसाना, विशेषत मेसोपोटामिया या ईराक़ में उनके कपड़े बिनने का प्रारम्भ, मछली पकड़ने के लिए नावों का बनना।

५ से ४ हजार—दजला (Tigris) और फ़ुरात (Euphrates) नामक नदियों के बीच के प्रदेश सुमेरिया तथा नील-नदी के तट पर मिस्र देश में ज्यामिति विद्या की उत्पति, अन्य विषयो में सुधार, आर्यो के वेद, गीता इत्यादि ग्रन्थों का समय। ४२४१ मिस्र की वर्ष-गणना का आरम्भ।

४ से ३ हजार—मिस्र-देश म पिरामिद का निर्माण। अयोध्यापति श्रीरामचन्द्र का समय। सुमेरिया में नहरों का बनना (सिन्धप्रान्त में माहेंजोदारो और मुलतान के पास हरापा नाम के दो प्राचीन नगरो का पुरातत्त्वविदों द्वारा हाल में पता लगा है, उनके खडहरों से उनकी मूल रचना ईसाई सन् से पूर्व तीन हजार वर्ष प्राचीन सुमेरियन के समकालीन अनुमान की गई है। इस सम्बन्ध में अभी मत बदलना सम्भव है) रेशमी वस्त्र का उपयोग चीन मे होने लगा।

३१०१—युधिष्ठिर के संवत्सर का प्रारम्भ।

२७५०—सुमेरिया का पहला राजा सार्गन।

२५००—असीरियाई साम्राज्य की स्थापना। आर्यो की पूर्व बस्ती कैस्पियन समुद्र के पास से पश्चिम की ओर योरप में ड्राइन नदी के तट तक थी। वहाँ से उनका आग्नेय

कोने से उत्तर-अफगानिस्तान के मार्ग द्वारा भारत में प्रवेश। दक्षिण में ईरान और पश्चिम में बाल्कन प्राय द्वीप से होकर इटली में आर्यों को तीन शाखाओं का प्रयाण। भारतीय युद्ध ३०००—२५००० के बीच में। वराहमिहिर इस युद्ध का समय २४४८ वाँ वर्ष बताता है।

२०००—१५००—आर्यों की उन्नति। गेहूँ, लोहा, और घोड़ों का व्यवहार।

१६००—मिस्र में फेरोह राजा का ऐश्वर्य उसका असीरिया वालो के साथ युद्ध।

१५००—१०००—असीरिया और बेबीलोनिया में सुधार की बाढ़, यहूदी धर्म संस्थापक मोज़ेज (मूसा) का समय, कपड़ा, लोहा तथा काँच का उपयोग होना और लोगों का रहन सहन लगभग आज-कल जैसा समृद्धिपूर्ण होना। भारत में आर्यों के ऋग्वेद की ऋचाओं का संग्रह होना और उनका जीवन सुसम्पन्न बनना, उपनिषदों की रचना। पेलेस्टाइन-देश में यहूदी लोगों के पूर्वज अब्राहम के वंश का उदय।

१०००—९६०—हिब्रू राजे डेविड और सालोमन का जेरुसलम में शासन।

१०००—८००—ग्रीक जाति का उत्तर में विस्तार, भारत में आर्यों का आग्नेय में विस्तार, मिस्र का उद्धार और वहाँ की लिपि का विकास।

८००—सिसली के सामने उत्तर-अफ्रीका के तट पर कार्थेज नगर की उन्नति। इसकी जन-संख्या १० लाख थी। पारसी जरथोस्ती धर्म के संस्थापक जरथोस्त का समय

७५३—रोम-नगर की स्थापना।
७४५ से ६७०—असीरिया की उन्नति और उसका मिस्र पर अधिकार।
८००—७००—व्यास के भारत ग्रन्थ की पहली रचना। पाणिनि का जीवन काल। होमर-द्वारा इलियट व ओडेसी की रचना।
६०६—वैवीलोन के खाल्डिया लोगों ने असीरिया जीता।
६०६—५३९—खाल्डिया की उन्नति, इष्टका-लेख के ग्रन्थ।
६००—चीनी धर्म संस्थापक लाओत्ज़ ( Laotse )।
६००—५००—ग्रीक सभ्यता और तत्त्व ज्ञान का उदय काल।
५५१—४७८—चीन के धर्म शास्त्रकार और प्रधान नेता कन्फ्यूशस का जीवन काल।
५४७—४६७—जैनाचार्य महावीर वर्धमान।
५८२—५५४—राजा बिम्बसार, ५३८ में ईरानी शाह साइरस ने खाल्डिला जीता।
५६७—४८७—गौतम बुद्ध
५०० ४००—ईरान के बादशाह डेरियस का विस्तृत साम्राज्य, उसने मिस्र और सीरिया जीता। घोड़े और रथों का व्यवहार एवं साम्राज्य में मार्गों का तैयार होना। ऊँटों और गधों का पहले का उपयोग बन्द, सिक्कों का प्रचार और व्यापार की वृद्धि। उसकी राजधानी सूसा (बगदाद के समीप पूर्व की ओर), सांख्यकार कपिल इस शताब्दी में हुए।
४९०—माराथान की लड़ाई में ग्रीकों द्वारा डेरियस की हार।
४८९—डेरियस के पुत्र जर्ज़ीस का ग्रीकों के द्वारा प्लाटिया में पराभव।
४६६—४२८—पेरिक्लीज का शासन, एस्केलीस, साफोक्लीज और युरिपिडस के ग्रन्थों की रचना।

४३९—हिरोडोटस के पहले इतिहास की रचना। वाल्मीकि रामायण की रचना।

४२३ ३४७—प्लेटो और अरिस्टाटल, व्याकरणकार वररुचि और कात्यायन।

४००—बायवल का प्राचीन भाग तैयार हुआ, होका-यन्त्र का उपयोग चीन-देश में प्रारम्भ हुआ। वैशेपिककार कणाद का जीवन-काल।

८००-३००—३३६-३२३—बादशाह सिकन्दर।

३१२-२९०—सेल्यूकस (बैक्ट्रिया का राजा)

३९९—साक्रेटीज का वध।

३२२ २९८—चन्द्रगुप्त मौर्य और आर्य चाणक्य तथा उसका अर्थ शास्त्र, जैमिनी की पूर्वमीमांसा, बादरायण व्यास।

२७२ २२६—चक्रवर्त्ती अशोक।

२१४—चीन की दीवार और अजंटा की गुफा का निम

१५०—महाभाष्यकार पतंजलि और मनुस्मृति।

१४६—कार्थेज का विध्वस।

१००—चीनी इतिहास का सुमाचियेन।

५६—विक्रम-सवत् का आरम्भ, जूलियस सीजर ने इंगलैंड जीता।

४४—ज्यूलियस सीजर का वध।

२७-१४—आगस्टस सीज़र।

## ईसवी सन् के प्रारम्भ होने के बाद की घटनाये

१—क्राइस्ट-वर्ष-गणना का आरम्भ, क्राइस्टोत्तर काल

१—१००—पुरुषपुर अर्थात् पेशावर के राजा कनिष्क का शासन-काल, उनका राजवैद्य चरक, नैयायिक गौतम, सेनापति येग्रिक्येला का इङ्गलैंड जीत कर दीवार बनाना, ग्रीस के ज्यामितिकार यूक्लिड का समय।

७८—शालिवाहन शक का प्रारम्भ।

१०० २००—बुद्धचरित्रकार अश्वघोष।

११७—रोमन साम्राज्य की उन्नति की चरमावस्था, बादशाह ट्रेजन की मृत्यु, हेड्रियन का राज्यारोहण।

१२०—ज्योतिषी टॉलेमी का जीवन काल।

२००—विष्णु-स्मृति, कवि भास, सुश्रुत।

३५०—याज्ञवल्क्य, मुद्राराक्षस के लेखक विशाखदत्त का जीवन-काल।

१६१-१८०—मार्कस आरेलियस।

७३ २२५—पैठण का शालिवाहन वंश, भाजे, कार्ले, नासिक, कान्हेरी इत्यादि गुफाओं का बनना।

३१२ ३३७—सम्राट् कान्स्टेंटाइन दि ग्रेट की ईसाई धर्म में दीक्षा।

३०० ४००—कवि कालिदास का जीवन काल, बुद्ध धर्म का चीन में प्रवेश, वाग्भट।

३२०-५१०—गुप्तवंश, मगध के पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, (३७५ ४१३) विद्या-कला का परमोत्कर्ष, अजंटा, सारनाथ, देवगढ इत्यादि में गुफ़ाओं का बनना,

३५०—वेरूल की गुफा।

३५०—बीज गणित का यूरोप में व्यवहार, ३९९ ४१४ फाहियान की भारत-यात्रा।

४७६—बीज-गणित का प्रथम रचयिता आर्यभट्ट, ४९५ ५८७ वराहमिहिर।

४००-५००—मृच्छकटिक का रचयिता शूद्रक, पंचतंत्रकार विष्णु शर्मा।

५०० ६००—अमरकोपकार अमरसिंह, नाट्य-शास्त्रकार भरत।

५२७-५६५—जस्टिनियन (पराक्रमी रोमन बादशाह), भारवि का किरातार्जुनीय।

६००-७००—

६००—धन्वन्तरि

५७७-६३२—मुहम्मद पैगम्बर

५९८—ब्रह्मगुप्त

६२९-६४८—हुएन्सॅग की यात्रा, मध्य-एशिया में उद्यान खोतान में संस्कृति का उत्कर्ष

६११-६४२—अजंटा की गुफा

६५०—भर्तृहरि व शिशुपालवध का कर्त्ता माघ कवि

६०६-६४७—कन्नोज का श्रीहर्ष, उसके राज-पंडित बाणभट्ट और धावक।

६०८-६४२—दक्षिण में बादामी के चालुक्य पुलकेशी

इस शताब्दी में मिस्र, ईरान, सीरिया, मध्य-एशिया, उत्तर अफ्रीका इत्यादि देशों को मुसलमानों ने जीता। चीनदेश में कागज का व्यवहार ईसवी सन् से पूर्व ही ज्ञात होगया था। चीन का कागज इस शताब्दी में योरप गया।

७००-९००—

७००-७५०—कुमारिल भट्ट

७१५—दमिश्क का खलीफा वलीद, चीन की पश्चिमी सीमा से स्पेन तक इसके राज्य का विस्तार।

७११—अरब लोगों का स्पेन और सिन्ध में प्रवेश

७३० ७४०—कन्नौज का यशोवर्मा, दण्डी और भवभूति।

७३२—फ़ांस में टूर्स में चार्ल्स मोर्टेल द्वारा मुसलमानों की हार।

७४८ ९७३—मालखेड़ का राष्ट्रकूट-वंश।

७६०—वेरूल के कैलास की गुफा तैयार हुई।

७५४ ७७५—ख़लीफा अलमसूर } अरेबियन नाइट्स नामक
७८६-८०९—ख़लीफा हारूँ रशीद } ग्रन्थ के नायक।

७६८-८१४—मध्य-यूरोप में शार्लमेन बादशाह का शासन काल।

७८८-८२०—आदि-शंकराचार्य।

७०४—धारापुरी की गुफा।

७९३-८१३—राष्ट्रकूट-वंशी तीसरे गोविन्द ने दक्षिण से जाकर कन्नौज तक का देश विजय किया।

८१५-८७७—राष्ट्रकूट वंशी राजा अमोघवर्ष का जीवनकाल। अरब प्रवासी सुलेमान इस राजा की गिनती संसार के चार बड़े राजों में करता था। इस राजा के समकालीन राजे—बंगाल का राजा धर्मपाल, और उसका पुत्र देवपाल पाटलिपुत्र ( पटना ) में पराक्रमी और यशस्वी राजे हुए।

८७१ ९०१—इङ्गलैंड के राजा अल्फ्रेड। जावा में बोरुबुडूर के प्रचंड बुद्ध-जैन देवालय की स्थापना।

९००-१०००—

९३२—मुंजाल नामक आर्य-ज्योतिषी।

९६७—गज़नी की स्थापना।

२८३—मैसूर में श्रवणबेलगोला स्थान में धर्मगुरु गोमत की ५६॥ फ़ुट ऊँची भव्य मूर्ति तैयार की गई।

१००० ११००—

९८४ १०१०—राजराज चोला ने तंजोर का मन्दिर निर्माण

किया, उसके लड़के राजेन्द्र चोल ने ब्रह्मदेश के पेगू प्रान्त को जीता।

९९९-१०३०—महमूद ग़ज़नवी, अल्बेरुनी।

१०२५—सोमनाथ का मन्दिर ध्वंस हुआ।

१०१० १०५३—धार का राजा भोज।

१०६६—नर्मांडी के विलियम ने इंग्लैंड जीता।

११००—अनन्तवर्मा चोल ने जगन्नाथपुरी का मन्दिर बनाया।

११००-१२००—

१०७६-११२६—विक्रमादित्य चालुक्य और उसका प्रधान धर्म-शास्त्रकार विज्ञानेश्वर।

११७०—नैषधकार श्रीहर्ष कवि।

११९९—मध्वाचार्य।

१११४ ११८४—भास्कराचार्य।

१११९—गीतगोविन्दकार जयदेव।

१०९५-१२६२—ईसाइयों और मुसलमानों का धर्मयुद्ध।

११५०—रामानुज।

११५९-११९३—पृथिवीराज चौहान।

११६०-११६७—बसवा का लिंगायत पंथ।

१२००-१३००—

९००-१३००—देशी भाषाओं का उदय, संस्कृत का परमोत्कर्ष

११७६-१२०६—मुहम्मद ग़ोरी।

११७८—जैन पंडित हेमचन्द्र सूरि की मृत्यु।

११७९-१२१७—गुजरात में भीमदेव का शासन काल।

११६३ १२२७—चंगेजखाँ मुग़ल।

१२१०—कुतुब मीनार का निर्माण।

१२१५—किंग जान द्वारा लोगों को मेग्नाचार्टा मिलना।

१२१० १२४७—सिंघण यादव शिखर (शिंगनापुर का संस्थापक)।

१२७२—महानुभाव चक्रधर।

१२७१ १२९५—मार्को पोलो की यात्रा।

१२९६-१३९६—अलाउद्दीन खिलजी, रामदेवराव यादव, ज्ञानदेव, हेमाद्रि और हेमाडपत।

१३००-१४००—

१३२५-१३५९—मुहम्मद तुग़लक।

१३३६—विजयनगर की स्थापना।

१३४७—बहमनी राज्य की स्थापना।

१३५०—नामदेव।

१३३५-१४०५—तैमूर लंग।

१३४०-१३८७—माधवाचार्य और सायणाचार्य।

१४०० १५००—

१३८० १४२०—कबीर।

१४११—रामानंद की मृत्यु।

१३९४ १४६०—नौका-शास्त्रवेत्ता हेनरी के सुधार।

१४५५ १४८५—वार्स आफ दि रोजेज।

१४३१—जोन आफ आर्क की मृत्यु।

१४५२-१४९८—ईसाई धर्म सुधारक सावानरोला

१४२४ १४४७—विजयनगर का देवराय।

१४५३—सुल्तान मुहम्मद (द्वितीय) ने कुस्तुन्तुनियाँ जीती। बारूद का प्रयोग।

१४६८-७५—दुर्गादेवी की मृत्यु, दामाजीपत।

१४८५-१५३३—चैतन्य का जीवनकाल।

१४५०—मुद्रणकला की उन्नति। चीन में इस कला का उदय

इसके आगे दो शताब्दियों के वृत्तान्त विद्यार्थियों को इस पुस्तक में विस्तार से मिलेंगे, इसलिए उनकी समय-सूची उन्हें अपने प्रयत्न से बनानी चाहिए। जैसे सन् १७०७ में औरंगज़ेब की मृत्यु, शाहू का छुटकारा, इंग्लैंड व स्काटलैंड का एकतंत्रीकरण ( Scottish Union ), सन् १७४८ में निज़ाम व मुहम्मदशाह की मृत्यु, अगले वर्ष में शाहू की मृत्यु, अब्दाली का भारत में आना। इसी प्रणाली से सन् १७६१ में पानीपत का युद्ध, सन् १७७६ में अमरीका में स्वातन्त्र्य स्थापन, सन् १७८२ में सालबाई व पैरिस की संधियाँ और अँगरेज़ों की अनेक विजयें; सन् १७८९ में फ़ासीसी राज्य-क्रान्ति। उसी प्रकार इधर के अनेक वैज्ञानिक शोध इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण बातें ध्यान में रखनी आवश्यक हैं।

---

"Whosoever commands the sea, commands the trade, commands the riches of the world, and consequently the world itself"

—Raleigh

---

# प्रथम भाग

## प्राचीन ऐतिहासिक काल

( ई० स० १०० तक )

## पहला अध्याय

### प्राचीन काल

ऐतिहासिक युग निर्णय—ऐतिहासिक खोज—प्राचीन वेद, रामायण और महाभारत

(१) ऐतिहासिक विभाग—पृथिवी के अन्य समस्त राष्ट्रों की अपेक्षा भारतीय राष्ट्र अत्यन्त प्राचीन है। इसके बराबर का पुराना प्रौढ़ राष्ट्र केवल चीन का है। मिस्र (इजिप्त), वेबिलोनिया, असीरिया इत्यादि राष्ट्र भी प्राचीन काल के ही हैं। लेकिन इनमें से एक भी इस समय वर्त्तमान नहीं हैं। भारत या हिन्दुस्तान का प्राचीन नाम आर्यावर्त्त है—आर्यों का आवर्त्त अर्थात् निवास-भूमि। यहाँ जिस समय आर्य आकर बसे, उन्होंने इसे अपना देश माना। इसलिए इस देश का प्राचीन नाम आर्यावर्त्त है। प्राचीन समय में इस देश में भरत नामक एक बड़ा प्रतापी राजा हो गया है। इस राजा के नाम से भी यह देश भारतवर्ष कहलाया। "वर्ष"

संस्कृत-शब्द है। इसका अर्थ देश है। इसके अतिरिक्त इस देश में जो लोग प्राचीन काल में आये उन्हें सिन्धु-नद पार करना पड़ा था। इसलिए सिन्धु के उस पार अर्थात् इस देश के बाहर के लोग इसे सिन्धु-नद के किनारे का देश अर्थात् "हिन्दुस्तान" कहते हैं। "हिन्दु" शब्द "सिन्धु" का अपभ्रंश है और "स्तान" फारसी भाषा में भूमि को कहते हैं। इसलिए इस देश का नाम विदेशियों ने हिन्दुस्तान या "हिन्द" रक्खा। इस नाम से यह देश अब भी पुकारा जाता है। अँग्रेजी भाषा में इस देश का नाम "इण्डिया" है। यह शब्द हिन्द से "इन्ड" बन कर "इण्डिया" होगया है। आज-कल भारतवर्ष की जो राज्य सीमा है उसमें भारत के अतिरिक्त अन्य देश भी सम्मिलित हैं। इसलिए यह देश "इंडियन एम्पायर" अर्थात् "भारतीय साम्राज्य" के नाम से भी पुकारा जाता है।

विद्या, वैभव, विक्रम, धर्म इत्यादि सभ्यता मूलक विषयों में प्राचीन काल से ही यह देश अन्य देशों से अधिक चढ़-बढ़ कर रहा है। इसलिए प्रारम्भ में अनेक प्रकार के सुधारों का विदेशों में प्रचार इसी देश के द्वारा हुआ। बडे बड़े विद्वान्, पडित, धर्माचार्य, शास्त्रकार, साधु, देशभक्त, योद्धा, राजनैतिज्ञ और शासक इत्यादि स्वनामधन्य व्यक्ति जितनी प्रचुर संख्या में यहाँ हुए, उतनी सख्या में किसी अन्य देश में नहीं हुए। यहाँ का सनातन धर्म परम प्राचीन है, और इसी धर्म से बौद्ध-धर्म की उत्पत्ति हुई है। हिन्दुओं के वेदान्त-ग्रन्थों की टक्कर के ग्रन्थ आज भी अन्य देशों में उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए पृथिवी के प्राचीन इतिहास के खोजनेवालो को भारत का मुँह निहारना पड़ता है। प्राचीन संस्कृति के चिन्ह बहुधा इस देश में आज भी मिलते हैं। उनकी परम्परा अविच्छिन्न रूप से आज भी यहाँ वर्त्तमान है।

विदेशियों के हमले भी अनेक हुए, किन्तु ऐसे हमलों से जहाँ अन्य अनेक राष्ट्र मर मिटे वहाँ इस भारतीय राष्ट्र ने अपने बुद्धि-सामर्थ्य से आनेवालों को अपने में मिला कर अपने पुराने जीवन को यथावत् बनाये रक्खा है। इसलिए इस देश का प्राचीन इतिहास जैसा गौरवपूर्ण है, ठीक वैसा ही इसका भविष्य भी भव्य और आशातीत है।

यह राष्ट्र अत्यन्त प्राचीन है। आजकल प्राचीन काल की विश्वासोत्पादक ऐतिहासिक सामग्री यथेष्ट रूप में स्वत नहीं मिल सकती। अनेक भिन्न भिन्न भाषाओं, अनेक धर्मों, अनेक विभिन्न आचार विचारों व विभिन्न राज्यपद्धतियों, पारस्परिक युद्धों व विदेशी हमलों का होना इस देश में हज़ारों वर्षों से बराबर चला आता है। इनके सम्बन्ध में (१) शिलाओं पर खुदे हुए लेख, (२) पुरानी लिखापढी, (३) पुराने भवनों के खडहर, (४) विभिन्न भाषाओं में इस देश की कथाएँ, (५) पुराने ग्रन्थों में ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख, (६) उनके समकालीन विदेशी लेखकों और यात्रियों के लेख इत्यादि अनेक साधनों से इस देश के इतिहास की क्रमबद्ध सामग्री बहुत कुछ जुटाई जा रही है।

(२) काल और स्थल—इन दो बातों से इतिहास का स्वरूप निश्चय किया जाता है और ऐतिहासिक व्यक्तियों के पराक्रमों से उनका निश्चय होता है। काल और स्थल का उल्लेख मोटे तौर से प्रस्तावना के पाठ में कर दिया गया है। आगे के इतिहास को समझने के लिए भारतीय ऐतिहासिक घटनाओं का वर्गीकरण करना चाहिए। वैदिक काल के बाद और मुस्लिम काल के प्रारम्भ होने से पहले जो दीर्घ काल बीता वही अपने इतिहास का पहला ऐतिहासिक काल है।

इसी तरह पूरे भारतीय इतिहास का काल विभाग निम्न लिखित विभागों में बँटा है—

१—प्राचीन या पौराणिक हिन्दू काल ई० स० १००० तक।
२—मुस्लिम काल ई० स० १०००—१७०७।
३—महाराष्ट्र-शासन-काल ई० स० १६५०—१८१८।
४—ब्रिटिश शासन-काल ई० स० १८०३ से प्रारम्भ—

काल के विस्तार और ऐतिहासिक विषय की महत्ता की दृष्टि से प्राचीन हिन्दू-काल बड़े मार्के का है। इसका विस्तार भी बहुत अधिक है और विषय भी सरस है। इसमें अपने राष्ट्र के प्राचीन वैभव और उसकी योग्यता का परिचय मिलता है। लेकिन उसका क्रमबद्ध पूरा वृत्तात न मिलने से आज भी उसकी खोज की जा रही है।

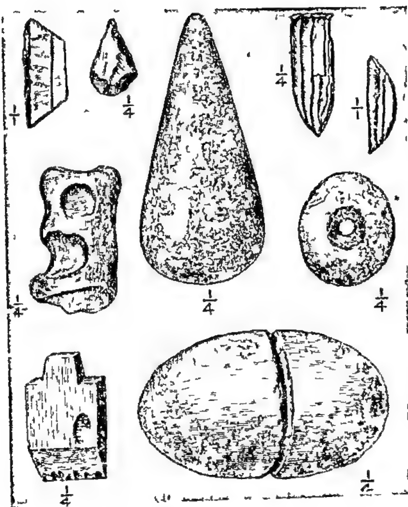
(३) ऐतिहासिक खोज—भारत में अँगरेज़ों की सार्वभौम सत्ता पिछली शताब्दी के आरम्भ में स्थापित हुई है। इस समय से इतिहास-सम्बन्धी काग़ज पत्र सावधानी से एकत्र किये गये हैं। ऐसी व्यवस्था पहले नहीं थी। इसलिए भूतकाल के इतिहास की जो खोज की जाती है उसमें प्रमाण की कुछ न कुछ कमी रह जाती है। इससे इतिहास की प्रामाणिकता में कमी आ जाती है। महाराष्ट्र काल की अपेक्षा उससे पूर्व के मुस्लिम शासन-काल के इतिहास की प्रामाणिकता अधिक अनिश्चित है। इसलिए महाराष्ट्र-काल के पूर्व का इतिहास अर्थात् १००० ईसवी सन् के बाद का इतिहास धीरे धीरे अधिक अनिश्चित सा होता जाता है। इस अपूर्णता के बढने से इतिहास को निश्चित करने का काम दिन-दिन अधिक कठिन होता जाता है। इसकी खोज करने के लिए आज कल विशेष प्रयत्न हो रहा है। यह खोज का

काम केवल इसी देश में नहीं, बल्कि यूरोप इत्यादि विदेशों में भी अनेक विद्वान् लोग कठिन परिश्रम के साथ कर रहे हैं। संसार के समग्र इतिहास में भारत के इतिहास की भी यथेष्ट सामग्री मिल रही है। वेद-काल से लेकर आज तक की अनेक नवीन ऐतिहासिक बातों का पता लग चुका है। और यदि इसी प्रकार बहुत दिनों तक लगातार अनेक विद्वान् लोग इस विषय की खोज करते चले जायँगे तो कालान्तर में हमारे राष्ट्र का इतिहास धीरे धीरे पूर्ण हो जायगा। खोज का काम पहले अँगरेज़ों ने ही यहाँ प्रारम्भ किया था और शिक्षा के प्रसार के साथ साथ वह अब अधिक विस्तृत हो गया है। इस काम का प्रारम्भ सर विलियम जोन्स ने किया था। उन्होंने कालिदास के शाकुन्तल नाटक का अँगरेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया। इससे प्राच्य विद्या के पठन-पाठन की ओर यूरोपीय आकृष्ट हुए। सर विलियम ने अनेक विद्वानों द्वारा की गई शोध को सर्वोपयोगी बनाने के लिए कलकत्ते में सन् १७८४ में "एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल" नाम की एक संस्था खोली। इसके द्वारा "एशियाटिक रिसर्चेज" नाम की ग्रन्थ माला प्रकाशित की गई। इसमें भाषा, साहित्य, इतिहास, शिल्प इत्यादि विषयों के खोजपूर्ण ऐतिहासिक वृत्तान्त छापे जाने लगे। इसके बाद १८२३ में लन्दन में "रायल एशियाटिक सोसायटी" की स्थापना हुई। उसी की एक शाखा बम्बई व सीलोन में खोली गई। इस प्रकार की खोज करनेवाली संस्थायें अन्य पाश्चात्य देशों में भी खुल गई और इन संस्थाओं में परस्पर सहयोग द्वारा कार्य होने लगा।

भारत में गुफाओं, स्तूपों, मठों, मन्दिरों, स्तम्भों, बाड़ों,

राष्ट्र-द्वारा किये गये कार्यों पर संसार के इतिहास का अच्छा प्रकाश पड़ेगा और उसके कार्यों का मूल्य भी संसार को विदित होगा।

(४) प्राचीन आर्य—भारत के निवासियों में अनेक जाति के लोगों का मिश्रण है। लेकिन उनमें मुख्यत आर्य और अनार्य का भेद है। इस देश में आर्यों के प्रवेश के बहुत समय पहले अनार्यों का प्रवेश हो चुका था। इन अनार्यों में पहले जो लोग आये उनका कद कुछ ठिगना और रंग काला था। इसलिए वे "निग्रटो" अर्थात् निग्रो जाति के कहे जाते हैं। इस जाति के लोग अब भी कराँची के पश्चिम, स्याम, आराकान, तिनासिरिम इत्यादि में समुद्र तट पर पाये जाते हैं। मछली पकड़ना ही उनका परम्परानुगत कार्य है। इसमें वे आज भी अत्यन्त निपुण हैं। इनके पूर्वज धातुओं का व्यवहार नहीं जानते थे। केवल पत्थर को पैना करके उससे वे लोग हथियार का काम लेते थे। इसी कारण इन लोगों को पाषाण युगीन का नाम मिला है। इस निग्रटो जाति के बाद भारत में ईशानकोण की घाटियों से एक दूसरी जाति आकर बसी। इस जाति के लोग यद्यपि पत्थर के हथियारों का ही उपयोग करते थे, तो भी वे अधिक प्रबल थे। गोफनों-द्वारा नोकदार पत्थर फेंक कर वे अपने शत्रु को मारते थे। उनके पास पत्थर के हथौड़े व मिट्टी के बर्तन थे। इसलिए उन लोगों का नाम "नव-पाषाण-युगीन" जाति पड़ा। इस जाति के वंशधर आज भी भिन्न भिन्न जङ्गलों में रहते हुए मिलते हैं। मध्य भारत के संथाल, कोल, मुण्डा, कुकू और दक्षिण में मिलने वाले शबर इत्यादि की गिनती इन नवपाषाण युगीन जातियों में की जाती है। ये लोग पहले बड़ी बड़ी नदियों के किनारों पर




पाषाण-युग के हथियार

रहते थे। परन्तु अन्य नये लोग वहाँ आकर बस गये और इन्हें जङ्गलों में खदेड़ दिया। इन नये लोगों को ताँबे इत्यादि धातुओं का उपयोग ज्ञात था। इसलिए इन लोगों का नाम "ताम्रयुगीन" जाति पड़ा। इनका निवास प्राय गङ्गा और सिन्ध के किनारे किनारे रहा है। इसलिए इनका प्रवेश दक्षिण में नही हुआ।

इसके बाद ईसवी सन् के लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व वायव्य कोण के समीपवाली घाटियों से तथा पश्चिम दिशा से द्रविड लोग भारत में आये। ये लोग पहले के बसे हुए लोगों की अपेक्षा बहुत कुछ बढे चढ़े थे। पत्थर और धातुओ से वे अनेक प्रकार की सुन्दर वस्तुएँ बनाते थे। पत्थर के घर और किले बनाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय इन लोगों की अधिक उन्नति बिलोचिस्तान में हुई थी। द्रविड़ लोगों का मूल-स्थान पश्चिम एशिया या पूर्व यूरोप था। यही द्रविड़ आजकल तमिल कहलाते हैं। इस जाति का विस्तार दक्षिण-भारत में है। तामिल, तेलगू, कनाड़ी या मलाबारी इत्यादि इनकी भाषायें हैं, जो अन्य आर्य-भाषाओं से सर्वथा भिन्न हैं।

कई शताब्दो पहले मध्य-एशिया से पश्चिम के नीचे मैदानी भागों में कुछ बलवान् व बुद्धिमान् लोग घूमते फिरते आये और वहाँ रहनेवालों को जीत कर उन्होंने अपनी बस्तियाँ बसाईं। कालांतर में इन लोगों में से कुछ लोग यूरोप की ओर बढ गये। इन लोगों से ही प्राचीन ग्रीक, रोमन और आज कल की प्रबुद्ध जर्मन और अङ्गरेज़ जातियों की उत्पत्ति हुई। इन लोगों की एक दूसरी शाखा भारत में आई। इन्हीं मध्य-एशिया के निवासियों की एक तीसरी शाखा प्राचीन ईरान-देश में जा पहुँची। इन सभी शाखाओं का विकास मध्य एशिया के आर्यों की बस्तियों

है। यहाँ के अनेक आर्य राजाओं की साम्राज्य-सीमा अमू नदी तक रही है। मुग़ल-बादशाही में भी यह प्रदेश हिन्दुस्तान का ही एक भाग गिना जाता था। ब्रिटिश शासन काल में भी सरकारी कार्रवाइयों का प्रभाव इस प्रदेश पर भी पड़ता है।

(५) वेद, रामायण तथा महाभारत–आर्य लोग भारत में जिस समय आये उस समय वे सभ्य थे। इस देश के रहनेवाले वन्य लोगों से उन्होंने झगड़ा किया और उन्हें जीत लिया। आज भी उन जंगली मनुष्यों की संतान अनेक पहाड़ी प्रदेशों में मिलती है। आर्यों ने पहले पंजाब को अपनी निवास-भूमि बनाया। बाद को गंगा और यमुना के किनारे के प्रदेश भी उन्होंने बसाये। स्थान स्थान पर शहर और राज्य स्थापित किये। यज्ञ कर्म या देवताओं की पूजा के लिए वे जो जो मंत्र या गीत गाते थे उन सब के संग्रह को वेद कहते हैं। ये वेद प्राचीन संस्कृत-भाषा मे हैं। इनमें चार-पाँच हजार वर्ष पहले के आर्यों के विचार, उनकी उस समय की परिपाटी और पद्धति का वर्णन है। वेदों के मंत्रों को सूक्त कहते हैं। प्रारंभ में ये सूक्त लिपि बद्ध नहीं थे। ये लोगों को कण्ठस्थ थे। गुरु के मुख से सुनकर शिष्य इन्हें याद कर लेते थे। यही परम्परा थी। पहले भिन्न भिन्न ऋषियों के आश्रमो में भिन्न भिन्न सूक्तों के पाठ करने की विधि थी। लेकिन बाद को ये सब एकत्र कर लिये गये और एक बड़ा संग्रह तैयार हुआ। इस प्रकार सब सूक्तों के एक बड़े संग्रह का नाम संहिता पड़ गया। पूरी संहिता के चार भाग हैं— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेदों के बाद ब्राह्मण नाम के ग्रन्थ बनाये गये, और फिर आरण्यक और अन्त में उपनिषदों की रचना हुई। इन सब ग्रन्थों के समूह को श्रुति

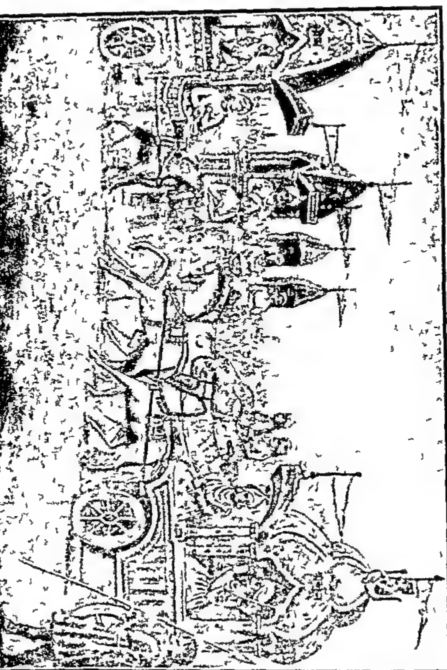
कहते हैं। इन का कोई रचयिता न होने के कारण ये अपौरुषेय कहलाते हैं। इनमें ऋग्वेद अधिक प्राचीन है। इसका अधिकाश भाग आर्यों के पंजाब में आने से पहले तैयार हो चुका था। इसमें एक हजार सूक्त हैं। इन सक्तो में इन्द्र, अग्नि सविता, वायु, वरुण, मरुत् और अश्विनी आदि देवताओं की स्तुतियाँ हैं। इसी प्रकार इन सूक्तों के भिन्न भिन्न रचयिता अनेक ऋषि हैं। इनके नाम विश्वामित्र, भरद्वाज, गोतम, अत्रि, वशिष्ट, जमदग्नि, कश्यप आदि हैं।

आर्य लोग इस देश मे जैसे जैसे दूर दूर तक फैलते गये, वसे ही वैसे उनमें परस्पर मतभेद भी अधिक उत्पन्न होते गये। उनकी भिन्न भिन्न शाखाएँ बन गई। ग्रन्थ विस्तार अधिक हो गया, इससे उनके ऊपर लिखी गई व्याख्याएँ स्मरण रखना कठिन हो गया। इसलिए विस्तार कम करके थोड़े में बहु-अर्थ-बोधक वाक्यों के रचने की परिपाटी चल निकली। ऐसी रचनाओं को सूत्र कहते हैं। सूत्र तीन भागों में बँटे हैं—१—श्रौत सूत्र अर्थात् यज्ञ के नियम, २—गृह्यसूत्र अर्थात् गृहस्थ-धर्म से सम्बन्ध रखनेवाले नियम, ३—धर्मसूत्र अर्थात् समाज सम्बन्धी नियम। इन मुख्य सूत्र ग्रन्थों के अतिरिक्त व्याकरण, न्याय, वेदान्त इत्यादि अन्य विषयों पर भी बाद को सूत्र ग्रन्थों की रचना हुई। ऊपर जो धर्मसूत्र बताये गये हैं उन पर स्मृति नाम के विस्तृत ग्रन्थ बाद को लिखे गये। ये आर्यों के कानून थे। इस सम्बन्ध में मनु और याज्ञवल्क्य की स्मृतियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं।

श्रुति और स्मृति के अतिरिक्त आर्यों के अन्य मुख्य ग्रन्थ इतिहास और पुराण भी हैं। इतिहास में 'रामायण' और

तीन वर्ण द्विज-कहलाते हैं। इनके जीवन के चार भाग किये गये हैं। इनमें से पहले भाग का नाम ब्रह्मचर्य, दूसरे का नाम गृहस्थ, तीसरे का नाम वानप्रस्थ और चौथे का नाम सन्यस्थ है। ये चारों भाग आश्रम कहलाते हैं। इसी सामाजिक और जीवन सम्बन्धी व्यवस्था का नाम वर्णाश्रम-व्यवस्था है। प्राय सभी विद्वान् शूर, सत्यप्रिय और धर्मनिष्ठ होते थे। प्रत्येक कुटुम्ब मे अग्नि की पूजा होती थी। बड़े बड़े राजा यज्ञ करते थे। ऐसे यज्ञों में दूर दूर के विद्वान् लोग एकत्र होते थे, और व अनेक गूढ विषयों पर वाद-विवाद करते थे। ऐसे वाद विवादों में स्त्रियाँ भी सम्मिलित होती थीं। जनक नाम का एक राजा बड़ा तत्ववत्ता था। उसकी राज-सभा म वेदान्त विषय की ही चर्चा हुआ करती थी। याज्ञवल्क्य ऋषि और जनक का संवाद उपनिषद् में दिया गया है। यह संवाद बड़ा ही आकर्षक, वक्तृत्व-कलापूर्ण और विस्तृत है। अनेक-स्थानों म ऋषियों के आश्रम थे। वहाँ छोटे-बड़े विद्यार्थी जाकर विद्या पढ़ते थे।

(६) रामायण व महाभारत—ये दोनों ग्रन्थ भारतीय राष्ट्र को सदैव स्फूर्ति प्रदान करते रहेंगे। इनकी कथायें अनेक स्त्री-पुरुषों को विदित हैं। रामायण में लगभग चौबीस हज़ार श्लोक हैं। महाभारत उसके चौगुने से भी अधिक बड़ा है। रामायण वाल्मीकि ऋषि का रचा है और महाभारत को कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने लिखा है। हिन्दू इन्हें बड़ी पूज्य दृष्टि से देखते हैं। आर्यों के राजकीय परिवर्तन, उनके कलह और पराक्रम इत्यादि का वर्णन महाभारत में दिया गया है। उनके धार्मिक व्यवहार



और उनके गृह-जीवन का वर्णन रामायण में किया गया है। इन दोनों ग्रन्थों से तत्कालीन आर्यों का सम्पूर्ण चरित्र हमें मालूम होता है। प्राचीन वैभव और सभ्यता का इतना हृदयग्राही, विस्तृत और सरस वर्णन अन्य किसी राष्ट्र के ग्रन्थों में नहीं मिल सकता। दोनो ही ग्रन्थ सरल और स्वाभाविक शैली में लिखे गये हैं। इन ग्रन्थों का अनुवाद भारत की प्राय सभी भाषाओं में हो चुका है। भारतीय युद्ध ई० स० के पूर्व ३००० वर्ष से १५०० वर्ष के बीच में हुआ है।

वैदिक काल में आर्यों ने अपना उपनिवेश पञ्जाब में बसाया था। भारतीय काल में उन्होंने गङ्गा-यमुना के कठ प्रदेश में अपनी बस्ती बसाई और बाद को हिमालय की तराई से ले कर समुद्र तक वे बस गये। वे जहाँ जहाँ गये वहाँ वहाँ अपना धर्म, राज्य, आचार विचार, रीति नीति, कलाकौशल साथ लेते गये। इन सभी भागों में उन्होंने भिन्न भिन्न राज्य स्थापित किये। उन राज्यों के भिन्न भिन्न नाम रक्खे। गङ्गा के किनारे कुरु का राज्य था और हस्तिनापुर नगर था। गङ्गा के उस पार आजकल के अवध प्रान्त में कोशल राज्य था। इस राज्य की राजधानी का नाम अयोध्या था। आजकल की दिल्ली के पास पाण्डवों का राज्य था। उनकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। अयोध्या के पूर्व में विदेहों का राज्य था। इसकी राजधानी मिथिला थी। इससे दक्षिण मगध, वग, चेदि, विदर्भ इत्यादि अनेक राज्य थे। मथुरा, कान्यकुब्ज (कन्नोज), कोशाम्बी (प्रयाग के समीप), काशी, अवन्तिका इत्यादि महाभारत-काल में सुप्रसिद्ध थे। साराश यह कि प्राचीन आर्यों की यह उन्नति मोटे तौर से ई० स० के १००० वर्ष पूर्व तक होती रही। इसके बाद इनके

आचार-विचार, धर्म-कर्म और समाज-निर्माण में बड़े बड़े परिवर्तन होने लगे और भाषा, तत्त्वज्ञान व धर्माचार में नवीन विचार, नवीन शोध व उलट फेर होने लगे।

---

नोट—इस पाठ के साथ साथ बालकों को रामायण की मूल-कथा और महाभारत का संक्षिप्त वर्णन अध्यापक बतादें।

# द्वितीय अध्याय

## बौद्ध-काल

ई० स० पू० ६००-३२३

१—आर्यों की विद्योन्नति, २—जैनियों का उदय, महावीर वर्धमान ३—बौद्धों का उदय, गौतमबुद्ध, ४—सिकन्दर का भारत पर आक्रमण

(१) आर्यों की विद्योन्नति—ई० स० पू० ६०० से इधर का इतिहास बहुत कुछ क्रमबद्ध मिलता है और कई प्रसिद्ध राजपुरुषों के नाम भी मिलते हैं। मगध-देश में प्रद्योत नाम का राजवंश बहुत प्रसिद्ध हुआ। इस वंश का आदि-पुरुष शिशुनाग और चौथा पुरुष बिम्बसार दोनों ही अपने पराक्रम और परोपकार के लिए इतिहास में प्रसिद्ध हैं (ई० स० पू० ५९२-५५८)। बिम्बसार ने मगध राज्य की राजधानी राजगृह में स्थापित की। बिम्बसार के लड़के अजातशत्रु ने पाटलिपुत्र (पटना) को बसाया और २७ वर्ष तक शासन किया। अजातशत्रु के लड़के का नाम दर्शक था। यह वही पुरुष है जिसका नाम कविभास ने अपने नाटक में दिया है। दर्शक के लड़के का नाम उदय था, जिसने कुसुमपुर बसाया था। यह नगर वर्त्तमान पटना के समीप ही था। उसके बाद नन्दिवर्धन और महानन्दी ने ८३ वर्ष तक राज्य किया। ई० स० पू० ४१३

के लगभग इस राजवंश का अन्त हो गया। इन राजाओं ने बौद्ध और जैन धर्म को अच्छा प्रोत्साहन दिया था। इसी काल में द्वारका, उज्जयनी इत्यादि अनेक स्थानों में अनेक नवीन राजवंशों का उदय हुआ। इसी समय आर्यों ने दक्षिण में प्रवेश कर वहाँ भी अनेक राज्य स्थापित किये। महाराष्ट्र में पैठण का राज्य स्थापित हुआ। मगध-राज्य के राजवंश की एक शाखा ने सिंहल (सीलोन) द्वीप जीता। इस प्रकार समस्त देश मे आर्यों की भाषा, धर्म तथा संस्कृति का विस्तार हुआ।

इस काल में नवीन शोध और ग्रन्थ-रचना का कार्य भी खूब चला। शब्दार्थ, भाषा, व्याकरण आदि विषयो मे आर्यों का ध्यान अधिक रहता था। समाज और उद्योग कौशल की उन्नति बराबर होती गई। इसके साथ साथ नवीन भाषा और नवीन विचारों का प्रचार होने से वेदों का अर्थ समझने में कठिनता पड़ी। अतएव वेदो के अर्थ को बोधगम्य बनाने के लिए यास्क मुनि ने निरुक्त नाम का ग्रन्थ रचा। इसमें वैदिक शब्दो का अर्थ है। धीरे धीरे व्याकरण भी पूर्ण उन्नति को पहुँच गया। इससे संस्कृत-भाषा की अच्छी उन्नति हुई। शाकटायन और गार्ग्य पूर्व-काल के प्रसिद्ध व्याकरणकार हैं। इनके बाद पाणिनि नाम का एक बड़ा भारी व्याकरणकार हुआ। ये ई० स० पू० की आठवीं शताब्दी में हुए हैं। पाणिनि ने संस्कृत के लम्बे चौड़े व्याकरण को सूत्रों में संक्षिप्त कर उसका स्वरूप इतना छोटा कर दिया कि "अष्टाध्यायी" नाम की छोटी सी पुस्तक में संस्कृत का समूचा व्याकरण आ गया। अपनी विद्वत्ता से उसने यह कार्य

(नोट—ई० स० पू० अर्थात् ईसवी सन् शुरू होने से पहले।)

सागर को गागर में भरने के समान किया। पाणिनि के ४०० वर्ष बाद वररुचि या कात्यायन नाम का एक दूसरा बड़ा व्याकरण-कार हुआ। उसने वार्त्तिक अर्थात् अधिक सूत्र लिख कर पाणिनि के ग्रन्थ की पूर्त्ति की। उसके ३०० वर्ष बाद पतंजलि नाम का एक धुरंधर विद्वान् हुआ। इसने व्याकरण के सूत्रों पर महाभाष्य लिखा। व्याकरण के विषय में इन तीनों महामुनियों के नाम विख्यात हैं। संस्कृत-साहित्य के काल-निर्णय के समय इनका विशेष उपयोग होता है। व्याकरण के समान ही अंक गणित, दशांश पद्धति ( दशमलव ), बीजगणित, भूमिति, वैद्यक इत्यादि शास्त्रों की उन्नति हुई। महामुनि कपिल ने सांख्यशास्त्र की रचना की। उसके बाद गौतम, कणाद इत्यादि न्याय और वैशेषिक शास्त्रों के रचयिता हुए। जैमिनि की पूर्व मीमांसा, और बादरायण की उत्तर मीमांसा नामक ग्रन्थ लिखे गये, जिनमें धर्म-शास्त्र और ब्रह्मज्ञान के विषयों पर विचार प्रकट किये गये हैं।

इस काल में जिस समय आर्यों के तत्त्व-ज्ञान के विचार उत्तरोत्तर बढ़ रहे थे, उसी समय प्रजा को धर्मोपदेश करनेवाले और संसार का त्याग करके अपने विचारों को कार्य के रूप में कर दिखानेवाले दो महापुरुष ई० स० पू० की छठीं शताब्दी में यहाँ हुए। इनकी कर्त्तृत्व-शक्ति का प्रभाव केवल इसी देश में नहीं, किन्तु विदेशों में आज भी दृष्टिगोचर हो रहा है। जैन-धर्म प्रवर्तक महावीर वर्धमान और बौद्ध धर्म संस्थापक गौतमबुद्ध ये दोनों प्रसिद्ध महापुरुष एक दूसरे के समकालीन थे। इनके जन्म से भारत की भूमि पवित्र हो गई और इनके उद्योग से भारतीय आर्य समस्त पृथिवी के भूषण बन गये।

के लगभग इस राजवंश का अन्त हो गया। इन राजाओं ने बौद्ध और जैन धर्म को अच्छा प्रोत्साहन दिया था। इसी काल में द्वारका, उज्जयनी इत्यादि अनेक स्थानों में अनेक नवीन राजवंशों का उदय हुआ। इसी समय आर्यों ने दक्षिण में प्रवेश कर वहाँ भी अनेक राज्य स्थापित किये। महाराष्ट्र में पैठण का राज्य स्थापित हुआ। मगध-राज्य के राजवंश की एक शाखा ने सिंहल (सीलोन) द्वीप जीता। इस प्रकार समस्त देश मे आर्यों की भाषा, धर्म तथा संस्कृति का विस्तार हुआ।

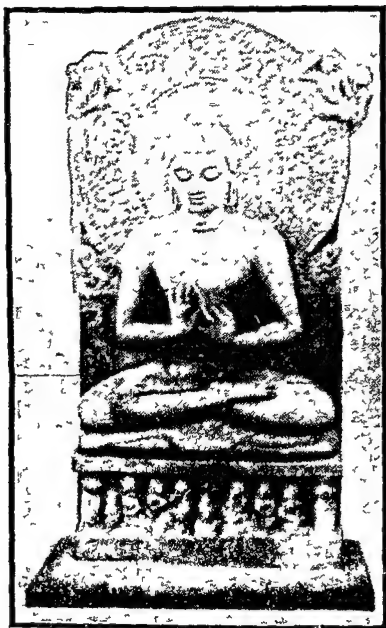
इस काल में नवीन शोध और ग्रन्थ-रचना का कार्य भी खूब चला। शब्दार्थ, भाषा, व्याकरण आदि विषयों में आर्यों का ध्यान अधिक रहता था। समाज और उद्योग कौशल की उन्नति बराबर होती गई। इसके साथ साथ नवीन भाषा और नवीन विचारों का प्रचार होने से वेदों का अर्थ समझने मे कठिनता पड़ी। अतएव वेदो के अर्थ को बोधगम्य बनाने के लिए यास्क मुनि ने निरुक्त नाम का ग्रन्थ रचा। इसमें वैदिक शब्दों का अर्थ है। धीरे धीरे व्याकरण भी पूर्ण उन्नति को पहुँच गया। इससे सस्कृत भाषा की अच्छी उन्नति हुई। शाकटायन और गार्ग्य पूर्व-काल के प्रसिद्ध व्याकरणकार हैं। इनके बाद पाणिनि नाम का एक बड़ा भारी व्याकरणकार हुआ। ये ई० स० पू० की आठवीं शताब्दी में हुए हैं। पाणिनि ने संस्कृत के लम्बे-चौड़े व्याकरण को सूत्रों में संक्षिप्त कर उसका स्वरूप इतना छोटा कर दिया कि "अष्टाध्यायी" नाम की छोटी सी पुस्तक मे संस्कृत का समूचा व्याकरण आ गया। अपनी विद्वत्ता से उसने यह कार्य

(नोट—ई० स० पू० अर्थात् ईसवी सन् शुरू होने से पहले।)

सागर को गागर में भरने के समान किया। पाणिनि के ४०० वर्ष बाद वररुचि या कात्यायन नाम का एक दूसरा बड़ा व्याकरणकार हुआ। उसने वार्त्तिक अर्थात् अधिक सूत्र लिख कर पाणिनि के ग्रन्थ की पूर्त्ति की। उसके ३०० वर्ष बाद पतंजलि नाम का एक धुरंधर विद्वान् हुआ। इसने व्याकरण के सूत्रों पर महाभाष्य लिखा। व्याकरण के विषय में इन तीनों महामुनियों के नाम विख्यात हैं। संस्कृत-साहित्य के काल-निर्णय के समय इनका विशेष उपयोग होता है। व्याकरण के समान ही अंक गणित, दशांश पद्धति ( दशमलव ), बीजगणित, भूमिति, वद्यक इत्यादि शास्त्रों की उन्नति हुई। महामुनि कपिल ने सांख्यशास्त्र की रचना की। उसके बाद गौतम, कणाद इत्यादि न्याय और वैशेषिक शास्त्रों के रचयिता हुए। जैमिनि की पूर्व मीमांसा, और बादरायण की उत्तर-मीमांसा नामक ग्रन्थ लिखे गये, जिनमें धर्मशास्त्र और ब्रह्मज्ञान के विषयों पर विचार प्रकट किये गये हैं।

इस काल में जिस समय आर्यों के तत्त्व-ज्ञान के विचार उत्तरोत्तर बढ़ रहे थे, उसी समय प्रजा को धर्मोपदेश करनेवाले और संसार का त्याग करके अपने विचारों को कार्य के रूप में कर दिखानेवाले दो महापुरुष ई० स० पू० की छठीं शताब्दी में यहाँ हुए। इनकी कर्त्तृत्व-शक्ति का प्रभाव केवल इसी देश में नहीं, किन्तु विदेशों में आज भी दृष्टिगोचर हो रहा है। जैन धर्म-प्रवर्तक महावीर वर्धमान और बौद्ध धर्म संस्थापक गौतमबुद्ध ये दोनों प्रसिद्ध महापुरुष एक दूसरे के समकालीन थे। इनके जन्म से भारत की भूमि पवित्र हो गई और इनके उद्योग से भारतीय आर्य समस्त पृथिवी के भूषण बन गये।

अवस्था में शरीर-त्याग किया। उनके अनुयाइयों की संख्या १४ हज़ार थी। बाद में चन्द्रगुप्त के शासन-काल में उनके सारे उपदेशों का संग्रह किया गया। उस संग्रह का कुछ भाग आज-कल भी पाली-भाषा में उपलब्ध है। उस भाग का नाम अंग है। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने भी जैनियों का अच्छा सम्मान किया था। उसकी आज्ञा से भद्रबाहु नाम का एक जैन-विद्वान् जैनियों का एक बड़ा संघ अपने साथ लेकर दक्षिण भारत में गया और वहाँ जैन पंथ का प्रचार किया। कुछ समय बीतने पर वे लोग मगध-राज्य को फिर लौटे। उस समय उत्तर के जैनियों से उनका घोर मत-भेद हो गया, जिससे दक्षिण के जैनी दिगम्बर और उत्तर के जैनी श्वेताम्बर—अर्थात् सफेद वस्त्रवाले कहलाये। भारत में कुछ काल तक दिगम्बरों का प्रचार बहुत बढ़ा-चढ़ा रहा। दक्षिण में दिगम्बरी जैनियों की संख्या अधिक है और उत्तर में राजपूताना आदि प्रान्तों में श्वेताम्बर जैनी अधिक हैं। तीर्थ स्थानों में दोनों सम्प्रदायों की धर्मशालाएँ बड़ी सुविधा-जनक बनी हैं। जैन मतानुयाई इस देश में सभी प्रान्तों, सभी जातियों और सभी भाषा भाषियों में मिलते हैं। ये लोग स्वभाव से ही सात्विक, परोपकारी और व्यापार प्रवीण होते हैं। स्थान स्थान पर इनके विशाल देव मन्दिर और धर्मशालाएँ तथा लोकोपयोगी अनेक संस्थाएँ खुली हुई हैं। आबू पहाड़ पर बने हुए जैन-मन्दिर को जिसने देखा है वह तत्कालीन जैनियों की शिल्पकला-सम्बन्धी उन्नति का अनुमान कर सकता है। जीव-हिंसा से बचने के लिए ये लोग दिन ही दिन में भोजन कर लेते हैं। पर्यटन करते समय मुँह पर कपड़ा बाँधने का इनका नियम प्रसिद्ध ही है।



गौतमबुद्ध

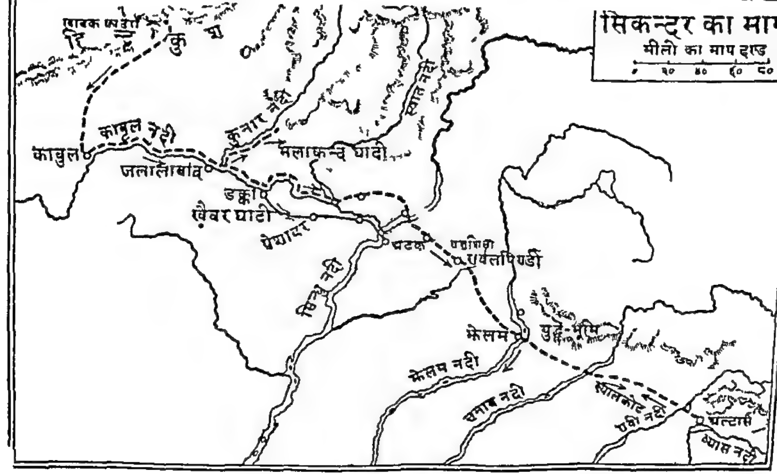
अवस्था में शरीर त्याग किया। उनके अनुयाइयों की संख्या ५
हज़ार थी। बाद में चन्द्रगुप्त के शासन-काल में उनके सारे उ
देशों का संग्रह किया गया। उस संग्रह का कुछ भाग आज-च
भी पाली-भाषा में उपलब्ध है। उस भाग का नाम अंग है। क
जाता है कि चन्द्रगुप्त ने भी जैनियों का अच्छा सम्मान कि
था। उसकी आज्ञा से भद्रवाहु नाम का एक जैन-विद्वान् जैनि
का एक बड़ा संघ अपने साथ लेकर दक्षिण भारत में गया और व
जैन-पंथ का प्रचार किया। कुछ समय बीतने पर वे लोग मग
राज्य को फिर लौटे। उस समय उत्तर के जैनियों से उनका घ
मत-भेद हो गया, जिससे दक्षिण के जैनी दिगम्बर और उत्तर
जैनी श्वेताम्बर—अर्थात् सफेद वस्त्रवाले कहलाये। भारत
कुछ काल तक दिगम्बरों का प्रचार बहुत बढ़ा-चढ़ा रहा। दक्षि
में दिगम्बरी जैनियों की संख्या अधिक है और उत्तर में रा
पूताना आदि प्रान्तों में श्वेताम्बर जैनी अधिक हैं। ती
में दोनों सम्प्रदायों की धर्मशालाएँ बड़ी सुविधा-जनक बनी
जैन-मतानुयाई इस देश में सभी प्रान्तों, सभी जातियों और स
भाषा-भाषियों मे मिलते हैं। ये लोग स्वभाव से ही वि
परोपकारी और व्यापार प्रवीण होते हैं। स्थान स्थान
इनके विशाल देव मन्दिर और धर्मशालाएँ तथा लोकोपयो
अनेक संस्थाएँ खुली हुई हैं। आबू पहाड़ पर बने
जैन-मन्दिर को जिसने देखा है वह तत्कालीन जैनियों
शिल्पकला-सम्बन्धी उन्नति का अनुमान कर सकता है। जी
हिंसा से बचने के लिए ये लोग दिन ही दिन में भोजन कर ले
हैं। पर्यटन करते समय मुँह पर कपड़ा बाँधने का इनका निय
प्रसिद्ध ही है।

(३) बौद्धों का उदय, गौतम बुद्ध—दूसरे धर्म के प्रवर्त्तक गौतम बुद्ध थे। उनका जन्म विहार प्रान्त में नैपाल की तराई में हुआ था।

काशी के उत्तर रोहिणी नदी के किनारे कपिलवस्तु में शुद्धोदन नाम का एक शाक्य-वंशी राजा था। ई० स० पू० ५६७ में उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम सिद्धार्थ था। यही सिद्धार्थ आगे चलकर बौद्ध धर्म के प्रवर्त्तक गौतम बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुए। गोतम उनके कुल का नाम था, बुद्ध का अर्थ ज्ञानी है। यह गोतम बुद्ध की पदवी उन्हें बाद को प्राप्त हुई। बाल्यकाल से ही उनके पिता ने उन्हें इतनी सावधानी से सुख ही सुख में रक्खा कि वे दु ख का नाम तक न जानते थे। बाल-काल के समाप्त होने पर सिद्धार्थ का विवाह हुआ। उनकी स्त्री का नाम यशोधरा था। इससे उनके जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम राहुल पड़ा। एक दिन जब सिद्धार्थ बाहर घूमने गये तब राह में उन्होंने लोगों को शोक-सतप्त देखा। उनकी दुस्सह अवस्था देख कर उनके चित्त में संसार से विरक्ति हो गई। अतएव रात्रि में अपने सद्योत्पन्न बालक और पति परायण पत्नी का त्याग कर वे महल से बाहर निकल गये। जङ्गल में जाकर उन्होंने कठोर तपश्चर्या की। फिर उन्होंने घर लौटने का नाम भी न लिया। यह देख उनके पिता ने अपने कुल के पाँच लड़के उनके साथ रहने के लिए भेज दिये। इस प्रकार उन्होंने वन में रह कर ६ वर्ष तक तपस्या की, परन्तु जिस ज्ञान सिद्धि की उन्हें आवश्यकता थी वह न मिली। उन्हें इस बात का अनुभव हुआ कि वह उपवास आदि देह के कष्टों से नहीं प्राप्त हो सकती।

मर जाने के वाद उनके अनुयाइयों ने पटना के समीप एक गुफा मे भारी सभा करके उनके उपदेशों का संग्रह किया और उसे तीन भागों में विभक्त किया। इनको पिटक या करंडक कहते हैं। इस मण्डली ने बौद्ध-धर्म का प्रचार वड़े ज़ोरो के साथ किया। इसके ठीक सौ वर्ष वाद बौद्धमतानुयाइयों की दूसरी वड़ी सभा वेठी। उस समय बौद्ध लोग दो दलों में बॅट गये। इनमें से एक पक्ष ने उत्तर में और दूसरे प्रक्ष ने दक्षिण में बौद्ध-धर्म का प्रचार किया। इसके सौ वर्ष वाद चक्रवर्ती नरेश अशोक ने ई० स० पू० २४२ में बौद्ध-विद्वानो की तीसरी सभा की और उसने धर्म के प्रचार में एक नवीन उत्साह का सञ्चार किया। इसके लगभग ४०० वर्ष वाद राजा कनिष्क ने बौद्ध-धर्म के प्रमुख विद्वानों को एकत्र कर एक चौथी सभा की। इस सभा में फिर ग्रन्थ-संग्रह का कार्य किया गया। बौद्धों के प्राय सभी ग्रन्थ पाली-भाषा मे हैं। गौतम बुद्ध ने पाली भाषा में ही लोगों को उपदेश दिया था। बौद्धों और जैनियों के ग्रन्थों का भाडार बहुत वड़ा है। इन दोनों के अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ बने और इनमें अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थकार हुए। यदि उनका संशोधन करने के लिए भारत के वाहर के ग्रन्थ-भाडार की खोज की जाय तो भारत के प्राचीन इतिहास की अपरिमित सामग्री मिल सकती है। भारत में जैनियो की वर्तमान संख्या लगभग १५ लाख है। जैन धर्म का इतना विस्तृत प्रचार भारत में नहीं हुआ जैसा कि बौद्ध-धर्म का हुआ था।

(४) सिकन्दर का भारत पर आक्रमण—समस्त ज्ञान और सुसस्कृति का प्रचार भारत के ही द्वारा अन्य देशों में हुआ


सिकन्दर का मार्ग
मीलों का माप दण्ड
काबुल
काबुल नदी
जलालाबाद
कुनार नदी
मलाकन्द घाटी
स्वात नदी
डक्का
खैबर घाटी
पेशावर
अटक
सिन्धु नदी
पर्वतीय
पर्वतपिण्डी
झेलम
झेलम नदी
युद्ध-भूमि
चनाब नदी
स्यालकोट
रावी नदी
ब्यास नदी
सिकन्दर का मार्ग



सिकन्दर

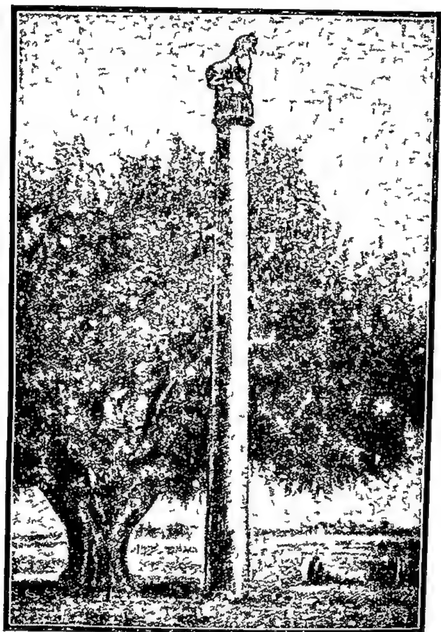
था। इससे इस देश का अन्य देशों में अधिक आदर था। विदेशों के अनेक पराक्रमी लोग यहाँ की सम्पत्ति को लोभ की दृष्टि से देखते थे। मिस्र देश के राजा और असीरिया की रानी सेमिरामिस ने इसी भाव से पजाब पर आक्रमण किया था। इसी प्रकार रान के बादशाह दारियस ने सिन्धुनदी के पश्चिमी सीमा प्रदेश ो जीत लिया था और यह प्रदेश कुछ समय तक उस राज्य में ामिल रहा था। लेकिन इन विदेशियों के आक्रमणों मे मार्के का आक्रमण ग्रीस के बादशाह सिकदर का था। इस आक्रमण से यूरोप के ग्रीक और भारत के आर्यों का जो सम्मिलन हुआ उसका ससार के इतिहास पर बहुत प्रभाव पड़ा।

ई० स० पू० की चोथी शताब्दी में ग्रीस-देश पर प्रथम फिलिप और उसके बाद उसका पुत्र अलेक्जेंडर ( सिक दर ) ासन करते थे। सिकदर मिस्र-देश को जीत कर पश्चिमी एशिया के प्रदेश जीतता हुआ ई० स० पू० ३२६ के जनवरी मास में खैबर घाटी पार कर भारत में आ गया। अटक के पास सिन्धुनदी को नावों के पुल से पार कर सिकन्दर ने अपनी विशाल सेना के साथ पंजाब में प्रवेश किया। उस समय रावलपिंडी से १० मील उत्तर तक्षशिला नाम का एक प्रसिद्ध नगर था। वहाँ का विद्यापीठ ससार में सर्वत्र प्रसिद्ध था। तक्षशिला का राजा अंभी सिकदर से मिल गया। सिकन्दर ने उसकी राजधानी में कुछ दिनों तक विश्राम किया। इसके बाद उसने झेलम के पार के पोरस, अभिसार आदि राजाओं को अपनी अधीनता स्वीकार कर लेने के लिए कहला भेजा। अभिसार के राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार करली। लेकिन राजा पोरस या पुरु ने उससे

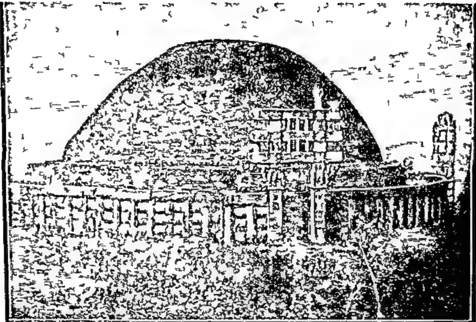
को तक्षशिला भेज कर अशोक को अपने पास पाटलिपुत्र को बुला लिया। ऐसी ही अवस्था में ई० स० पू० २७४ में विन्दुसार की मृत्यु हो गई। इससे राधागुप्त की सहायता पाकर अशोक राजसिंहासन पर बैठ गया और अपने भाई को मार कर अपनी सत्ता स्थापित की।

उस समय कलिङ्ग-देश स्वतन्त्र था। व्यापार के कारण उसकी बड़ी उन्नति हो गई थी। वहाँ के व्यापारी जहाज़ चलाने की विद्या में अधिक निपुण थे। पूर्व के द्वीपों में आर्य सभ्यता का प्रचार इन कलिङ्गवालों ने ही किया था। आज भी उन द्वीपों के रहनेवाले अपने को क्लिङ्ग ही वतलाते हैं। अशोक के शासन के पहले तीन वर्ष घरेलू लड़ाई-झगड़ों में वीते। इसके वाद ई० स० पू० २७० में उसका राज्याभिषेक हुआ। पड़ोस के कलिङ्ग-देश पर चढाई करके उसने वह देश भी जीत लिया। वहाँ के राजा को परास्त कर प्रजा का वहुत नाश किया। इस युद्ध में अच्छे अच्छे साधु, पण्डित और विद्वानों के भी प्राण गये। उस हृदय द्रावक हत्याकाड का दृश्य देख कर उसे विजय के आनन्द के स्थान में वड़ा पश्चात्ताप हुआ और इसका प्रभाव उसके चित्त पर इतना पड़ा कि उसने अपना जीवन ही वदल दिया।

कलिङ्ग जीतने के वाद ही अशोक ने वौद्ध-धर्म की दीक्षा ली। अव उसने तलवार की अपेक्षा धर्म की दिग्विजय करने का निश्चय किया और शेष जीवन लोकोपकार के कार्यों में विता कर उसने सम्राट् की पदवी सार्थक कर दी। उसने राज्य भर में दौरा करके स्थान स्थान पर धर्मप्रचार की आज्ञाएँ निकालीं। ये आज्ञाएँ आज भी शिला-लेखों में जहाँ तहाँ खुदी मिलती हैं। काठियावाड़ में गिरनार, पेशावर के समीप मनशेरा और शाहवाज गढी,



अशोक की लाट



साँची का स्तूप

चन्द्रगुप्त का लोह-स्तम्भ

जगन्नाथपुरी के पास धौली, गञ्जाम आदि दूर दूर के स्थानों में उसके कम से कम सोलह शिलालेख मिलते हैं। इन लेखगत आज्ञाओं में उसने लोकोपयोगी कार्य और राज्य नियम स्पष्ट किये थे। राह में बावड़ी, तालाब इत्यादि बनवाना, पेड़ लगाना, मनुष्यों और पशुओं के लिए विश्राम-स्थल बनाना, हिंसा न करना, धार्मिक प्रसंग के लिए विद्वानों की सभाएँ करना इत्यादि उसकी अनेक आज्ञाएँ इन शिलालेखों में लिखी मिलती हैं। वह रात दिन का ध्यान न कर मिलनेवाले से किसी भी समय मिलता था। सारे राज्य में लोगों को धर्म व नीति सिखाने तथा उनकी कठिनाइयाँ दूर करने के लिए उसने धर्म महामात्रा नाम के अधिकारी नियुक्त किये थे। अपने शासन के उन्नीसवें वर्ष में पाटलिपुत्र में उसने धार्मिक मत भेदों को दूर करने के लिए बौद्ध पण्डितों की एक बड़ी सभा की। उस सभा में उपगुप्त पण्डित को अध्यक्ष का पद मिला था। सभा की समाप्ति के बाद अशोक ने विदेशों में धर्म प्रचार करने के लिए अनेक दूत भेजे। बैक्ट्रिया के यवन-राजा अर्थात् ग्रीक-राजा के दरबार में महारक्षित, महिषमण्डल अर्थात् मैसूर-राज्य में महादेव, बनवासी में रक्षित, महाराष्ट्र में महाधर्म रक्षित, हिमालय के समीप तिब्बत इत्यादि प्रदेशों में मज्झिम, स्याम और ब्रह्मदेश में सोन और उत्तर और सिंहल (सीलोन) में स्वयं अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को उसने धर्म प्रचार के लिए भेजा। इनके साथ अनेक विद्वान् भी गये थे। इन धर्मोपदेशकों की संख्या चौंसठ हजार थी। इनके अतिरिक्त स्थान स्थान पर धर्म-प्रचार-मन्दिर अलग अलग बने थे। इन मन्दिरों की संख्या चौरासी

हज़ार थी। जहाँ जहाँ अशोक गया, वहाँ वहाँ किसी न किसी रूप में अपना स्मारक उसने बनवाया। ये स्मारक अभी तक मिलते हैं। मध्य-एशिया में अनेक लोगों को भेज कर वहाँ उनका उपनिवेश बसाया। सीरिया, मिस्र जैसे सुदूरवर्त्ती देशों में अशोक के दूतों के पहुँचने के प्रमाण मिलते हैं। नर्मदा के दक्षिण में महाराष्ट्र पर भी उसका थोड़ा बहुत प्रभाव था। विदेशों से अनेक उपयुक्त कलाकौशल लाकर उसने यहाँ उनका प्रचार किया। इस प्रकार अशोक ने बुद्ध-संघ स्थापित कर ई० स० पू० २३६ में देह त्याग किया। संसार के इतिहास में अशोक के समान पराक्रमी और चक्रवर्ती राजपुरुष का उदाहरण मिलना दुर्लभ है। अपनी इस अद्वितीयता के लिए ही अशोक को अर्हत पदवी मिली थी।

अशोक के मरने पर उसके पुत्र कुनाल और उसके नाती दशरथ ने शासन किया, लेकिन राज्य की अवनति होने लगी और कलिङ्ग, अफगानिस्तान ( वाल्हीक ) इत्यादि प्रान्त साम्राज्य से अलग हो गये। इस वंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ मौर्य को उसके एक ब्राह्मण सेनापति ने ई० स० पू० १८४ में मार डाला। इससे मौर्य-वंश का अन्त हो गया। इसके बाद भी मौर्य-वंश का शासन मगध में एक सौ वर्ष तक चलता रहा। सातवीं शताब्दी में गौडेश्वर शशांक ने बुद्ध-गया के बोधि-वृक्ष को काट डाला था। उसे अशोक के ही एक वंशधर पूर्णवर्मा ने फिर आरोपित किया था। आज भी उस जगह पर एक बोधि-वृक्ष खड़ा है।

मौर्यों के बाद शुङ्ग-घराने का उदय हुआ। उस घराने का आदि पुरुष पुष्यमित्र था। इस राजवंश का शासन ई० स० पू०

१८४ से ई० स० पू० ७३ तक रहा। पुष्यमित्र का लड़का अग्निमित्र महाकवि कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' नाटक का नायक था। इसी के शासन काल में महाभाष्यकार पतंजलि प्रसिद्ध हुए। शुङ्गों के शासन काल में अनेक गुफाएँ देश में तैयार हुई थीं। इनमें कार्ला और भाजे स्थान की गुफाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं।

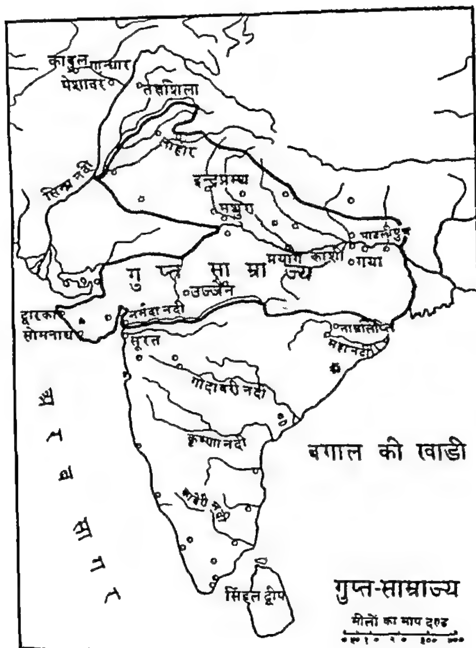
शुङ्ग-वंश के अन्त होने पर काण्व नाम के चार ब्राह्मण राजाओं ने ४५ वर्ष तक मगध पर शासन किया। इसके बाद मगध-राज्य आंध्र-वंश के शासन में चला गया। ये आंध्र लोग पहले तैलगाने में रहते थे और इनकी राजधानी कृष्णा नदी के मुहाने पर धनकटक में थी। इसके बाद इनकी सत्ता पश्चिम की ओर फैली। इसके बाद इनकी राजधानी प्रतिष्ठान अर्थात् आज-कल के पैठन स्थान में आगई। इनका वंश यहाँ शालिवाहन या शातवाहन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनकी राज्य सीमा बढ़ते बढ़ते नर्मदा के उत्तर मालवा और मगध तक पहुँच गई। ई० स० पू० के पहले शतक में आंध्रों का शासन भारत के अधिकांश भाग में फैल गया था। आंध्रों का शासन ४५० वर्ष तक रहा। इस काल में छोटे-बड़े सब मिला कर इस वंश के ३० राजाओं ने राज्य किया। आंध्रों का अन्त ई० स० २२५ के लगभग हुआ। ई० स० पू० की पहली शताब्दी में शातवाहनों की सत्ता अत्यंत प्रबल थी। उसी समय उज्जयनी में विक्रमादित्य नाम के राजा ने "संवत्" वर्ष-गणना का प्रारंभ किया। यह गणना आज भी उत्तर भारत में प्रचलित है। यह विक्रमादित्य कौन था और किस वंश का था, इसका ठीक ठीक निर्णय अभी तक नहीं हुआ है।

(२) यवन, शक इत्यादि के . . –बादशाह

पैशाची भाषायें संस्कृत से निकली हैं। इनका विपुल ग्रन्थ भाण्डार अशोक के बाद ४०० वर्षों में निर्माण हुआ। पुराणों की रचना भी इसी काल में हुई थी।

(४) गुप्तों का साम्राज्य—मगध-देश और उसकी राजधानी पाटलिपुत्र की उन्नति ई० स० ६०० से बराबर एक समान होती गई थी। बीच में केवल कुछ समय के लिए बाधा पड़ गई थी। उस काल में प्रद्योत, नन्द, मौर्य और शुंग इत्यादि ४ राजवंश हो चुके थे। बाद को कुशान वंश के समय मगध का वैभव नष्ट हो गया था और राजधानी पाटलिपुत्र की शोभा पेशावर चली गई थी। जब कुशान-शासकों की भी शक्ति क्षीण हो रही थी तब पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त नाम के एक व्यक्ति की बड़ी उन्नति हो रही थी। उसने लिच्छवी-राज-कुल की कन्या कुमारदेवी के साथ विवाह कर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। उसके सोने के सिक्कों पर राजा रानी दोनों के नाम अङ्कित हैं। उसने गुप्त वंश का नवीन शक जारी किया। उसकी गणना २६२-३२० ई० से होती है। यह वर्ष गणना उत्तर-भारत में अधिक काल तक जारी रही।

सन् ३३० के लगभग चन्द्रगुप्त की मृत्यु होगई और उसका पराक्रमी लड़का समुद्रगुप्त गद्दी पर बैठा। उसने सन् ३७५ तक राज्य किया और समस्त उत्तर भारत जीत लिया, फिर दक्षिण के पूर्वी समुद्रतटवर्ती काञ्ची तक आक्रमण करके वहाँ के राजाओं से कर वसूल किया। समुद्रगुप्त के बाद द्वितीय चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठा। उसने मालवा और सौराष्ट्र को अपने राज्य में मिला कर विक्रमादित्य की पदवी धारण की और


काबुल
गान्धार
पेशावर
तक्षशिला
लाहौर
सिन्धु नदी
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
पाटलीपुत्र
प्रयाग
काशी
गया
गुप्त साम्राज्य
उज्जैन
द्वारका
सोमनाथ
नर्मदा नदी
ताम्रलिप्ति
महानदी
सूरत
गोदावरी नदी
कृष्णा नदी
बगाल की खाडी
अ र ब सा ग र
कावेरी नदी
सिंहल द्वीप
गुप्त-साम्राज्य
मीलों का माप दण्ड

अश्वमेध-यज्ञ किया। उस समय उसने सोने के सिक्के ढाल कर ब्राह्मणों को बाँटे। वह जैसा शूर-वीर था, वैसा ही राजनीतिज्ञ भी था। प्रयाग में अशोक का बनवाया हुआ एक स्तम्भ है। इस स्तम्भ पर चन्द्रगुप्त ने अपने पराक्रम के कार्यों का वर्णन खुदाया है। यह गुप्त-सम्राट् वैष्णव-सम्प्रदायानुयायी था। अत इसने अपने सिक्कों पर गरुड़ का चिन्ह रक्खा था। रामायण, महाभारत और पुराण इत्यादि महाग्रन्थों का उसने पुनरुद्धार कराया और संस्कृत भाषा के प्रचार में अधिक प्रोत्साहन दिया। बौद्ध-काल में ब्राह्मणों की जो महिमा नष्ट हो गई थी वह गुप्तकाल में फिर स्थापित हुई। गुप्तों के समय की भवन निर्माण-कला बड़ी ही दर्शनीय और अनुपम है।

कवि कालिदास इत्यादि नौ रत्न इसी विक्रमादित्य के दरबार में थे, ऐसा समझना ठीक नहीं। जो नौ नाम प्रसिद्ध हैं वे ये हैं—कवि कालिदास, कोष-कार अमरसिंह, ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त, वैद्य धन्वन्तरि, वैयाकरण वररुचि, फलज्योतिषी क्षपणक, गणितज्ञ वराहमिहिर, शिल्पकार शंकु और मान्त्रिक वैतालभट्ट। ये लोग एक दूसरे के समकालीन न थे। इसलिए यह नौ रत्नों की चर्चा बनावटी है। आर्यभट्ट ( जन्म सन् ४७६ ), वराह-मिहिर ( ५०५-५८७ ) और ब्रह्मगुप्त ( जन्म ५९८ ) इत्यादि प्रसिद्ध विद्वान् थे। इनका गुप्त-काल में ही उदय हुआ था। इसलिए गुप्त-काल की इतनी महिमा गाई जाती है। विक्रमादित्य ने सन् ३७५-४१४ तक राज्य किया।

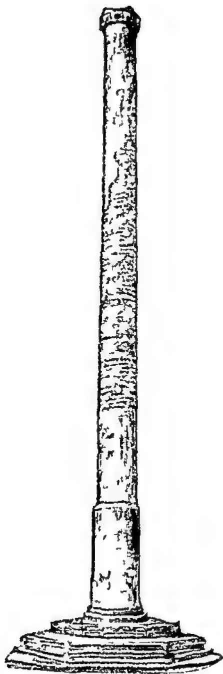
इससे पहले बौद्ध धर्म का एशिया के चीन इत्यादि देशों में अच्छा प्रचार हो चुका था। वहाँ से गौतमबुद्ध की जन्मभूमि व चरित्रस्थल का दर्शन करने और उक्त धर्म की वास्तविक जानकारी

प्राप्त करने के लिए विदेशों के अनेक प्रवासी समय समय पर भारत में आये। इसी तरह फाहियान नाम का विद्वान् चीनी यात्री बोद्ध-धर्म की जानकारी प्राप्त करने उत्तर के भू मार्ग से भारत में आकर सीलोन और जावा होकर जल मार्ग से स्वदेश को लौट गया था। उसकी यात्रा सन् ३९९ और ४१४ के बीच में हुई थी। उसका लिखा हुआ भारत की अवस्था का वर्णन आज भी मिलता है। उससे विदित होता है कि गुप्त काल में भारत उन्नति पर था। सुधार, सौख्य, विद्वत्ता, कला इत्यादि सभी उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुके थे। धनिकों से चंदा लेकर ग़रीबों को मुफ़्त दवा बाँटने का प्रबन्ध योरप में पहले पहल १७वीं शताब्दी में प्रारंभ हुआ था। लेकिन यह प्रबन्ध गुप्तों के ही समय में इस देश में शुरू हो गया था। लोगों का व्यवहार बड़ी सच्चाई का होता था। अपराधियों को मृत्यु-दण्ड देने की प्रथा यहाँ न थी। यात्रियों के ठहरने के लिए यहाँ धर्मशालाओं का अच्छा प्रबंध था। मद्यपान तो बिलकुल ही बंद था। इस प्रकार की अत्यन्त उपयुक्त जानकारी फाहियान की लिखी पुस्तक से होती है। मध्य एशिया से लगाकर दक्षिण और पूर्व समुद्र तक के विस्तीर्ण भू-भाग में आर्य संस्कृति का साम्राज्य फैल चुका था। इसका केन्द्र भारत था। इस संस्कृति का परिचय पाकर विदेशी लोग अपने को धन्य मानते थे। भारत में संस्कृति-संबंधी स्वार्थी और विध्वंसक भावों का उस समय तक उदय नहीं हुआ था। उसकी उत्पत्ति मुसलमानों के आक्रमण से इस देश में हुई।

चंद्र-गुप्त के लड़के कुमारगुप्त ने ई० स० ४५५ तक शासन किया। इसके बाद स्कंदगुप्त ने शासन करना शुरू ... । इसके शासन से पहले ही हूण लोगों ने भारत पर आक्रमण



चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी के सिक्के



कौशाम्बी-स्तम्भ

करना प्रारम्भ किया था। उसके रोकने में गुप्तों की शक्ति क्षीण होने लगी। वास्तव में गुप्त-वंश के चार ही राजे विशेष पराक्रमी हुए। बाद को दुर्बल और निस्तेज राजाओं के गद्दी पर बैठने से राज्य का ह्रास होगया। गुप्तों के राज्य पर हूणों ने पहले सन् ४५५ में आक्रमण किया था। परन्तु उस समय गुप्तों ने उनका सामना बड़ी सफलता के साथ किया। बाद को ईरान और काबुल पर अधिकार करके हूण लोग अधिक प्रबल हो गये। उनके एक नेता तोरमान ने मालवा पर आक्रमण करके अपनी सत्ता वहाँ जमाई। तोरमान के लड़के मिहिरगुल ने पंजाब जीत कर अपनी राजधानी सियालकोट में स्थापित की। पश्चिम में उसका राज्य ईरान और खोतान तक था। मालवा के राजा यशोधर्मदेव ने मिहिरगुल को परास्त कर पंजाब की सीमा तक का प्रदेश हूणों से छीन कर उनके पंजे से उसे छुड़ा लिया। बाद को मध्य-एशिया में तुर्कों का ज़ोर अधिक बढ़ा। इससे हूणों का साम्राज्य नष्ट होगया। सामान्यतः ये श्वेत हूण के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हैं।

स्कंद गुप्त के बाद पुरगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त, बुद्धगुप्त, भानुगुप्त इत्यादि अनेक राजे क्रम से गद्दी पर बैठे। लेकिन उनकी शक्ति बहुत परिमित थी। भानुगुप्त हूणों के साथ युद्ध करते करते सन् ५१० में मारा गया। इसके बाद गुप्त-वंश ई० स० ७३२ तक मगध में जीवित रहा। भानुगुप्त के बाद एक सौ वर्ष तक का क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता। यशोधर्मदेव का नाम खूब प्रसिद्ध हुआ। उसने मालवा में नवीन वर्ष-गणना प्रारम्भ की और स्वयं विक्रमादित्य की पदवी धारण कर मालवे में नवीन

और छोटे लड़के का नाम हर्षवर्धन था। जिस समय हूणो ने चढाई की थी, ये दोनों भाई उनसे लड़ने के लिए गये थे। इसी बीच में प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हो गई। इधर् मालवा के राजा देवगुप्त ने कन्नौज पर चढाई की और ग्रहवर्मा को मार कर उसकी रानी राज्यश्री को कैद कर लिया। इसके बाद वह स्थानेश्वर की ओर बढा। राज्यवर्धन हूणों को परास्त कर लौटा आ रहा था। पिता की मृत्यु होने, बहनोई के मारे जाने और राज्य पर शत्रु की चढाई होने के समाचार उसे मार्ग में हो मिले। उसने सीधा जाकर पहले देवगुप्त को मार डाला। इतने में ही देवगुप्त की सहायता के लिए उसका मित्र बङ्गाल का शशाङ्क आ गया। उसने कपट करके राज्यवर्धन को मार डाला। इन घटनाओं का समाचार हर्षवर्धन को मिला। उसने शशाक की और मालवा की सेनाओं को मार भगाया और विन्ध्याचल के जङ्गलों में भटकती हुई राज्यश्री को बंधन मुक्त करके उसे अपने साथ लिवा लिया। यह सब कार्य बहुत थोड़े समय में हो अर्थात् ई० स० ६०५ ६०६ के बीच में हुआ। आगे यही हर्ष चक्रवर्त्ती राजा हुआ और अपनी बहन राज्यश्री की सहायता से उसने कन्नौज में रहकर अपना राज काज सँभाला। बाण कवि ने श्रीहर्ष-चरित लिखा है। इसमें उसका सब वर्णन दिया गया है। उस समय का हाल चीनी यात्री हुएनसेङ्ग के लेखो से भी मिलता है।

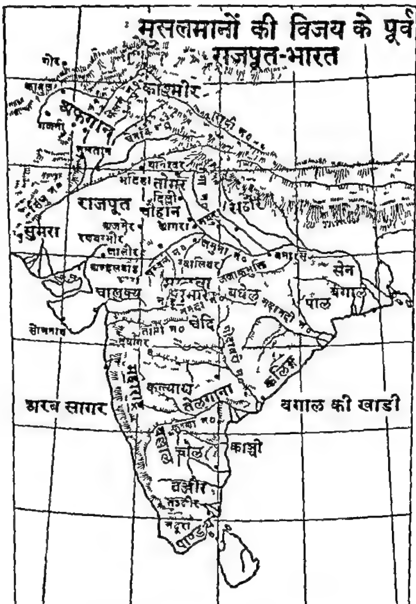
हर्ष के समय में ही दूसरा चीनी-यात्री हुएनसेङ्ग भारत में आया था। वह इस देश में सन् ६२९ से सन् ६४५ तक रहा। उसने घूम फिर कर भारत का भ्रमण किया और उसका हाल अपनी पुस्तक में लिखा। उससे हर्ष के समय की देश की


काबुल
गान्धार
पुरुषपुर
सिन्धु नदी
जालन्धर
स्थानेश्वर
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
कन्नौज
पाटलीपुत्र
प्रयाग
गया
नर्मदा नदी
ताम्रलिप्ति
गोदावरी न
हर्ष का साम्राज्य
सन् ६४० का भारत

अवस्था, प्रजा तथा तत्कालीन राज्यों का अच्छा परिचय मिलता है। उस समय भारत में कुल बहत्तर राज्य थे, जिनमें प्रजा सुख और शान्ति का अनुभव करती थी। नालन्द के विद्यापीठ में दो वर्ष रह कर हुएनसेङ्ग ने योगविद्या और बौद्ध-धर्म के ग्रन्थों का अभ्यास किया। बौद्ध-सङ्घों के किये हुए बड़े बड़े कार्य, बड़े बड़े मठों का निर्माण तथा उनका प्रबन्ध, बुद्ध की सोने-चाँदी की मूर्त्तियाँ, बाग़, फल-फूल, खेती इत्यादि सम्बन्धी बौद्ध भिक्षुओं के प्रारम्भ किये हुए उद्योग आदि का जो वर्णन उसने दिया है उसे पढ़ कर और उस समय की उन्नति का अनुभव करके दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। नालन्द में उस समय दस हजार विद्यार्थी तथा शिक्षकों का समुदाय केवल धनिकों के दान के सहारे अपना जीवन निर्वाह कर विद्योपार्जन करता था। ऐसे ही विद्यापीठ अन्य स्थानों में भी थे। हुएनसेङ्ग दक्षिण में पुलकेशी की राजधानी बादामी भी गया था। उसका किया हुआ भारत का वर्णन इतिहास में पक्षपात दोष से रहित समझा जाता है।

हर्ष ने सन् ६०६ से ६४७ तक राज्य किया। उसके शासन और उसकी राजनीति का जो वर्णन हुएनसेङ्ग ने किया है उससे विदित होता है कि श्रीहर्ष बड़ा दानी, प्रजाहितपरायण और विद्याव्यसनी सम्राट् था। नर्मदा से सिन्धु तक उसके राज्य का विस्तार था। कामरूप के राजा कुमारराज ने एक अति मूल्यवान् श्वेतच्छत्र सम्राट् चिन्ह कह कर उसको भेंट में दिया था। हर्ष ने पहले सब राज्यों में दौरा कर स्वयं उनका प्रबन्ध किया। इसके बाद ६ वर्ष में उसने अपने अधीन-राज्य का उत्तर में विस्तार किया। यह राज्य प्राचीन भारतीय साम्राज्य के समान

वह लुप्त होकर कन्नौज को प्राप्त हुई। लेकिन वहाँ सतत चक्रवर्तित्व स्थापित करनेवाले राजे सम्राट् हर्ष के बाद न होने से वह महिमा हट कर कुछ समय के लिए काश्मीर-राज्य की राजधानी को प्राप्त हुई। इसके बाद कुछ गौड़ के पालराजवंश में और कुछ मारवाड़ के गुर्जर-प्रतीहारों में बँट गई। ये प्रतीहार ई० स० ७२५ से १०१८ तक उत्तर-भारत में प्रबल बने रहे। इस काल में इस वंश में नागभट्ट, भोज, महीपाल इत्यादि अनेक पराक्रमी राजे उत्पन्न हुए। इनको परिहार भी कहते हैं। इस वंश का राजा राज्यपाल कन्नौज में उस समय राज्य करता था। इसी के समय महमूद-ग़जनवी ने कन्नौज पर आक्रमण करके उसको परास्त किया। बाद को राठोड़वंशी राजपूत राजाओं ने कन्नौज का राज्य जीत लिया। इस वंश में सात राजे हुए। इनमें से राजा जयचंद जिस समय राज्य करता था, उस समय मुहम्मद ग़ोरी ने कन्नौज के राज्य पर चढ़ाई कर उसे अपने अधिकार में किया था। इसी वंश के एक राजा ने बाद को जोधपुर के राज्य की स्थापना की। आज-कल राजपूतों के अनेक राज्य क़ायम हैं। इनकी उत्पत्ति प्राचीन व मध्यकालीन क्षत्रिय व अन्य पराक्रमी राजवंशों से हुई है। राजपूत का शुद्ध रूप है राजपुत्र। उनका क्षात्र-तेज हजारों वर्षों से चमक रहा है। आजकल भावनगर के समीप जो "वळा" नामक राज्य है वह पहले वल्लभीपुर के नाम से प्रसिद्ध था। वह ई० स० ४६०-७६६ तक स्वतंत्र राज्य था। इसके बाद "पट्टन" में दो सौ वर्ष तक वहाँ के राज-वंश का शासन गुजरात पर रहा। बाद को इस राजवंश को दक्षिण के चालुक्य राजाओं ने जीत लिया (सन् ९४२)। चालुक्य वंश में पहला राजा मूलराज बड़ा पराक्रमी हुआ। उसका लड़का चामुंड पट्टन में




मुसलमानों के विजय के पूर्व राजपूत भारत

शासन करता था। इसी समय सोमनाथ पर चढ़ाई करने जाते समय ग़ज़नी के महमूद ने इस नगर को जीत लिया था। चालुक्यों के बाद 'वाघेल' वंश का शासन कुछ दिनों तक गुजरात में रहा। बाद को सन् १२९७ में गुजरात को अलाउद्दीन ख़िलजी ने जीता।

नवीं शताब्दी में भारत में अनेक भिन्न भिन्न छोटे छोटे राज्यों की स्थापना हुई। मगध-देश में "पाल" वंशी राजे शासन करते थे। वे बौद्ध धर्मावलम्बी थे। उन्होंने तिब्बत में बौद्ध-धर्म का प्रचार किया। इस वंश के सत्रह राजे प्रसिद्ध हैं। उनके समय में संस्कृत भाषा की बड़ी उन्नति थी। ग्यारहवीं सदी के अंत में बंगाल में "सेन" वंशी राजाओं का आधिपत्य रहा। इन सेन वंशी राजाओं का राज्य सन् १२०२ में बख़्त्यार खिलजी ने जीत लिया।

नवीं सदी के आरम्भ में "परमार" राजपूतों ने अपना राज्य धार में स्थापित किया। इस घराने में राजा "मुंज" प्रसिद्ध हुआ है। इसने संस्कृत-भाषा के प्रचार के लिए ख़ूब प्रोत्साहन दिया। मुञ्ज के बाद उसका पुत्र प्रसिद्ध भोज (सन् १०१० १०२३) बड़ा पराक्रमी हुआ। वह विद्वानों और कवियों का विशेष रूप से आदर करता था। उसने भी संस्कृत की यथेष्ट रूप से समुन्नति की। सन् १२३२ में उज्जैन शहर पर मुसलमानों का कब्ज़ा हुआ और बाद को अलाउद्दीन खिलजी ने धार के परमार-वंश का नाश कर दिया। पंजाब में भी राजपूतों के राज्य थे, जिन्हें मुसलमानों ने जीत कर अपने अधीन कर लिया था।

दिल्ली में सन् ७३६ में अनंगपाल ने तोमर या तुवर-वंश के राजपूत-राज्य की स्थापना की। इस वंश के उन्नीस राजाओं ने दिल्ली में शासन किया। निस्सन्तान होने के कारण अन्तिम राजा ने अपने नाती अर्थात् अजमेर के चौहान-वंश के पृथिवी राज को दिल्ली की गद्दी दे दी। इस पृथिवीराज को मुहम्मद ग़ोरी ने सन् ११९३ में जीता। महाराष्ट्र देश के राजवंशों का वर्णन आगे तीसरे भाग में किया जायगा।

बिलकुल दक्षिण में पाण्ड्य, चोल और केरल नाम के बड़े पुराने राज्य थे। काञ्ची अर्थात् चोल मंडल में पल्लवों का राज्य बहुत दिनों से था। चोल-मंडल का ही अंग्रेज़ी अपभ्रंश कारोमंडल है। मैसूर-प्रान्त में "गंग" नाम का एक घराना था। उसके प्रधान पुरुष चामुण्डराय ने श्रावण बेल गोला में गोमत की विशाल पाषाण मूर्ति सन् ९८३ में तैयार कराई थी। यह मूर्ति अपूर्व है। द्वार समुद्र में होयसल वल्लवों का राज्य मुसलमानों के प्रवेश-काल तक प्रबल था। अंत में सुल्तान अला उद्दीन ख़िलजी के सेनापति मलिक काफ़ूर ने दक्षिण के सभी राज्यों को जीत लिया ( सन् १३१० )।

पाण्ड्य-वंशी राजाओं का रोमन लोगों के साथ मोती का व्यापार होता था। इनकी राजधानी मधुरा मीनाक्षी थी। इसी प्रकार चोलों की राजधानी तञ्जोर थी। इस वंश का उत्कर्ष राजराज के समय में हुआ ( सन् ९८५ १०१० )। उसने सिंहल द्वीप जीत लिया था। इतना ही नहीं, बल्कि वर्तमान मदरास प्रान्त का अधिकाश भाग भी उसी के अधीन था। पश्चिम में

रल नामक राज्य था। इसमें मालाबार व कनारा के भूभाग म्मिलित थे।

(३) अर्वाचीन हिन्दू-धर्म की उत्पत्ति—यह बात ध्यान रखने की है कि अनेक तरह की राज्य क्रान्तियों व गड़बड़ो होते रहने से भी इस देश की ज्ञान-सम्बन्धी उन्नति में किसी कार की बाधा न पहुँच पाती थी। सातवीं सदी के अन्त में गध-देश में कुमारिल भट्ट नाम का एक विद्वान् पुरुष हुआ। सने बौद्ध धर्म का खडन किया। यही काम आठवीं सदी में ंकराचार्य ने पूरा किया और भगवद्गीता पर भाष्य लिख कर दान्त मार्ग की स्थापना की। भारत के दक्षिण से लेकर उत्तर हिमालय तक, द्वारका से लेकर पूर्व में समुद्र तक शकरा ार्य ने पर्यटन करके इन चारों दिशाओं मे शृङ्गेरी, द्वारका, दरी केदार और जगन्नाथपुरी में वेदान्त-मार्ग के धर्ममठ थापित किये। इनका प्रभाव आज भी भारत में पड़ता है। ांकराचार्य के अनेक ग्रन्थ हैं। उनका अभ्यास देश में बड़े आदर के साथ किया जाता है। हिमालय पर बत्तोस वर्ष की अवस्था में ांकराचार्य का देहान्त हुआ। उनका जन्म वैशाख शुक्ल १० शाके ७१० व मृत्यु वशाख शुक्ल १५ शाके ७४२ को हुई। (ई० स० ८८-८२० )

शकराचार्य के अनन्तर फिर हिन्दू धर्म में अनेक सम्प्रदायों व पासनाओं के क्रम भिन्न भिन्न पुरुषों ने जारी किये। रामानुज सन् ११५० ), मध्वाचार्य ( जन्म सन् ११९९ ), रामानन्द सन् १३००-१४०० ), चैतन्य ( सन १४८५-१५३३ ) इत्यादि

वैष्णव पथ के प्रसिद्ध साधु हुए और इनके अनुयायी आजकल भी प्रचुर संख्या में हैं। **वल्लभस्वामी** ने ( १५२० ) कृष्ण भक्ति का विशेष प्रचार किया। हिन्दू-मुसलमानों में ऐक्य स्थापन करने के लिए **कबीर** ने ( १३८०-१४२० ) प्रयत्न किया। पहले के अनेक ग्रन्थों और सूत्रो पर इस समय में बड़े बड़े भाष्य बने। विशेषत गोविन्द स्वामी, केशव स्वामी इत्यादि "स्वामी" नाम धारण करनेवाले व्यक्ति इस समय में भाष्यकार हुए।

प्राचीन काल मे प्राकृत भाषा में ग्रन्थ रचना अधिक होती थी। वह परिपाटी अब बन्द होकर सस्कृत में ग्रन्थ-रचना की परिपाटी चल पड़ी। काव्य, नाटक, उपन्यास, साहित्य-ग्रन्थ इस समय सभी संस्कृत भाषा में तैयार हुए। इस समय के देवालय और अन्य इमारतो को देखने से पता लगता है कि तत्कालीन शिल्पकला उन्नतावस्था में थी। ज्योतिष-शास्त्र की भी पूर्ति हुई। सस्कृत मे बीजगणित का अनुवाद अरब लोगो ने आठवीं सदी में किया और उन्होंने ही उसका प्रचार भी यूरोप में किया। पंचतंत्र-कार विष्णु शर्मा, भट्टि, बाणभट्ट, दंडी, भारवि, सुबन्धु, भर्तृहरि इत्यादि सस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि और ग्रन्थकार इसी काल में उदय हुए।

(४) **विहङ्गमावलोकन**—सरसरी निगाह से भारत के प्राचीन इतिहास को देखने से प्रतीत होता है कि ई० स० पू० ३२६ सिकन्दर के आक्रमण का समय निर्विवाद प्रसिद्ध है। तब ई० स० पू० ६४२ ही बनारस के शिशुनागराज का समय अपने प्राचीन इतिहास में पहला निश्चित समय मानना होगा। इसके पूर्व की घटनाओ का ऐतिहासिक निश्चय अब तक नहीं हो

पाया है। जिस समय शिशुनाग ने मगध में राजगृह को अपनी राजधानी बनाया उस समय से मगध-देश का ऐश्वर्य बढ़ता हुआ गुप्तो के अन्त तक अर्थात् ई० स० ५१० तक कोई ११ सौ वर्ष तक बराबर बना रहा। इस दीर्घ समय में ई० स० पू० ६४२-४१३ में शिशुनाग के प्रद्योत्-वंश का उदय हुआ, जिसके समय में गौतम बुद्ध और महावीर जैसे प्रसिद्ध पुरुष उत्पन्न हुए।

ई० स० पू० ४१३-३२२ तक नंदवश के नौ राजे हुए।

ई० स० पू० ३२२-१८४ तक मौर्य-वंश का उत्कर्ष रहा।

ई० स० पू० १८४ १७३ तक पुष्यमित्र के शुङ्ग-वंश और उसके वाद।

ई० स० पू० ७२—ई० स० २७ तक काण्व ब्राह्मण-वश ने राज्य किया।

ई० स० २७ ३२० तक एक भी चक्रवर्ती-वश न होने से उत्तर म अनेक वर्षो तक कनिष्क का कुशानवश और दक्षिण में शात-वाहन का आंध्रवश प्रवल रहा।

ई० स० ३२० ४९० तक पाटलिपुत्र में गुप्त-वश का प्रावल्य था।

इसके बाद ई० स० ११९३ में गोरी ने दिल्ली को जीता। इस जीत के पहले तक ७०० वर्ष तक स्थान स्थान में अनेक राज्य एक दूसरे से अलग रह कर फूलते फलते रहे। इनमें अनेक पराक्रमी पुरुप भी हुए। लेकिन उनमें एक भी चक्रवती राजा न हुआ।

इस प्रकार इस देश में प्राचीन काल से ही छोटे-बड़े अनेक राज्य कायम होते रहे, कहीं कहीं उनमें कोई राज्य प्रवल होकर सार्वभौम बन जाता। सार्वभौम-राज्य के टूटने पर छोटे राज्यों पर उस का कुप्रभाव न पड़ता था। उसी प्रकार युद्ध और आक्रमणों से

देश की प्रजा को अपनी उन्नति करने में कोई अड़चन न होती थी। बड़े बड़े साम्राज्यों और सुधारों का उदय गंगा और यमुना आदि के प्रवाह-भाग में हुआ। सभी काल में व्यापार और धर्म प्रचार के हेतु विदेशों में भारत के यात्री स्थल और जल मार्ग के द्वारा पूर्व-पश्चिम दोनों दिशाओं में ईरान, मिस्र, रोम और पूर्व के द्वीप समूहों में बराबर आते-जाते थे। इस आने-जाने के योग से यहाँ से विद्या, कला, सम्पत्ति इत्यादि का प्रचार दूर दूर के देशों में हुआ। इससे विदेशियों की दृष्टि भारत पर गड़ गई। ग्राक, ईरानी, हूण, अफ़गान, मुगल इत्यादि अनेक विदेशी इस देश पर अनेक बार आक्रमण करके यहाँ अपनी थोड़ी-बहुत सत्ता जमाने में सफल हुए। लेकिन इस देश के लोगों की बुद्धिमत्ता और संस्कृति सुसम्पन्न और शुद्ध बनी हुई थी। इसी लिए ऐसे सभी विदेशियों के संसर्ग के योग से उन्होंने अपने जीवन को और भी अधिक विस्तृत और दृढ़ कर लिया। अपनी दृढ़ता के कारण उन्होंने विदेशियों पर अपनी छाप लगा दी। विदेशी हमले होने पर भारतीयों का अवश्य ही पराभव होता था, यह कहना यथार्थ नहीं है। क्योंकि वे हमले जीवित राष्ट्र के उत्साह को नहीं भंग कर सके, यह बात अवश्य ही ध्यान में रखने योग्य है। मौर्य साम्राज्य, गुप्त-साम्राज्य, उत्तर-कालीन राजपूतों के रजवाडों इत्यादि के दीर्घ कालीन शासन में विद्या, स्वातंत्र्य और ऐश्वर्य का उपभोग भारतीय आर्यों ने स्वयं किया और दूसरों को कराया। ई० स० पू० ६०० से ई० स० ११९३ तक कोई १८ सौ वर्ष के दीर्घ कालीन स्वराज्य-काल में भारत ने स्वातंत्र्य और उन्नति का उपभोग किया। ऐसा समय इस पृथिवी पर किसी दूसरे राष्ट्र को कभी नहीं प्राप्त हुआ। दो सौ वर्ष के मुगल साम्राज्य-काल तक में भारतीय समाज जीवित राष्ट्र का

सा सुख भोगता था। मुग़लों के ह्रास-काल में मराठों ने हिन्दू-सत्ता को पुनुरुज्जीवित कर दिया। और इसकी पूर्त्ति होने के पहले ही नियमबद्ध, युद्धकलाप्रवीण, शस्त्रास्त्रों में प्रवीण अँग्रेज़-जाति का सम्बन्ध भारत से हो गया और अँग्रेज़ों की सार्वभौम सत्ता इस देश में स्थापित हो गई। ऐसी ही इस देश के इतिहास की परम्परा चली आ रही है।

---

लगा। उस समय अफ़गानिस्तान के पूर्व भाग गांधार-देश व सिन्धु के किनारे पंजाब-प्रान्त में राजा जयपाल शासन करता था। इसकी राजधानी पेशावर थी। सुबुक्तगीन ने जयपाल पर चढाई करके उसके राज्य का कुछ भाग छीन लिया। सुबुक्तगीन का लड़का सुल्तान महमूद या महमूद ग़ज़नवी बड़ा पराक्रमी निकला। उसने सन् ९९९ से १०३०. तक ग़ज़नी में राज्य कर भारत पर लगातार सत्रह चढाइयाँ कीं। उस समय भारत में राजपूतों के अनेक छोटे छोटे राज्य थे, जिनमें परस्पर ऐक्य न था। महमूद बड़ा शूर और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति होने के कारण राजपूत राजाओं को एक एक करके हरा दिया। यहाँ की अपार सम्पत्ति लूट कर उसने ग़ज़नी में एकत्र की। उस समय इस देश में हिन्दुओं के बड़े प्राचीन और धन सम्पन्न अनेक मन्दिर थे। इनको विध्वस्त कर और अनेक लड़ाइयो को जीत कर उसने अगणित हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। सन् १०२४ में उसने अपनी अन्तिम आक्रमण-यात्रा में दूर के काठियावाड़ प्रान्त पर हमला किया। काठियावाड़ के दक्षिण में समुद्रतट पर सोमनाथ का प्रसिद्ध मंदिर था। इसकी सम्पत्ति भी अपार थी। इससे इसका नाम दूर दूर तक फैला था। वहाँ की सम्पत्ति को लेने की आशा से महमूद पंजाब, राजपूताना, गुजरात इत्यादि प्रान्त जीतता हुआ ठेठ सोमनाथ पर चढ आया। लड़ाई में आये हुए हिन्दुओं को हरा कर उसने मन्दिर पर अधिकार कर लिया। उसने अपने हाथ से उस मन्दिर की मूर्ति को तोड़ा, और सब सम्पत्ति लेकर सिंध प्रान्त पार कर वह अपनी राजधानी ग़ज़नी को लौट गया। इस लड़ाई में उसकी फौज के बहुत आदमी मारे गये। इसके बाद महमूद फिर कभी भारत में नहीं आया। उसकी



पृथ्वीराज



सुबुक्तगीन

मृत्यु सन् १०३० में हुई। सिन्धु के इस पार मुसलमानों की धाक जमानेवाला यही पहला पराक्रमी मुसलमान सुल्तान है। यह विद्वान् और वीर था, किन्तु साथ ही बड़ा लोभी भी था। भारत से अनेक कारीगरों को ले जाकर उनसे इसने गजनी में बड़े बड़े सुन्दर भवन बनवाये।

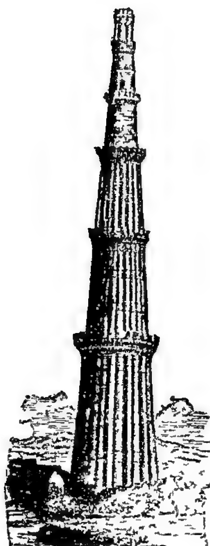
महमूद के वंश में उसके समान पराक्रमी पुरुष अन्य कोई नहीं हुआ। पंजाब मात्र ही गजनी के राज्य में मिला रहा। बाद को अफगानिस्तान के गोरी-घराने के सरदारों ने ग़जनी के राज्य को जीत लिया। इस गोरी घराने म शहाबुद्दीन जो महम्मद गोरी भी कहलाता था, शूर और पराक्रमी पुरुष हुआ। उसने ई० स० ११७६ से ११९५ तक भारत पर सात बार आक्रमण किया। इस समय दिल्ली में पृथिवीराज चोहान और कन्नोज में जयचद राठोड़ नाम के दो राजपूत राजे राज्य कर रहे थे। इन दानों राजाओं में परस्पर वैर हो गया था। पृथिवीराज ने पहले महम्मद को हरा कर उसे वापस लौट जाने दिया। लेकिन सन् ११९२ में महम्मद ने दिल्ली पर फिर हमला किया ओर पृथिवीराज को युद्ध में मार डाला, और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इसके बाद जयचद को हरा कर कन्नौज-राज्य को अपने अधीन किया। यह महम्मद गोरी सन् १२०६ में गजनी में मरा। कुतुबुद्दीन नाम का एक पराक्रमी गुलाम महम्मद के अधीन रह कर भारत के अन्य भागों को जीतने लगा। उसने दिल्ली में स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर ठेठ बगाल की सीमा तक का देश अपने अधिकार में कर लिया। इस तरह सन् १२०० के लगभग भारत में मुसलमानी राज्य पूरी तरह क़ायम हो गया। कुतुबुद्दीन के वंश को गुलाम-वंश के नाम से मुसलमान इतिहासकार पुकारते

हैं। दिल्ली के दक्षिण में कुतुबमीनार नाम की जो सुन्दर इमारत है उसे कुतुबुद्दीन ने ही बनवाया था।

अल्तमश ( सन् १२११–३६ ई० )—सन् १२१० ई० में कुतुबुद्दीन की मृत्यु हुई। उसके बाद उसके बेटे को गद्दी से उतार कर अल्तमश बादशाह बन गया। अल्तमश के समय में चंगेज़ ख़ाँ ने मध्य-एशिया में मुगल-साम्राज्य का विस्तार किया। उसने भारतवर्ष पर भी आक्रमण करने का विचार किया। परन्तु हिरात में बलवा हो जाने के कारण उसे लौट जाना पड़ा। इसी समय सिन्ध और बंगाल के सूबेदारों ने दिल्ली के बादशाह के विरुद्ध विद्रोह किया। परन्तु अल्तमश ने उस विद्रोह को शीघ्र ही दबा दिया। उसने राजपूताने पर भी चढ़ाई की और कई स्थान अपने अधिकार में कर लिये।

अल्तमश बड़ा योग्य बादशाह था। वह विद्वानों का ख़ूब आदर करता था। उसके समय में कितने ही विद्वान् फ़ारस और मध्य-एशिया से हिन्दुस्तान में आये। सन् १२३६ में उसकी मृत्यु हुई।

रज़ियाबेगम ( सन् १२३६–४० ई० )—रज़िया बेगम अल्तमश की बेटी थी। स्वयं अल्तमश की यह इच्छा थी कि उसके बाद रज़िया ही दिल्ली की अधीश्वरी हो कर राज्य का सञ्चालन करे। परन्तु अल्तमश के दरबारियों ने एक स्त्री को इतना अधिकार देना उचित न समझ कर अल्तमश के बेटे को गद्दी पर बैठाया। परन्तु ६ ही महीने के बाद उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद रज़िया गद्दी पर बैठी। वह बड़ी बुद्धिमती थी। उसमें राज्य शासन करने की योग्यता भी ख़ूब थी। वह स्वयं राज्य का सारा प्रबन्ध करती थी। परन्तु एक हबशी पर विशेष प्रेम प्रदर्शित करने



कुतुबमीनार



बलबन के सिक्के

के कारण उसके दरबारी उससे रुष्ट हो गये और उन्होंने विद्रोह किया। रज़िया ने उनका विद्रोह दबाने की चेष्टा की, परन्तु वह सन् १२४० में मार डाली गई।

बलबन—रजिया के बाद दो बादशाह और हुए। परन्तु वे बड़े अयोग्य थे। सन् १२४६ में अल्तमश का सब से छोटा लड़का नासिरुद्दीन गद्दी पर बैठा। उसकी बड़ी ही सरल प्रकृति थी। सच पूछो तो राज्य का सारा भार उसके वज़ीर ग़यासुद्दीन बलबन पर था। उसने २० वर्ष तक राज्य किया। सन् १२६६ में उसके मरने के बाद ग़यासुद्दीन बलबन ही गद्दी पर बैठा। वह बड़ा वीर था। विद्रोहियों को वह खूब कठोर दण्ड देता था। उसने मुगलों के आक्रमण रोकने के लिए पुराने किलों की मरम्मत की और नये क़िले बनवाये। वह विद्वानों का यथेष्ट सम्मान करता था। उसी के समय में फारसी का प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो हुआ। सन् १२८६ में उसकी मृत्यु हुई। उसके बाद उसका पोता केक़ुबाद गद्दी पर बैठा। परन्तु अपनी अयोग्यता के कारण मारा गया।

दिल्ली की गद्दी पर अनेक पठान वंशी सुल्तानों का अधिकार रहा और कालान्तर में अनेक सुल्तानों ने अपना राज्य सारे भारत में फैलाया। इन पठान-घरानों की नामावली नीचे दी जाती है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १-गजनवी-वंश | ९९९-११८६ | २-गोरीवंश | ११८७ १२०६ |
| ३-गुलाम-वंश | १२०६-१२८८ | ४-खिलजीवंश | १२८९-१३२० |
| ५-तुगलक-वंश | १३२० १४१४ | ६-सैय्यद-वंश | १४१४ १४५० |
| ७-लोदी-वंश | १४५० १६२६ | ८-मुगल बादशाही शुरू | १५२६ |

मुगल-बादशाही के स्थापित होने पर भारत के इतिहास में भिन्नता आ गई। ई० स० १००० से सन् १५२६ तक जो जो मुसलमान राजवंश यहाँ हुए वे पठान, अफ़ग़ान अथवा तुर्क नाम से पुकारे जाते हैं। इनमें कई व्यक्ति क्रूर और पराक्रमी हुए और कुछ दुर्बल भी। इसलिए यहाँ सिर्फ प्रसिद्ध प्रसिद्ध सुल्तानों का ही हाल लिखा जाता है।

( ३ ) पठान-राजवंश, अलाउद्दीन खिलजी—सारे भारत को जीतनेवाला पहला पुरुष अलाउद्दीन खिलजी था। उसका चाचा जलालुद्दीन दिल्ली में राज्य करता था। अलाउद्दीन ने सन् १२९५ में नर्मदा-नदी को पार कर दक्षिण में प्रवेश किया। उस समय महाराष्ट्र में यादव राजाओं का शासन था। इन राजाओं का हाल महाराष्ट्र-शासन-काल में ( तृतीय भाग ) दिया गया है।

यादवों की राजधानी देवगढ़ ( उपनाम देवगिरि ) या आज कल के दौलताबाद में थी। अलाउद्दीन मालवा प्रान्त का सूबेदार था। उसने यह बहाना किया कि मेरे चाचा अर्थात् दिल्ली के बादशाह जलालुद्दीन ने मुझे निकाल दिया है। इसी से अठारह हजार सेना लेकर मैं देवगढ आ गया हूँ। वहाँ के राजा रामदेव राय यादव ने लडाई की कोई तैयारी न की थी। इससे उसने देवगढ़-किले में जाकर शरण ली। अलाउद्दीन ने क़िले को घेर लिया और यह प्रकट किया कि "मैं सिर्फ थोड़ी फौज लेकर आगे आ गया हूँ। मेरी बड़ी फौज पीछे आ रही है।" यह सुन कर रामदेवराय घबरा गया। इधर क़िले में अन्नादि भरने के एवज में नमक की बोरियाँ भर दी गई थीं। ऐसी स्थिति में रामदेवराय ने अलाउद्दीन से सन्धि का प्रस्ताव किया। इधर रामदेव के लड़के शंकरदेव ने बाहर से आकर अलाउद्दीन की

फौज पर आक्रमण किया और उसका संहार करने लगा। रामदेव-राय का एक छोटा सरदार भी अपनी फौज लेकर शकरदेव की सहायता के लिए आता दिखाई दिया। उसकी सेना को दूर से देख कर शकरदेव के सिपाहियों ने यह अनुमान किया कि बादशाह की यही फौज पीछे से अलाउद्दीन की मदद के लिए आ रही है। इससे घबरा कर वे लोग लड़ाई का मैदान छोड़ इधर उधर भागने लगे। अंत में दोनों पक्षों में सन्धि हुई और रामदेव-राय ने दंड के रूप में अपने राज्य का कुछ अंश अलाउद्दीन को दिया और हर साल कर देने का वचन देकर अपना संकट दूर किया। अलाउद्दीन ने लौट कर अपने चाचा की हत्या की और दिल्ली के तख़्त पर बैठ कर खुद सुल्तान बन गया ( सन् १२९६ )।

अलाउद्दीन ने सन् १२९६ से सन् १३१६ तक राज्य किया। सन् १२९७ में उसने गुजरात-देश जीता और वहाँ के राजा कर्णराय का विनाश किया। वह कर्णराय की स्त्री कमलादेवी व लड़की देवलदेवी को पकड़ कर दिल्ली ले आया। कमलादेवी को उसने अपनी बेगम बनाया। और देवलदेवी का निकाह अपने लड़के के साथ कर दिया। राजपूताना में चित्तौड़ अर्थात् वर्तमान उदयपुर-राज्य पहले बड़ा प्रसिद्ध राज्य था। वहाँ के महाराणा भीमसिंह की स्त्री पद्मिनी बड़ी सुन्दर और वीर स्त्री थी। इसको लेने की इच्छा से अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर हमला किया। लेकिन उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। चित्तौड़ में उसकी हार हुई। राजपूत लोग बड़ी वीरता से लड़े। दोनों पक्षवालों ने बड़ा घमासान युद्ध किया। अलाउद्दीन की ज़रा भी परवा न करते हुए राजपूतों ने अपना स्वातन्त्र्य और राज्य बनाये रक्खा ( सन् १३०३-४ )।

मलिक काफूर नामक एक नये बने हुए मुसलमान को अलाउद्दीन ने बड़ा ऊँचा पद दिया था। इस काफूर ने दक्षिण में अनेक चढ़ाइयाँ कीं। सन् १३०७ में इसने देवगढ के रामदेव राय को पकड़ कर दिल्ली भेज दिया। लेकिन बाद को बादशाह ने उसका यथोचित सम्मान करके उसे फिर अपने राज्य को वापस भेज दिया। महाराष्ट्र के दक्षिण में अनेक हिन्दू-राज्य थे। इन राज्यों पर मलिक काफूर ने सन् १३१० में चढ़ाई की और इन सब को जीत लिया। मुसलमानी शासन का झंडा लेकर वह ठेठ कन्या-कुमारी जा पहुँचा। सन् १३१२ में उसने फिर महाराष्ट्र पर हमला किया। उस समय रामदेवराय का लड़का शकरदेव देवगढ की गद्दी पर था, उसको मार कर उसने महाराष्ट्र में मुसलमानी शासन जारी किया।

अलाउद्दीन सन् १३१६ में मर गया। वह स्वभाव से ही क्रूर, छली और अत्याचारी था। लेकिन वह भाग्यशाली और पराक्रमी था। उसने थोड़े ही दिनों में मुसलमानी राज्य की सीमा बहुत अधिक बढा दी।

(४) महम्मद तुगलक और फीरोज तुगलक—अलाउद्दीन के बाद जो शक्तिशाली बादशाह दिल्ली के तख्त पर बैठा उसका नाम महम्मद तुगलक है। उसने सन् १३२६ से १३५१ तक शासन किया। यह बादशाह विद्वान् और उद्योगी तो था, लेकिन कुछ सनकी और स्वच्छन्द भी था। असम्भव मनोरथों को मन में कल्पित कर उन्हें पूरा करने के लिए उसने बड़े कठिन और निरर्थक उद्योग किया। जिस समय दक्षिण-भारत में विद्रोही उठ खड़े हुए उस समय वहाँ की निगरानी करने के लिए वह स्वय देवगढ गया और उसका नाम दौलताबाद र

कर उसे अपनी राजधानी बनाया। दिल्ली के निवासियों को भी अपना घर-द्वार छोड़कर दौलताबाद में रहने की आज्ञा दी गई। ऐसा करने से उन लोगों की बड़ी दुर्दशा हुई। देवगढ पहुँचने पर लोगों के रहने का उचित प्रबन्ध न हो सका। इससे उन लोगों को फिर दिल्ली वापस जाने की आज्ञा मिली। बड़े बड़े देशों को जीत कर उन पर शासन करने और अपना नाम अजर-अमर बनाने की इच्छा उसमें अधिक प्रबल थी। अपनी यह इच्छा पूरी करने के लिए उसने ख़ुशरू को एक बड़ी फौज देकर नैपाल होकर चीन पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। इस फौज के हार जाने पर, लौटते समय वर्षा और सर्दी के कारण, फौज का संहार हो गया। एक लाख की फौज में सिर्फ दस आदमी वापस आ पाये। इतना होने पर भी दूसरे वर्ष एक दूसरी फौज तुर्किस्तान और ईरान जीतने के लिए उसने तैयार की। लेकिन ख़ज़ाने में पैसा न होने से इस फौज को छुट्टी देनी पड़ी।

मुहम्मद के ऐसे कामों से पठानों का जमा-जमाया राज्य उखड़ने लगा। बंगाल और कर्नाटक प्रांत स्वतंत्र हो गये। महाराष्ट्र-देश में हसन गंगू नाम के एक सरदार ने नये राज्य की स्थापना की। इस राज्य का नाम बहमनी राज्य पड़ा। बादशाही फौजों में भी विद्रोह फैल गया था। एक स्थान का विद्रोह शान्त न होने पाता था कि दूसरे स्थान में विद्रोह की अग्नि भभक उठती थी। अन्त में जब सिन्ध में वह विद्रोह शान्त कर रहा था तब बीमार पड़ा और सन् १३५१ में ठट्टा नामक स्थान में मर गया। अफ्रीका में तेञ्जियर्स नामक एक स्थान है। वहाँ का इब्न बतूता नाम का एक विद्वान् घूमते घूमते सन् १३४१ में दिल्ली

आया था। इसको सुल्तान ने अपने यहाँ न्यायाधीश का पद दिया था। इसने अपनी यात्रा के वर्णन में महम्मद के शासन का वर्णन दिया है। दौलताबाद का मज़बूत क़िला इसी सुल्तान का बनवाया हुआ है।

फिरोज तुगलक (स० १३५१-८८)—यह महम्मद का चचेरा भाई था और महम्मद के बाद गद्दी पर बैठा। यह चतुर था और प्रजा-पालन के कार्य में दक्ष था। लेकिन हिन्दुओं पर यह भी अत्याचार करता था। सारे राज्य का पूरा सुप्रबन्ध न होता देख इसने बंगाल और दक्षिण की स्वतंत्रता स्वीकार कर ली। खेती के लाभ के लिए इसने यमुना-नदी की एक बड़ी नहर बनवाई। वह नहर आज भी मौजूद है और काम देती है। इसके अतिरिक्त इसने अन्य दो नहरें बनवाईं। लेकिन वे बन्द हो गई हैं। धर्म के सम्बन्ध में इसने हिन्दुओं पर बड़ा अत्याचार किया। इसके मर जाने पर दिल्ली का मुसलमानी राज्य बिलकुल कमज़ोर हो गया। आगे चल कर इतनी कमज़ोरी बढ़ गई कि तैमूर लंग के आक्रमण को रोकने का बल किसी में न रह गया था।

(५) तैमूरलंग का आक्रमण (सन् १३९८)—तैमूरलंग मध्य एशिया के समरकन्द-राज्य में बड़ा प्रबल बादशाह हुआ (१३७०-१४०५)। वह तुर्क-जाति का था। उसने सारे एशिया को अपने वश में कर लिया था। एक युद्ध में उसे ऐसी चोट लगी कि वह एक पैर से लँगड़ा हो गया। इसलिए लोग उसे "लंग" भी कहने लगे। चारों दिशाओं में अपने पराक्रम से अपने राज्य को उसने बढ़ाया। वह अत्यन्त महत्वाकांक्षी था, अर्थात् वह अपने को सब से बढ़-चढ़ कर बनाना चाहता था। भारत में होनेवाली अन्धाधुन्धी की खबरें जब उसे मिलीं तब उसने भारत को भी अपने



तैमूर लग

वश में करने की बात सोची। उसने अपने नाती पीर मुहम्मद को भारत में पहले भेजा और बाद को वह स्वयं भारत पर चढ़ाई करने आया। जिस जिस स्थान से होकर वह आया उसको उसने जीता, गाँवों को जलाया, शहरों को जीत कर वहाँ के लोगों को मारा-काटा। इसी तरह वह आगे बढ़ता गया और पानीपत होकर दिल्ली आ पहुँचा। उसके पास लड़ाई में पकड़े हुए इतने अधिक कैदी थे कि उनका सँभालना भी उसके लिए मुश्किल था। उसकी समझ में यह न आया कि इतने आदमियों का वह क्या करे। इसलिए १५ वर्ष से अधिक उमरवाले क़ैदियों को उसने क़त्ल करवा दिया। उस समय महमूद तुगलक दिल्ली का सुलतान था। वह तैमूर के आने से पहले ही दिल्ली से गुजरात की ओर भाग गया। अतएव तैमूर स्वयं दिल्ली का बादशाह बन गया और शहर को लूटा फूँका। उस समय दिल्ली के रहनेवाले घबरा कर इधर-उधर भागने लगे। तैमूर के सिपाहियों ने उन्हें भी मारा। शहर के गली-कूचे मुर्दों की लाशों से भर गये। इस तरह १५ दिनों तक तैमूर ने दिल्ली में लूट-मार की और अद्भुत धन लेकर वह वहाँ से निकला। रास्ते में उसने दिल्ली की तरह मेरठ में भी भयङ्कर लूट मार की। जाते समय भारत के अगणित कारीगरों को वह अपने साथ समरकन्द ले गया। पञ्जाब का शासन उसने खिज़िर खाँ नामक अपने सरदार को दिया। वही बाद को सैयद घराने का संस्थापक बना।

ईश्वरीय प्रकोप से अनेक प्रकार के अनर्थ मनुष्य-जाति पर होते आये हैं, जिनमें उसका संहार हुआ है। उनमें ही यदि तैमूरलंग का यह आक्रमण भी गिना जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। तैमूर की सन् १४०५ में मृत्यु हुई। स्पेन-देश का एक

राजदूत तैमूर के दरबार में आया था। उसका लिखा वृत्तान्त बड़ा मनोरञ्जक है। तैमूर के लम्बे-चौड़े राज्य में बड़ा कड़ा प्रबंध था और उसकी धाक सब जगह एक सी जमी हुई थी। उसके दरबार के वैभव को देख कर स्पेनी राजदूत अचम्भे में पड गया था। उसकी बेगम के साथ तीन सौ दासियाँ सदा बनी रहती थीं। वह चाहे कितना ही क्रूर रहा हो, किन्तु वह मूर्ख अथवा केवल लड़ाकू ही नहीं था। उसके बनाये नियम, उसकी राज्य व्यवस्था, उसके समय की विद्या और कला का उस समय योरप में बड़ा आदर था। उसकी कड़ी राजनीति उस समय के ही अनुसार थी। उसने छोटी-बड़ी सब मिला कर कुल चालीस लड़ाइयाँ भिन्न भिन्न राज्यों में लड़ी थीं। जीते हुए राज्यों से कारीगरों को ले जाकर उसने अपने राज्य में उनके द्वारा नवीन उद्योग धन्धे चलाये थे।

तैमूर के भारत से चले जाने के बाद यहाँ मुसलमानी राज्य की अवस्था बहुत अधिक गिर गई। अनेक सूबे स्वतन्त्र हो गये। महमूद तुगलक़ दिल्ली लौट आया और वहीं रहने लगा। लेकिन उसका शासन सिर्फ दिल्ली और दिल्ली से थोड़ी दूर बाहर तक चलता था। वह सन् १४१२ में मर गया। उसके बाद खिजिरखाँ सैयद ने १४१४ में दिल्ली के राज्य को अपने अधीन कर उसे थोड़ा-बहुत सशक्त बनाया। लेकिन क़रीब सौ वर्ष तक यह कमजोरी दूर न हुई। आगे चल कर लोदी-वंश का सुलतान इब्राहीमखाँ दिल्ली पर राज्य करने लगा। उस समय अफगानिस्तान में काबुल पर तैमूर के वंशज बाबर ने अपना राज्य जमाया। उसको पञ्जाब के सूबेदार दौलतखाँ लोदी ने भारत पर

आक्रमण करने के लिए बुलाया। बाबर यही चाहता था। उसने भारत पर चढ़ाई कर २१-४ १५२६ को पानीपत के मैदान में इब्राहीमलोदी को मार कर दिल्ली का तख्त अपने अधीन कर लिया। यहीं से मुगल-बादशाही का प्रारम्भ होता है।

(६) पठान-शासन पर एक दृष्टि—महमूद गजनवी से प्रारम्भ होकर लोदी घराने के अन्तिम सुल्तान तक ५०० वर्ष का काल बीता। इसमें पहले दो सौ वर्ष तक मुसलमानों की सत्ता पञ्जाब से आगे नहीं बढ़सकी। गोरी-वंश ने ही भारत पर शासन करने की जड़ पहले पहल जमाई थी। उसके बाद अलाउद्दीन ने सारे भारत पर इस्लाम का झण्डा गाड़ दिया। उसके बाद मुहम्मद तुगलक तक भारत पर मुसलमानों का शासन बड़ा प्रबल रहा। तथापि कृष्णा के दक्षिण ओर का देश बहुत दिनों तक मुसलमानों के अधीन नहीं रहा। अलाउद्दीन के बाद दो सौ वर्षों तक का समय बड़े ही महत्व का है। इस काल में हिन्दू मुस्लिम झगड़े बराबर होते रहते थे। इन झगड़ों के कारण किसी ने भी प्रजा के हित की बात विशेष रूप से न सोची। देश में मुसलमानों ने अपने विचार, अपने आचार व नियम वर्तना शुरू किया। तथापि हिन्दुओं ने अपने धर्माचार को अधिक मजबूती के साथ पाला। हिन्दुओं को नीचे दरजे की नौकरियाँ मिलती थीं। सम्मान के बड़े बड़े पद उन्हें नहीं मिलते थे। इस काल में कला कौशल की ख़ूब उन्नति हो रही थी। बीजापुर, जौनपुर, और अहमदाबाद की सुन्दर इमारतें इसी समय की बनी हुई हैं। इसी प्रकार संस्कृत व प्राकृत भाषाओं के ग्रन्थों की रचना भी इस काल में ख़ूब हुई। शासन के लाभ के लिए घोड़े पर या पैदल डाक भेजने का प्रबन्ध किया गया। फारसी और अरबी भाषाओं की शिक्षा देने

सत्ता स्थापित की और धीरे धीरे अपना भी सुधार उन्होंने किया। इसका परिणाम बाद को यह हुआ कि योरपीय लोगों का अन्य लोगों पर प्रभुत्व स्थापित हुआ। लेकिन भारत में पठानों के शासन ने विद्या-कला को शीघ्र ही चौपट कर दिया, जिससे यह देश उत्तरोत्तर अज्ञानान्धकार में डूबता गया। सारांश यह कि योरपीय लोगों की उन्नति और हिन्दुओं की अवनति एक साथ शुरू हुई और पश्चिमी राष्ट्रों ने अपनी ज्ञान-शक्ति के बल पर अपनी सत्ता सारी पृथिवी पर जमा ली।

(७) स्वभाव-भेद—अरब, तुर्क, मुगल और पठान—पठान-वंश के शासन में और आगे चलकर मुग़ल-बादशाही के समय विदेश से ईरानी, तुर्क, मुग़ल इत्यादि लोगों का प्रवेश इस देश में बहुत हुआ। उनकी संख्या अधिक न थी, तथापि आजकल की मुस्लिम संख्या यहाँ के भारतीय लोगों की स्वेच्छा से तथा उन्हें विवश करके धर्मपरिवर्तन करने के कारण अधिक बढ़ गई है। सब से पहले के मुसलमान अरब लोग हैं। उनकी विद्या और संस्कृति उच्च वर्ग की थी और उनका स्वरूप भी आकर्षक था। इन अरब लोगों ने मध्य एशिया तक के राज्य जीत लिये और वहाँ के लोगों को मुसलमान बना लिया। तब से उन लोगों में ईरानी, तुर्क, अफ़गान और पठान इत्यादि का भेद उत्पन्न हुआ। इनमें तुर्कों का फैलाव बाद को पश्चिमी एशिया और पूर्व-योरप में अधिक हुआ। उनका कड़ुवा और विध्वंसक स्वभाव वहाँ तथा अन्यत्र प्रसिद्ध है। सातवीं सदी में अरब लोगों ने ईरान जीत लिया। उस समय वहाँ अनेक लोग इस्लाम धर्म में आ गये। केवल कुछ थोड़े स्वधर्म प्रेमी ईरानी धर्म-रक्षा के लिए पश्चिम भारत में नवसारी के आस पास आकर बस गये। यही आजकल के पारसी हैं। यह छोटी सी जाति आज भी अपनी नेक नियत




१५ वीं शताब्दी का भारतवर्ष

के कारण समुन्नत है और उद्योग धंधों तथा व्यापार में सब से आगे है। भारत में पठानों के बाद मुगलों का बल बढ़ा। वे पहले चीन के उत्तर में मंगोलिया प्रदेश में रहते थे और मूर्त्तिपूजक थे। चौदहवीं सदी में तैमूरलंग से पहले उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार किया था। उनका उदार व संरक्षक स्वभाव मुगल-बादशाही के समय की उन्नति व ऐश्वर्य का कारण बना। महम्मद बिन कासिम, महमूद ग़ज़नवी, शहाबुद्दीन गोरी, तैमूरलंग, बाबर और अकबर इत्यादि के परस्पर स्वभाव भेद व भारत के नये बने हुए मुसलमानों के स्वभाव भेद को ध्यान में रखना चाहिए। अर्थात् उनके मूल-वंश की पहचान मिटती जाती है। दक्षिण के मुसलमानों में हिन्दुओं की ही अधिक भर्ती है। इसी से मूल के असल मुसलमानों की अपेक्षा परधर्म से आये ये नये मुसलमान अधिक उपद्रवकारी सिद्ध हुए। मलिक काफूर, बहरी निज़ामशाह, महाबतखाँ, तानाजी मालुसरे को मारनेवाले उदयभान इत्यादि के उदाहरणों से भी यह बात व्यक्त होती है।

(८) बहमनी राज्य (सन् १३४७-१५२६)—केवल दिल्ली के राजवंशों का वर्णन करने से सारे देश के इतिहास का ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि अलाउद्दीन ख़िलजी ने अनेक प्रान्तों को अपने अधीन किया। लेकिन उसके बाद ही वे शीघ्र ही स्वाधीन हो गये, और वहाँ नवीन मुसलमान-राज्य स्थापित हुए। अन्यान्य प्रान्तों में जौनपुर इत्यादि भी थे। इनमें से दक्षिण में जो राज्य स्थापित हुआ वह बहुत बड़ा था। इस राज्य का नाम बहमनी राज्य था। इस राज्य की राजधानी गुलबर्गा थी। हसन नाम का एक दिल्ली निवासी मुसलमान गंगू नामक ब्राह्मण का ग़ुलाम था। वह ब्राह्मण महम्मद तुगलक़ का राज-

ज्योतिषी था। उसी के द्वारा सुल्तान के दरबार में हसन का प्रवेश हुआ। बाद को सुल्तान ने उसे जाफरख़ाँ की पदवी देकर दक्षिण की फौजों का सेनापति बना दिया। महम्मद के शासन काल के अन्तिम भाग में अनेक राज्यविद्रोह हुए। इसी गड़बड़ में हसन जाफरख़ाँ ने गुलबर्गा में अपना राज्य स्थापित किया ( सन् १३४७ ) और गगू ब्राह्मण का उपकार मान कर उसे ख़ज़ाने का काम दिया और अपने राज्य का नाम भी बहमनी राज्य रक्खा। सन् १३४७-१४९० तक डेढ़ सौ वर्षों में यह राज्य पूरा समुन्नत हो गया। महम्मद गवाँ नामक एक चतुर और नीति निपुण व्यक्ति अनेक वर्षों तक इस राज्य का प्रधान मंत्री रहा। उत्तर के समान तुर्क और अफ़ग़ान का पारस्परिक कठोर भेद भाव दक्षिण में नहीं था। सन् १४९०-१५२६ के बीच में बहमनी राज्य के भिन्न भिन्न सूबेदार स्वतंत्र हो गये। इससे बहमनी राज्य के पाँच भाग हो गये—१—बीदर में बरीदशाही, २—बरार में इमादशाही, ३—अहमदनगर में निज़ामशाही, ४—बीजापुर में आदिलशाही और गोलकुंडा में कुतुबशाही। इनमें से पहले दो राज्य शीघ्र ही नष्ट होकर पिछले तीन राज्यों में मिल गये। ये तीनों राज्य बहुत दिनों तक फूले-फले। दक्षिण में विजय-नगर में सन् १३२६ के आसपास एक बलवान् हिन्दू राज्य स्थापित हुआ था। बुक्क, हरिहर, देवराय, कृष्णदेवराय इत्यादि अनेक पराक्रमी राजे वहाँ के शासक हुए। इन्हीं के शासन-काल में माधवाचार्य व सायणाचार्य उनके प्रधान नामांकित व्यक्ति थे। इस हिन्दू-राज्य तथा ऊपर बताये गये मुसलमानी राज्यों के बीच में कुछ मन-मुटाव हो गया। इससे विजयनगर के राजा रामदेवराय के साथ निज़ामशाह, आदिलशाह और कुतुबशाह ने

मिलकर युद्ध किया और सन् १५६५ की जनवरी में तालिकोट में हिन्दुओं को परास्त किया। इससे विजयनगर का राज्य नष्ट हो गया और वहाँ की सम्पत्ति भी विजयी पक्ष ने लूट ली। बाद को इन तीनों राज्यों को जीत कर मुगल-बादशाहों ने सारे देश पर अपना शासन शुरू करने का भरपूर प्रयत्न किया। इनमें शाहजहाँ ने अहमदनगर की निजामशाही सन् १६२० में जीत ली और गोलकुण्डा तथा बीजापुर के राज्यों को औरंगज़ेब ने सन् १६८६ व ८७ में जीता। अहमदनगर और बीजापुर शहर उस समय कितनी उन्नति पर थे, इसका प्रमाण वहाँ की इमारतों से मिल सकता है। इसी प्रकार निजामशाही के प्रसिद्ध सरदार अम्बर की प्रसिद्धि सर्वतोमुखी है। यह हबशी-जाति का विदेशी बादशाह जहाँगीर के समय में निजामशाह का दीवान था। जब अहमदनगर को अकबर ने हस्तगत किया तब मलिक अम्बर ने खड़की नामक नवीन शहर स्थापित करके उसे निजाम-शाही की राजधानी घोषित कर दी। इस शहर का नाम बदल कर औरङ्गजेब ने औरङ्गाबाद रख दिया। मलिक अम्बर ने अहमद-नगर जीत कर फिर ले लिया और निजामशाही के राज्य को बचा लिया। मालगुजारी की जो पद्धति टोडरमल ने उत्तर में स्थापित की थी वही मलिक अम्बर ने दक्षिण में जारी की। मराठे सरदारों की मदद से उसने रैयत की स्थिति सुधारी। प्रजा हित के अनेक काम कर के यह विद्वान् पुरुष सन् १६२६ में मर गया। उसकी मृत्यु से निजामशाही का एक बड़ा खम्भा टूट गया। इस संकटावस्था में शाहजी भोंसले ने निजामशाही की कुछ दिनों तक रक्षा की। इसका वृत्तान्त आगे दिया जायगा।

# दूसरा अध्याय

## मुग़ल-वंश—बाबर और हुमायूँ

### ई० स० १५२६-१५५६

१—बाबर (१५२६-३०)  २—राजपूतों की हार (१५२८)
३—हुमायूँ (१५३०-४०, ५५-५६)  ४—सूर-वंश (१५४०-१५५५)
शेरशाह सूर (१५४० ४५)

(१) जहिरुद्दीन, मुहम्मद बाबर (सन् १५२६ ३०)—यह तैमूर लंग के वंश में तैमूर से छठवीं पीढ़ी में हुआ। इसका जन्म सन् १४८३ में हुआ था। इसके पिता का नाम उमर शेख़ मिर्ज़ा था। जिस समय यह बारह वर्ष का था उसी समय इसके पिता की मृत्यु हुई थी। इससे मध्य-एशिया में फरग़ाना प्रान्त का राज्य बाबर को मिला। लेकिन उसकी उम्र बहुत ही छोटी थी, इसलिए उसके भाई बन्दों ने उसका सर्वस्व छीनकर उसे राज्य के बाहर, निकाल दिया। वह कितने ही वर्षों तक वनों में भटकता रहा। अन्त में वह अफग़ानिस्तान में आया और फ़ौजें जमा कर उसने काबुल का राज्य छीन लिया। बाद को वह भारत में आने की राह देखने लगा। इब्राहीम लोदी के शासन काल में दिल्ली में होनेवाली अन्धाधुन्धी के समाचार उसे मिलते रहते थे। इसलिए उसने पंजाब पर दो बार हमला किया।

हुमायूँ



बाबर

लेकिन इन दोनों में उसकी हार हुई। अन्त में पंजाब के सूबेदार दौलतखाँ लोदी ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए बाबर से मदद माँगी। इस माँग के पहुँचते ही बाबर ने तीसरी बार भारत में प्रवेश किया और यहाँ आकर उसने सन् १५२६ में दिल्ली के तख़्त पर मुगल-बादशाही की स्थापना की। भारत में "बादशाह" शब्द का प्रयोग पहले पहल बाबर ने ही किया था। इसके पहले मुसलमान लोग आये अवश्य थे, लेकिन उनका राज्य यहाँ बहुत थोड़े दिन टिक पाता था। बाबर-द्वारा स्थापित यह बादशाही अढ़ाई सौ वर्ष टिकी और बड़ी समुन्नत दशा में रह कर जगद्विख्यात हो गई। इस मुगल-शासन काल में भारत का इतिहास बिलकुल ही बदल गया। बाबर के पास तोपें, बन्दूकें तथा दूर का निशाना मारने के अन्य शस्त्रास्त्र थे। उसी ने उनका प्रयोग भारत में पहले पहल किया। इन शस्त्रों और बाबर के फौजी ढग के सामने राजपूतों की एक न चल सकी, उनके हाथी सवार इस फौजी ढग के सामने व्यर्थ हो गये।

(२) राजपूतो की हार—मध्य भारत के कुछ उत्तर में आज-कल अनेक रजवाड़े हैं। इन रजवाड़ों में राजपूत राजे राज्य करते हैं, इसीलिए इस प्रान्त का नाम राजपूताना पड़ गया है। इनके अतिरिक्त अन्य राजपूतो के राज्य नेपाल, काश्मीर, पजाब, बुंदेलखड, मालवा, काठियावाड़ इत्यादि में भी हैं। आज-कल के इन भारतीय राज्यों में राजपूत-राज्यो की ही संख्या अधिक है। ये पहले के आर्य-क्षत्रियों के ही वंशज हैं। इसी से अपने को ये सूर्यवंशी, चन्द्रवशी इत्यादि बताते हैं। सिन्ध, पजाब, कन्नौज, मगध, धारा, अवन्ती इत्यादि राज्य मध्य युग में प्रसिद्ध क्षत्रिय-राज्य थे। इनका नाश धीरे धीरे मुसलमानों ने कर दिया।

सिन्ध के दाहिर, पेशावर के जयपाल, कन्नौज के जयचंद इत्यादि सैकड़ों घरानों के वंशज मुसलमानों के हमलों के सामने झुक गये और बाद को राजपूताना तथा अन्य स्थानों में जा बसे। उदयपुर के सिसौदिया, जोधपुर के राठौड़, जयपुर के कच्छवाह इसी प्रकार बुन्देले, हाड़ा, यादव, नैपाल की तराई के गोरखे, इत्यादि अनेक नामों से राजपूत लोग प्रसिद्ध हैं। बाबर ने जिस समय दिल्ली में मुग़ल-बादशाही की नींव डाली उस समय राजपूतों ने मेवाड़ के राणा साँगा को अपना सरदार बना कर बाबर का अन्तिम भयङ्कर सामना किया। किन्तु इस लड़ाई में राजपूतों को विजय न मिल सकी।

जिस समय बाबर भारत में आया उस समय मेवाड़ का राणा साँगा राजपूतों का अगुआ था। वह शूर, पराक्रमी व चतुर योद्धा था। वह भी बाबर के समान महत्त्वाकांक्षी और बड़ा परिश्रमी था। वह दिल्ली के तख्त को लेकर हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर रहा था। इसी लिए उसने बाबर के विरुद्ध इब्राहीम लोदी को मदद न दी। वह सोचता था कि तैमूर लंग के समान बाबर भी आक्रमण करके काबुल को वापस चला जायगा। लेकिन उसके देखते ही देखते बाबर ने दिल्ली में ही अपना झंडा सदा के लिए गाड़ दिया। यह देख राणा सांगा ने सब राजपूतों को एकत्र कर बाबर पर हमला किया। आगरे के समीप दस कोस पर सीकरी नाम का एक स्थान है। वहीं राजपूतों और बाबर की लड़ाई हुई। पहले बाबर को अपने जीतने की आशा बिलकुल न रह गई थी। उसकी फौजों के सिपाही लड़ाई के मैदान से राजपूतों को पीठ दिखा कर भागने लगे। अन्त में बाबर ने ईश्वर की दया प्रार्थना करके उसे प्रसन्न

रने के लिए शराब के बरतन फोड़ डाले और फिर कभी शराब न पीने की शपथ की। उसने अपने सिपाहियों से कहा कि "अब अपने प्राण तो बच नहीं सकते। अत पराक्रम दिखला कर मरना अच्छा है"। कुछ दिनों तक दोनों पक्षों की फौजें पड़ाव डाले एक दूसरे के सामने अड़ी रहीं। ऐसे मौके पर यदि राणा साँगा ने कहीं मुगलों की फौजों पर एकदम हमला कर दिया होता तो वह अवश्य ही जीतता, लेकिन ऐसा न करने से बाबर को तैयारी करने का मौका मिल गया। अन्त में सन् १५२८ के मार्च महीने की १६ वीं तारीख़ को अंतिम लड़ाई हुई। लड़ाई के शुरू होते ही राणा सांगा का एक दरबारी रूठ कर बाबर से जा मिला। लड़ाई अभी शुरू ही हुई थी कि राणा साँगा घायल हुआ और उसके अनेक साथी मारे गये। इससे राजपूतों के पैर उखड गये, और बाबर की जीत हुई। बाबर ने राजपूतों के सिर काट कर एक ढेर तैयार किया और "गाज़ी" (अर्थात् काफिरों को मारनेवाला) की पदवी स्वयं धारण की। यही पदवी बाद को मुगलों-द्वारा दिये गये सनद-पत्रों में और उनके चलाये गये सिक्कों में नियमित रूप से अंकित की जाती थी। सीकरी की लड़ाई के बाद ही बाबर ने फौरन बुन्देलखंड में चंदेरी का किला ले लिया और फिर बिहार-प्रान्त को अपने राज्य में मिला लिया। राज्य में शान्ति स्थापित करने के पूर्व ही बाबर अचानक बीमार पड़ा और आगरे में सन् १५३० में मर गया।

बाबर ने भारत में केवल पाँच ही वर्ष शासन किया, तथापि शासकों की गिनती में वह सब से बढ़ कर गिना जाता है। बचपन से ही उसने अनेक सङ्कटों का सामना किया था। वह

सिन्ध के दाहिर, पेशावर के जयपाल, कन्नौज के जयचंद इत्यादि सैकड़ों घरानों के वंशज मुसलमानों के हमलों के सामने झुक गये और बाद को राजपूताना तथा अन्य स्थानों में जा बसे। उदयपुर के सिसौदिया, जोधपुर के राठौड़, जयपुर के कच्छवाह, इसी प्रकार बुन्देले, हाड़ा, यादव, नैपाल की तराई के गोरखे, इत्यादि अनेक नामों से राजपूत लोग प्रसिद्ध हैं। बाबर ने जिस समय दिल्ली में मुग़ल-बादशाही की नींव डाली उस समय राजपूतों ने मेवाड़ के राणा साँगा को अपना सरदार बना कर बाबर का अन्तिम भयङ्कर सामना किया। किन्तु इस लड़ाई में राजपूतों को विजय न मिल सकी।

जिस समय बाबर भारत में आया उस समय मेवाड़ का राणा साँगा राजपूतों का अगुआ था। वह शूर, पराक्रमी व चतुर योद्धा था। वह भी बाबर के समान महत्त्वाकांक्षी और बड़ा परिश्रमी था। वह दिल्ली के तख़्त को ले कर हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर रहा था। इसी लिए उसने बाबर के विरुद्ध इब्राहीम लोदी को मदद न दी। वह सोचता था कि तैमूर लग के समान बाबर भी आक्रमण करके काबुल को वापस चला जायगा। लेकिन उसके देखते ही देखते बाबर ने दिल्ली में ही अपना झंडा सदा के लिए गाड़ दिया। यह देख राणा सांगा ने सब राजपूतों को एकत्र कर बाबर पर हमला किया। आगरे के समीप दस कोस पर सीकरी नाम का एक स्थान है। वहीं राजपूतों और बाबर की लड़ाई हुई। पहले बाबर को अपने जीतने की आशा बिलकुल न रह गई थी। उसकी फौजों के सिपाही लड़ाई के मैदान से राजपूतों को पीठ दिखा कर भागने लगे। अन्त में बाबर ने ईश्वर की दया प्रार्थना करके उसे प्रसन्न

करने के लिए शराब के बरतन फोड डाले और फिर कभी शराब न पीने की शपथ की। उसने अपने सिपाहियों से कहा कि "अब अपने प्राण तो बच नहीं सकते। अत पराक्रम दिखला कर मरना अच्छा है"। कुछ दिनों तक दोनों, पक्षों की फौजें पड़ाव डाले एक दूसरे के सामने अड़ी रहीं। ऐसे मौके पर यदि राणा साँगा ने कहीं मुगलों की फौजों पर एकदम हमला कर दिया होता तो वह अवश्य ही जीतता, लेकिन ऐसा न करने से बाबर को तैयारी करने का मौक़ा मिल गया। अन्त में सन् १५२८ के मार्च महीने की १६ वीं तारीख़ को अतिम लड़ाई हुई। लड़ाई के शुरू होते ही राणा सांगा का एक दरबारी रूठ कर बाबर से जा मिला। लड़ाई अभी शुरू ही हुई थी कि राणा साँगा घायल हुआ और उसके अनेक साथी मारे गये। इससे राजपूतों के पैर उखड गये, और बाबर की जीत हुई। बाबर ने राजपूतों के सिर काट कर एक ढेर तैयार किया और "गाजी" (अर्थात् काफ़िरों को मारनेवाला) की पदवी स्वय धारण की। यही पदवी बाद को मुगलों द्वारा दिये गये सनद पत्रों में और उनके चलाये गये सिक्कों में नियमित रूप से अकित की जाती थी। सीकरी की लड़ाई के बाद ही बाबर ने फौरन बुन्देलखंड में चंदेरी का क़िला ले लिया और फिर बिहार प्रान्त को अपने राज्य में मिला लिया। राज्य में शान्ति स्थापित करने के पूर्व ही बाबर अचानक बीमार पड़ा और आगरे में सन् १५३० में मर गया।

बाबर ने भारत में केवल पाँच ही वर्ष शासन किया, तथापि शासकों की गिनती में वह सब से बढ़ कर गिना जाता है। बचपन से ही उसने अनेक सङ्कटों का सामना किया

विद्वान् और भावुक था। उसने अपना चरित तुर्की भाषा में लिख रक्खा था। इस चरित में अपनी मृत्यु के एक वर्ष पहले तक का हाल उसने दिया है। बाबर की माँ बातचीत में बड़ी चतुर और काम करने में बड़ी चालाक स्त्री थी। बड़े बड़े गुणी और विद्वान, चित्रकार और कवि इत्यादि से बाबर स्नेह करता था। जैसा वह रणशूर था, वैसा ही चतुर सेनानायक भी था। उसके जोड़ का पुरुष हिन्दुओं में कोई न था, इसी से राजपूतों की पराजय हुई। बाबर की फ़ौज भी फौजी क़वायद सीखी हुई थी। लड़ाई में सामान्य सिपाहियों से ही सब प्रकार के शत्रु पक्ष के हाल उसे मिल जाते थे। उसे शराब पीने का बड़ा शौक था। लेकिन सीकरी की लड़ाई के बाद उसने शराब बिलकुल नहीं पी। प्रत्यक्ष अनुभवों से उसे शिक्षा मिली थी। इसी से उसमें बुद्धिबल भी अधिक था। सृष्टि सौन्दर्य को देख वह बड़ा .खुश होता था। इसी से वह कविता भी अच्छी कर सकता था। बातचीत में चतुरता, विद्वत्ता, लग कर काम करने की आदत, ऊँचा पद पाने की इच्छा, उदारता इत्यादि गुण उसमें मौजूद थे। इसी से वह आदर का पात्र बन जाता था। उसके राज्य का विस्तार पश्चिम में मध्य-एशिया की अमू दरिया से लेकर पूर्व में आसाम तक था। भारत में तोपों का प्रयोग पहले पहल बाबर ने ही किया था।

(३) हुमायूँ (सन् १५३०-४० और १५५५-५६)—सन् १५३० के दिसम्बर मास में हुमायूँ को २३ वर्ष का छोड़ कर बाबर मरा। उसके मरते ही हुमायूँ राज्य का मालिक बना। लेकिन यह राज्य निष्कंटक न था। पिता के साथ रह कर मध्य-एशिया से लगा कर बंगाल तक की लड़ाइयों तथा राज्य के शासन-प्रबन्ध में उसने काफी अनुभव प्राप्त

कर लिया था। बाबर का उस पर पूरा पूरा प्रेम था। बाबर लिखता है कि "यह (हुमायूँ) मेरे पास आया कि मेरा अन्तःकरण गुलाब की कली के समान खिल उठता और आनन्द के झोंके लेने लगता और उसके मीठे शब्द सुन कर चित्त में बड़ा ही सन्तोष होता था।" हुमायूँ उदारचित्त और स्नेही व्यक्ति था। समय आ पड़ने पर कष्ट सहने से नहीं हिचकता था। लेकिन उसमें फुर्ती और दृढ़ता न होने के कारण उस गड़बड़ के समय में उसका निर्वाह न हो पाया। हुमायूँ का शाब्दिक अर्थ "भाग्यवान्" है, किन्तु इसके समान अभागा नरेश कदाचित् ही दूसरा हुआ हो। बाबर ने भारत में जिस राज्य पर अपना अधिकार किया था वह बिलकुल छोटा था। बंगाल, गुजरात, राजपूताना इत्यादि अन्य प्रदेश पूर्णरीति से अधीन न किये जा सके थे। ऐसी अवस्था में हुमायूँ के भाई भी उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। पिता की आज्ञा थी कि "भाइयों को दुःख न देना।" इस आज्ञा के पालन करने में उसने अपनी हार तक स्वीकार कर ली थी। किन्तु सभी भाइयों का अन्त किये बिना उसे शान्ति न मिली। उसके भाई कामराँ ने काबुल और पञ्जाब को स्वतन्त्र कर उस ओर से उसे विदेशी मुगलों की सहायता मिलनी रोक दी। उसके हिंदाल व मिर्जा* अस्करी दो भाई और थे। ये दोनों छोटे भाई भोले थे। इन्होंने भी बिना समझे-बूझे विद्रोहियों का साथ दिया। ऐसे ही जाल में हुमायूँ फँस गया था। लेकिन एक साथ सब शत्रुओं के साथ

* मिर्जा फारसी शब्द है। इसका प्रयोग राजघराने में राजपुत्र के अर्थ-मात्र के लिए होता है। उसी का समान अर्थवाची अरबी-शब्द "अमीर" है। बेग तुर्की भाषा का शब्द है। बेग से हलकी पदवीवाला बेग कहलाता है।

न लड़कर एक एक का उच्छेद करने की नीति से हुमायूँ ने काम न लिया।

पश्चिमोत्तरी सीमा पर कामराँ, पूर्व में लोदी सुलतान व शेरखाँ पठान और दक्षिण में गुजरात का सुलतान बहादुरशाह हुमायूँ से वैर कर रहे थे। इनके बीच में उन्हीं के समान अन्य विद्रोही भी खड़े थे। पहले पहल लखनऊ के पास सन् १५३१ में हुमायूँ ने लोदियों पर हमला करके उनको करारी हार दी। किन्तु उधर उसका साथी शेरखाँ विहार में विद्रोही हो गया था। उसका बिलकुल नाश तो हुमायूँ ने किया नहीं, बल्कि हाथ में आया चुनार का किला शेरखाँ को दे दिया। यह शेरखाँ बाबर के समय में बिहार में एक छोटा सा अधिकारी था। वही आगे चल कर हुमायूँ को हटा कर कुछ दिनों के लिए दिल्ली का बादशाह बन बैठा। इस शत्रु के हाथ में दिल्ली के मार्ग की चाभी अर्थात् चुनार देकर हुमायूँ पूर्व से वापस लौट आया और अन्त में सन् १५३४ में गुजरात के बहादुरशाह पर उसने चढ़ाई की। उस समय बहादुरशाह मालवा जीत कर चित्तौर गढ़ पर घेरा डाले बैठा था। इसी मौके पर उसको उखाड़ देना सहज था। परन्तु ऐसा करने में उसने सोचा कि परधर्मी हिन्दुओं को अपना बल बढ़ाने का मौक़ा मिल जायगा। ऐसी अवस्था में अपना धर्म डूबेगा। वह स्पष्ट रूप से बहादुरशाह और हिन्दुओं की लड़ाई के अन्त होने तक चुप बैठा रहा। बाद को बहादुरशाह ने चित्तौर जीत लिया। अतः हुमायूँ ने उसका सामना करके उसे भगा दिया। शीघ्रता के साथ उसका पीछा करके हुमायूँ ने अहमदाबाद, चम्पानेर, खंबात इत्यादि शहरों को भी छीन लिया और लूट में बहुत सा माल भी उसके हाथ लगा। चम्पानेर के किले को

लेते समय उसने इतना साहस दिखाया कि दीवाल पर कीलें ठोंक कर जो लोग ऊपर चढे उनमें स्वय हुमायूँ ४१ वाँ व्यक्ति था। इतना कर के भी गुजरात का प्रबन्ध पूरा न कर अहमदाबाद में अपने भाई मिर्जा अस्करी को बैठा कर स्वय मालवे में आया और वहाँ उत्सवों में मग्न हो गया। अस्करी ने भी इधर ऐसी चैन की बसी बजाई कि हुमायूँ के पीठ फेरते ही बहादुरशाह ने वापस आकर गुजरात ले लिया और हुमायूँ के आगरा वापस पहुँचते न पहुँचते मालवे पर भी उसने अपना अधिकार फिर जमा लिया। उसका प्रबन्ध तत्काल न कर लगभग दो वर्ष व्यर्थ गँवा दिये और बिहार में शेरखाँ को प्रबल होता देख बहादुरशाह की ओर कुछ भी ध्यान न देकर वह सन् १५३७ के जुलाई मास में शेरखाँ पर चढ दौडा। उस समय शेरखाँ बङ्गाल की राजधानी "गौड" पर अपना अधिकार कर चुका था। चुनार के किले को अपने अधीन कर हुमायूँ बड़ी हड़बड़ी के साथ बङ्गाल में जा पहुँचा। लेकिन शेरखाँ ने उसे पूरा धोखा दिया। उसने दूसरी राह से लौटकर गजमहल की पहाड़ियों को पार करके चुनार के किले को हुमायूँ के आदमियों से छीन लिया और इस तरह हुमायूँ के लौटने का रास्ता उसने बिल्कुल बन्द कर दिया। उस समय हुमायूँ ने अपने बचाव का कोई उद्योग न कर ६ मास निश्चिन्त होकर काटे। इसके बाद लौटते समय उसने देखा कि शेरखाँ ने कन्नौज तक का देश अपने अधीन कर लिया है। अत हुमायूँ ने बक्सर के पास शेरखाँ से लड़ाई लडी। इस लड़ाई में अपनी हार होती देख हुमायूँ गङ्गा में कूद पडा और एक भिश्ती की सहायता से वह गङ्गा पार पहुँचा और ऐसी दु ख की अवस्था में अकेला ही आगरा सन् १५३९ के मई मास

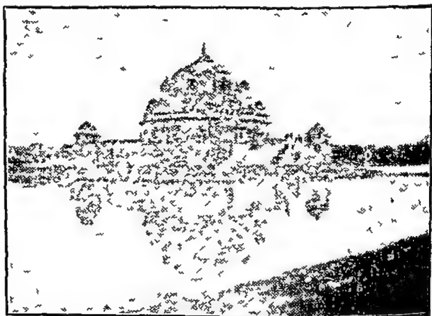
ने भी तीन चार हुमायूँ से विद्रोह किया, इसलिए हुमायूँ ने उसकी आँखें निकलवा लीं। इसके कुछ वर्ष बाद मक्के जाते समय कामराँ मर गया ( सन् १५५७ )। मिर्ज़ा अस्करी को हुमायूँ ने देश निकाले का दण्ड दिया। वह भी मक्के जाते समय मर गया ( १५५८ )। हुमायूँ ने कामराँ को कैद कर के काबुल में अपना शासन शुरू किया। बाद को भारत में विद्रोह फैलने के समाचार सुन हुमायूँ ने सन् १५५५ ई० में दिल्ली पर चढाई की और अपना खोया हुआ राज्य वापस लौटा लिया।

## (४) सूरवंश (सन् १५४०-५५), शेरशाह (१५४०-१५४५)

हुमायूँ को हरा कर शेरख़ाँ ने दिल्ली में प्रवेश किया। यह सूरवंशी पठान था। अत यह ओर इसके बाद के इसी वंश के अन्य बादशाह सूरवंशी कहे जाते हैं। यह पठानी शासन केवल १० वर्ष तक रहा। शेरशाह पराक्रमी सिपाही और प्रवीण शासक था। फ़ौजी और राज्य करने के काम में दोनों में ही वह सब का अगुआ था। भिन्न भिन्न स्थानों के राजपूत राजे उस समय भी स्वतत्र थे और अपने स्वातंत्र्य की रक्षा के लिए प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने उस समय तक भी मुसलमानों से हार न मानी थी। भूपाल के पास रायसीन नामक स्थान है। यहाँ के ठाकुर प्राणमल ने ६ मास तक बड़े पराक्रम के साथ शेरशाह का सामना किया। उसके वृत्तान्त को पढ़ कर चित्त चकित हो उठता है। मारवाड़, चित्तौड़, रणथम्भौर इत्यादि सभी स्थानों में शेरशाह को ऐसी ही कठिन लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। लेकिन सन् १५४५ में कालिञ्जर किले पर क़ब्ज़ा करने में एक सुरङ्ग के फट पड़ने से वह मर गया। उसने पाँच वर्ष तक राज्य किया। उसका अधिकाश समय लड़ाई में बीता। इतने पर भी उसने प्रजा के कल्याण



शेर शाह



शेरशाह का मक़बरा

के लिए कई कार्य किये। रैयत से कर वसूल करने की पद्धति शेर शाह ने शुरू की। इसी पद्धति के अनुसार बाद को अकबर ने भी काम किया था। बङ्गाल से पेशावर तक दो हजार मील की लम्बी एक सड़क शेरशाह ने तैयार कराई और उसके दोनों ओर पेड़ लगवाये। प्रजा के लाभ के लिए घोड़ों पर डाक भेजने का प्रबंध किया। भिन्न भिन्न स्थानों में अन्न-क्षेत्र और धर्मशालाएँ खोल कर यात्रियों का कष्ट दूर किया। राज्य भर में तौल और माप के बँटखरे और पैमाने स्थिर किये। रुपये का सिक्का भी शेरशाह ने चलाया था। सारांश यह कि अफगान-घरानों में शेरशाह ही एक ऐसा शासक हुआ है जिसका शासन उच्च कोटि का कहा जा सकता है। यदि वह कुछ दिन और जिन्दा रहता तो उसके द्वारा अन्य अनेक अच्छे कार्य होते। उसके लड़के सलीमशाह ने ९ वर्ष तक सुख से राज्य किया। वह अपने पिता के समान पराक्रमी न था, लेकिन प्रजा हित में अवश्य समान था। वह सन् १५५४ में मरा। इसके बाद मुहम्मदशाह सूर ने शासन करना शुरू किया।

हेमू नामक एक हिन्दू बड़ा चतुर व्यक्ति था। यही महम्मद का मन्त्री था। महम्मदशाह दुर्व्यसनी और दुर्बल था। उसका शासन ठीक ठीक नहीं जमा। अत हेमू ने अपने मालिक का काम बड़ी सावधानी से किया। इसी बीच में हुमायूँ तथा उसका लड़का अकबर और उसका विश्वस्त सरदार बैरामख़ाँ ने मिल कर दिल्ली पर चढ़ाई की। यह लड़ाई सरहिन्द में हुई। इसमें हेमू की पूरी हार हो गई और दिल्ली के तख्त पर हुमायूँ का फिर से अधिकार हो गया।

इस प्रकार के कठोर परिश्रम करने और अपार कष्ट सहने के

का प्रधान हेमू, पठानों की नौकरी में रहने से, हिन्दू-पद पादशाही का बड़ा पक्षपाती था। उसने विक्रमाजित नाम रखकर फ़ौज को इकट्ठा किया और तोपख़ाना जमाया। अकबर की धाक जमने से पहले ही उसने उसको हरा कर आगरे पर अपना अधिकार कर लिया। तब तो अकबर भी पंजाब की ओर से उसका सामना करने को आया। दोनों की मुठभेड़ ता० ५-११-१५५६ को पानीपत के मैदान में हुई। बड़ी घमासान लड़ाई हुई। हाथी पर बैठकर सब से आगे हेमू लड़ने लगा। इतने में शत्रु का एक तीर उसकी आँख में जा लगा। इसलिए वह गिर पड़ा। इसी समय बहरामख़ाँ ने उसका सिर काट लिया। यह पानीपत की दूसरी लड़ाई है। इस विजय से अकबर की धाक जम गई। बाद में बैराम और अकबर में परस्पर अनबन हो गई। अकबर का स्वभाव नरम था, लेकिन बैरामख़ाँ का स्वभाव बड़ा कड़ा था। अकबर जैसे जैसे बड़ा होता गया, तैसे तैसे उसको अधिक अधिकार बैरामख़ाँ ने न दिये। इसलिए अकबर ने बैरामख़ाँ को दूर कर स्वयं सब अधिकार उससे छीन लिये। इससे बैराम ख़ाँ नाराज़ हुआ और उसने अकबर के विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया। लेकिन अकबर की फ़ौज ने उसको परास्त करके अकबर के सामने ला खड़ा किया। अकबर अपनी उदारता से विवश होकर उसे कुछ काम देता, लेकिन बैरामख़ाँ ने मक्का जाने की इच्छा प्रकट की। अकबर ने उसे मक्का जाने की आज्ञा दे दी। जिस समय वह मक्का जाने के लिये सूरत पहुँचा, वहाँ उसको किसी ने मार डाला (सन १५६१)। बैरामख़ाँ के लड़के को अकबर ने अपना बड़ा सरदार बनाया। इसी प्रकार आदमख़ाँ इत्यादि अनेक सरदारों के विद्रोहों को



सम्राट् अकबर



टोडरमल



मानसिह

शान्त कर अकबर ने राज्य में शान्ति स्थापित की।

(२) अकबर के जीते हुए प्रदेश—राजधानी में शान्ति स्थापित करके अकबर भिन्न भिन्न प्रान्तों को एक एक करके बड़ी सावधानी के साथ जीत कर अपनी सत्ता को एक छत्री करने के उद्योग में लगा। (१) राजपूताना—सन् १५६१ से १५६७ तक उसने राजपूतों को जीतने का उद्योग किया। किन्तु चित्तोड़ के राना ने उसकी शरण लेना स्वीकार न किया। इसलिए सन् १५६७ में अकबर ने चित्तौड़ पर हमला किया। उस समय राजपूतों ने बड़ी बहादुरी के साथ उसका सामना किया। राना उदयसिंह सुरक्षित स्थान में चला गया और उसके सेनापति जयमल पर अकबर ने गोली चला कर उसे मार डाला। तब अपनी रक्षा कठिन देख कर सब राजपूतों ने अपनी स्त्रियो से जौहर व्रत* करा कर, स्वय शत्रु पर टूट कर प्राण त्याग किये। इतना होने पर ही चित्ताड़ अकबर के हाथ में आ सका। तो भी उदयसिंह ने अकबर की अधीनता नहीं स्वीकार की। उदयसिंह का लड़का प्रतापसिंह विलक्षण प्रतापी था। राजपूतों के साथ युद्ध करने

* युद्ध में या तो विजयी बनना या मर जाना ही राजपूतों की प्राचीन धर्म-मर्यादा है। वे युद्ध में शत्रु को पीठ नहीं दिखाते थे। विजय मिलने की आशा न रहने पर, अपने पीछे स्त्रियो की दुर्दशा होने की आशका से वे उन्हें शत्रु के हाथ में न पड़ने देने के लिए, एक बड़े अग्निकुण्ड में उनको पटक कर स्वय केशरिया कपड़े पहन शत्रु से युद्ध करते हुए अपने प्राण दे देते थे। इस प्रथा का नाम जोहर-व्रत है। मेवाड़ के राजपूतों ने यह जौहर-व्रत अलाउद्दीन के समय में सन् १३०४ में, गुजरात के बहादुरशाह के समय में १५३६ में और अकबर के समय में १५६७ में इस प्रकार कुल तीन बार जोहर-व्रत किया है।

में कुछ तत्व न देख कर अकबर ने उन्हें अपने वश में करने का एक उपाय यह किया कि उनके घराने में अपना वैवाहिक संबंध जोड़ कर उनको अपना बना लिया। शुरू में सन् १५६१ में वह जयपुर गया। वहाँ के राजा भारामल ने अपनी लड़की अकबर को व्याह दी। भारामल के लड़के भगवानदास को अकबर ने अपनी फौज में बड़ा सरदार बनाया। मारवाड़ का राजा मालदेव भी अकबर की शरण में आ गया। उसकी लड़की जोधबाई के साथ भी अकबर ने विवाह किया। उसी की कोख से सलीम पैदा हुआ। जयपुर के भगवानदास की लड़की मानबाई का व्याह सलीम के साथ कर दिया। लेकिन उदयपुर के राना ने मुसलमानों के साथ ऐसा कोई सम्बन्ध न जोड़ा।

( २ ) गुजरात—सन् १५७२-७३ में अकबर ने गुजरात पर चढाई करके अनेक लड़ाइयाँ जीतीं, और अहमदाबाद शहर पर अधिकार करके वहाँ अपना सूबेदार नियत किया। ( ३ ) बगाल में दाउदखाँ स्वतंत्र शासक बन रहा था। उसे अकबर की फौजों ने हरा कर मार डाला और बगाल, बिहार व उडीसा पर अकबर का शासन शुरु किया। यह कार्य राजा टोडरमल ने किया था। उसने तथा उसके बाद कुछ दिनों में राजा मानसिंह ने बंगाल का शासन सुव्यवस्थित कर दिया। इसके बाद कुछ दिनों तक कोई लड़ाई न हुई। इस बीच में अकबर ने राज्य के भीतरी प्रबन्ध को सुधारा, और आगरा व सीकरी में सुन्दर इमारतें बनवाईं। ( ४ ) काबुल—सन् १५८५ में अकबर ने काबुल प्रांत जीता और वहाँ का शासन राजा भगवानदास को दिया। ( ५ ) काश्मीर—सन् १५८७ में उसने राजा भगवानदास और कासिमखाँ


काबुल
काश्मीर
सिन्ध नदी
लाहौर
मुल्तान
पानीपत
देहली
गङ्गा नदी
आगरा
जोधपुर
जयपुर
अजमेर
लखनऊ
बनारस
गौड़
इलाहाबाद
अहमदाबाद
नर्मदा न.
ताप्ती न.
अहमदनगर
गोलकुण्डा
कृष्णा न.
गोआ
बङ्गाल की खाड़ी
कावेरी न.
अरब सागर
नकशा
भारतवर्षका
सन् १६०५ ई०
मीलोंका स्केल
० ५० १०० २०० ३०० ४००

को फौज देकर काश्मीर पर अपना अधिकार जमाने के लिए भेजा। (६) सिन्ध—सन् १५९२ में अकबर ने सिन्ध प्रान्त को अपने अधीन कर लिया (७) कंधार-इसी तरह सन् १५९४ में कंधार जीतने पर अफगानिस्तान से नर्मदा तक अकबर का राज्य एक छत्री बन गया।

(८) दक्षिण-भारत—सन् १५९५ के लगभग दक्षिण में अहमदनगर में गद्दीनशीनी के झगड़े खड़े हुए। मौका पाकर अकबर ने उस राज्य पर अपने लड़के मुराद को फौज देकर भेजा। वहाँ की चतुर बेगम चाँदबीबी उस समय शासन कर रही थी। उसने मर्दों की पोशाक पहन कर स्वय युद्ध किया। यह खबर मिलते ही अकबर ने अपने विश्वास पात्र सरदार अबुल-फजल को अहमदनगर भेजा और पीछे स्वयं दक्षिण की ओर गया। भारत की शूर और पराक्रमी स्त्रियों में चाँद बीबी भी गिनी जाती है। यह हुसेन निजामशाह की लड़की और अली आदिलशाह की बेगम थी। अपने पति के मरने पर इसने कुछ दिनों तक बीजापुर का शासन किया। किन्तु बाद को वजीर के साथ उसकी अनबन हो जाने के कारण वह सितारा के किले में कैद हो गई। कुछ दिनो बाद उसकी बेटी का विवाह निज़ामशाह के साथ हुआ। उसके साथ वह अपने पिता के घर अहमदनगर आई। उस राज्य को जीतने का प्रयत्न अकबर ने पाँच-छ वर्ष तक बराबर किया। लेकिन बादशाह अपनी जिन्दगी में उसे न जीत सका। अबुलफजल ने दौलताबाद पर अधिकार कर लिया और अहमदनगर पर चढाई की। इसी बीच में चाँद बीबी मार डाला गई और अहमदनगर का किला मुगलों के हाथ में आ

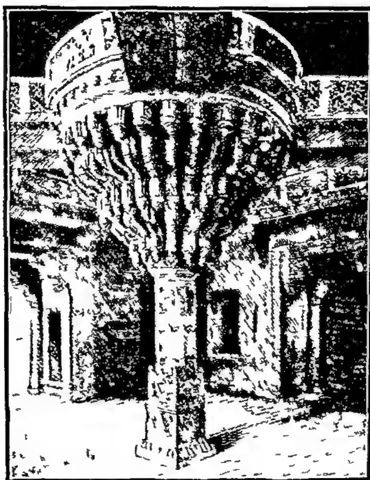
गया ( १६०० )। तथापि निज़ामशाही राज्य पर उनका अधिकार न हो सका। अपने बड़े लड़के सलीम के विद्रोही बन जाने के समाचार को पाकर अकबर ने तुरन्त युद्ध रोक कर आगरे की यात्रा की। इस चढ़ाई में अकबर ने केवल बरार और खानदेश को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया।

(३) अन्त-काल की निराशा—अकबर का प्रारंभिक जीवन-काल जैसा समुन्नत बीता, वैसा ही उसका अन्तिम समय अनेक चिन्ताओं से व्यथित होने के कारण दु ख में बीता। उसके तीन लड़के थे। सलीम, दानियाल और मुराद। सलीम का जन्म सन् १५६९ में हुआ था। अन्य लड़के उससे छोटे थे। ये लड़के वीर, उदार और चतुर थे। लेकिन सब को शराब पीने का शौक़ था। वे भिन्न भिन्न प्रान्तों के सूबेदार थे, इससे उन्हें अनेक लड़ाइयाँ भी लड़नी पड़ी थीं। सन् १५९९ में मुराद की मृत्यु हुई। बाद को दानियाल पर अकबर की प्रीति अधिक देख कर सलीम को सन्देह हुआ कि बादशाह के मरने के बाद दानियाल ही गद्दी का अधिकारी बनेगा। यह सोचकर जिस समय अकबर दक्षिण में अहमदनगर के युद्धों में फँसा था, सलीम ने ठीक उसी समय मौक़ा देखकर उसके विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया और स्वयं राजचिह्न धारण कर लिये। यह ख़बर पाकर अकबर तुरंत आगरे वापस आया और अबुलफ़ज़ल को दूसरे रास्ते से आकर सलीम को पकड़ने के लिए लिखा। अबुलफजल बड़ा बुद्धिमान पुरुष था। परतु सलीम को संदेह था कि पिता को मुझसे नाराज करानेवाला अबुलफजल ही है। अत जिस समय अबुल फ़ज़ल बुंदेल-खड की राह होकर आगरे की ओर आ रहा था, सलीम ने एक आदमी-द्वारा उसकी हत्या करवा दी

(१६०२)। अपने प्राण प्रिय सरदार की हत्या अपने ही पुत्र द्वारा हुई देख वह अत्यत दु खी हुआ। उसे जीवन में अब कोई आनन्द न आने लगा। सलीम का मनसब उसने बिलकुल तोड़ दिया। सन् १६०४ में उसके दूसरे पुत्र दानियाल की मृत्यु हुई। इस प्रकार एक दुःख के बाद दूसरा दु ख उसके शरीर को क्षीण करने लगा। अन्त में अपना भी मृत्यु काल समीप आया जान उसने प्रत्येक बात का निर्णय कर दिया। सभी दरबारियों को एकत्र किया और सलीम को सदुपदेश देकर ४ बातें बताई। इसके बाद यह पराक्रमी जगद्विख्यात मुगल सम्राट् ५० वर्ष शासन करके ६२ वर्ष की अवस्था में सन् १६०५ की १५ अक्टूबर को आगरे में मर गया। इसकी कब्र आगरे के समीप ही सिकंदरे में है। यह "अकबर का मक़बरा" के नाम से प्रसिद्ध है।

(४) स्वभाव और बुद्धिमानी का रहस्य—पृथ्वी पर जो प्रसिद्ध राज पुरुष आज तक हुए हैं उनमें अकबर की भी गणना है। वह मिलनसार और शासन-कार्य में परम पटु था। उसका डील डौल न बहुत लम्बा और न बहुत छोटा था। उसका शरीर हृष्ट पुष्ट था और चेहरे पर दमक थी, जिससे उससे मिलनेवाले पर उसका आतंक बैठ जाता था। शरीर में शौर्य भी कूट कूट कर भरा हुआ था। एक बार एक पागल हाथी अपने महावत को मार कर छूट पड़ा। इस हाथी की पीठ पर अकबर एक ही छलांग में चढ गया और तुरन्त उसे अपने वश में कर लिया। साड़िये पर बैठ कर वह लम्बी से लम्बी यात्रा अनायास कर लेता था। यद्यपि विद्याभ्यास उसको अधिक न था, तथापि अनेक प्रकार के ग्रन्थों को वह दूसरों से पढवा कर सुनता था। इस प्रकार वह बहुश्रुत बन

थे, अपने विचारों के पक्के थे। इन दो अद्वितीय पुरुषों की सहायता मिलने से सन् १५७५ से २५ वर्ष तक अकवर ने नवीन धर्म की सिद्धि प्राप्त की। इनमें फैजी विद्वान् होने के अलावा विरक्त भी था। उसने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद फारसी में किया था। फजल विद्वान् भी था और साथ ही साथ शूर राजनीतिज्ञ और प्रवन्धक भी था। उसकी और अकवर की ऐसी मित्रता हुई कि आगे के २५ वर्षों के प्रत्येक महत्त्व के कार्य में अकवर उससे अवश्य सहायता लेता। पहले अपने स्तुत्य उद्देश पर लोगों का विश्वास जमाने के लिए अकवर ने मुसलमान, हिन्दू, पारसी, ईसाई इत्यादि धर्मों के बड़े बड़े विद्वान् उपदेशक दूर दूर देशों से आगरे में बुलाये और उनके साथ धर्म के विषय में वादविवाद शुरू किया। इस वादविवाद के लिए उसने एक बड़ा सुन्दर महल बनवाया था। प्रति गुरुवार की रात को सभा की जाती और उसमें वादविवाद होता। अकवर और फ़ज़ल तटस्थ होकर प्रत्येक की बात को सुनते। कुछ समय में भिन्न भिन्न धर्मों के उदात्त तत्त्वों को एकत्र करके अकवर ने अपने नवीन धर्म की स्थापना की। उसमें मुसलमानी धर्म से बड़ा अन्तर पड़ गया। पारसियों की अग्नि पूजा और हिन्दुओं की सूर्योपासना को उसने अपने धर्म में स्थान दिया। कालपी का रहनेवाला प्रसिद्ध ब्राह्मण दरवारी और अकवर का मित्र राजा बीरवल भी इस काम में सहायता देता था। अकवर स्वयं इस नवीन धर्म का प्रवर्तक बना। इस धर्म का प्रचार हुआ। लेकिन वह चिरस्थायी न रहा। राजा वीरवल काश्मीर की चढ़ाई में मरा। टोडरमल व अन्य साथी भी चल बसे, अवुलफ़ज़ल मारा गया। इससे अकवर की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। अन्त के दो-तीन वर्षों में उसका चित्त ठिकाने न रहा, इसीलिए



इबादतखाना, फतेहपुर सीकरी

उसकी मृत्यु के साथ ही साथ इस धर्म का लोप* हो गया। तथापि फैजी और फजल के इन प्रयत्नों से हिन्दू-मुसलमानों का पारस्परिक धार्मिक द्वेष बहुत कुछ घट गया और वे मिल-जुल कर रहने लगे। आज-कल की परिस्थिति में हिन्दू मुसलमानों के झगड़े भड़क जाने के समय एक दूसरे के साथ व्यवहार करने के तत्त्व पर किस शैली से काम लिया जाना चाहिए—इस सम्बन्ध म अकबर का यह प्रयत्न दोनों ही पक्षों के लिए अनुकरणीय है।

अकबर का सम्पूर्ण शासन-काल इतना समुज्वल है कि उसके समय का पृथिवी पर इतना सुधरा हुआ सुखी और बलवान् राज्य दूसरा कोई न था। अकबर के समकालीन इंग्लैंड में महा रानी इलेजबेथ थीं। इसका भी शासन प्रजा के लिए हितकर और स्मरणीय था। अकबर के दरबार में अनेक पुरुषों का उदय हुआ। बैरामखाँ, टोडरमल, बीरबल, अबुलफजल, फैजी, जयपुर का राजा मानसिंह, तानसेन, मुल्ला दो प्याजा और हकीम हुमाम इत्यादि अकबर के नवरत्न थे। इसी प्रकार बदाउनी नामक एक विद्वान् इतिहासकार उसके पास था। उसका लिखा ग्रन्थ बड़ा ही मनोरंजक है। अँगरेजी राज्य में विरला ही व्यक्ति लार्ड सिनहा के समान प्रान्त का गवर्नर बन पाता है। लेकिन अकबर के समय में भिन्न भिन्न प्रान्तों में अनेक हिन्दू प्रान्तीय सूबेदार बनाये गये थे। मानसिंह का शासन इतना प्रसिद्ध है, कि अफगानिस्तान के समान झगडालू प्रान्त पर मानसिंह का शासन शुरु होते ही वहाँ से वह बदला न गया। ऐसे ही लोगों ने बादशाह की सेवा की। ऐसे ही साम्राज्य-सेवकों का बादशाह सम्मान किया करता था।

* हिन्दू-मुसलमान को एक बनानेवाले कबीर पंथ व सिक्ख-पंथ आज भी प्रचलित हैं।

# चतुर्थ अध्याय

## जहाँगीर और शाहजहाँ

### सन् १६०५-१६५८

१—सलीम उर्फ़ जहाँगीर २—नूरजहाँ ३—अन्त के विद्रोह ४—जहाँगीर की राज्य-व्यवस्था ५—शाहजहाँ ६—शाहजहाँ की योग्यता

(१) सलीम उर्फ़ जहाँगीर (सन् १६०५-१६२७)—अकबर के मरने पर, उसका लड़का सलीम जहाँगीर (अर्थात् संसार को जीतनेवाला) की पदवी धारण कर राजगद्दी पर बैठा। उसमें भी पराक्रम का अभाव न था। लेकिन शराब पीने के कारण उसके शरीर में तेज न रह गया था। अकबर ने राज्य की व्यवस्था पक्की कर दी थी, इसलिए जहाँगीर ने कुछ दिनों तक शान्ति से शासन किया। राजगद्दी पर बैठ कर उसने अनेक नये अच्छे नियम बनाये। लेकिन उसका यह भाव सदा एक सा न रहा। उसके शासन काल में यूरोपीय लोग भारत में आये। उन्होंने जहाँगीर के समय की बातें लिखी हैं। जहाँगीर के शासन-काल में शासन-सम्बन्धी परिवर्तन अधिक नहीं हुए। सन् १६०८ से १६१४ तक उदयपुर के राना अमरसिंह को जीतने के लिए जहाँगीर ने युद्ध किया। किन्तु इस युद्ध में उसे सफलता न मिली। अमरसिंह ने स्वयं बादशाह की अधीनता स्वीकार न कर

नूरजहाँ



जहाँगीर

अपने लड़के कर्णसिंह को उसके दरबार में भेज दिया। जब शिवाजी पर औरङ्गजेब की नौकरी करने का भार डाला गया था तब उसने भी इसी युक्ति से काम लेकर सम्भाजी को बादशाह की नौकरी में देना स्वीकार किया था। सन् १६१६ से १६२२ तक दक्षिण देश जीतने का काम जहाँगीर के लड़के खुर्रम (शाहजहाँ) ने किया था। उस समय मलिकअबर नामक एक हबशी सरदार निज़ामशाही में प्रमुख था। उसने शाहजी भोंसले की सहायता से अहमदनगर के राज्य की रक्षा की थी। जहाँगीर के अन्त समय में शाहजहाँ बाग़ी बन गया था। इसलिए अपनी रक्षा के लिए उसे कुछ दिनों जुन्नार में छिप कर रहना पड़ा था।

सलीम के चार लड़के थे—ख़ुशरू, ख़ुर्रम, पर्वेज़ और शहरयार। ख़ुशरू सद्गुणी और चतुर था। परन्तु उस पर अकबर का अधिक स्नेह होने के कारण, उससे जहाँगीर की कभी नहीं पटती थी। ख़ुर्रम बात-चीत में बड़ा चतुर और प्रभावशाली था। पर्वेज़ शराबख़ोरी के कारण अयोग्य था। जहाँगीर की गद्दीनशीनी होते ही ख़ुशरू बाग़ी हो गया। इसलिए बादशाह ने उसे क़ैद कर लिया। ख़ुर्रम दक्षिण में रहने लगा। अत वह अपने साथ ख़ुशरू को लेता गया। दक्षिण में बरहानपुर में ख़ुशरू की हत्या हुई।

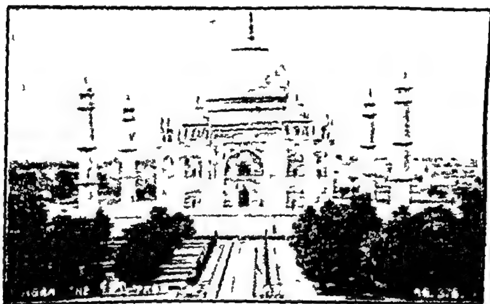
(२) नूरजहाँ—जहाँगीर के शासन-काल में नूरजहाँ का वृत्तान्त बड़े मार्के का है। इसका स्वदेश ईरान था। उसके पिता ग्रयाज उर्फ गयासबेग विपत्ति में पड़ने के कारण भारत के लिए स्वदेश से निकल पड़ा। राह में सन् १५७९ में उसकी स्त्री की कोख से

का अपमान किया। इससे नाराज़ हो कर उसने एकदम हमला करके नूरजहाँ और बादशाह दोनों को ही कैद कर लिया। इस कैद से नूरजहाँ ने अपना और बादशाह का बड़ी युक्ति से छुटकारा करा लिया और महाबतखाँ को धूल में मिला देने के लिए उसने उसे दक्षिण में ख़ुर्रम पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। लेकिन वहाँ जाते ही महाबतखाँ और ख़ुर्रम में मेल हो गया। इधर बादशाह हवा बदलने के लिए काश्मीर जा रहा था। राह में वह बीमार पड़ा और २८-१०-१६२७ को मर गया। उसके मरते ही नूरजहाँ निर्बल हो गई। ख़ुर्रम शीघ्रता के साथ दक्षिण से आया और बड़ी सावधानी से अपने विरोधियों को हरा कर दिल्ली के तख़्त पर अपना अधिकार करके शाहजहाँ की पदवी धारण की। उसने गद्दी के अन्य सभी हक़दारों को मार डाला।

(४) शाहजहाँ की राज्य-व्यवस्था—ऊपर दिये गये वृत्तात से जहाँगीर की योग्यता प्रकट होती है। उसके उद्देश अवश्य ही अच्छे थे, लेकिन वे सार्थक न हो पाये। यदि वह शुद्ध जीवन बिताता तो ज़रूर अनेक अच्छे काम करता। यद्यपि वह स्वयं शराब पीता था, तथापि यदि अन्य कोई व्यक्ति शराब पीता तो उसे वह कड़ी से कड़ी सज़ा देता था। महल में एक घंटा रख कर उसकी सोने की ज़ञ्जीर उसने बाहर रास्ते में लटका दी थी। उसके हिलते ही भीतर घंटा बज उठता था और इस तरह चाहे जो व्यक्ति अपनी शिकायत बादशाह के कानों तक पहुँचा सकता था। इसी से उसका नाम ही "न्याय-शृङ्खला" पड़ गया था। यह साँकल ६० फुट लम्बी थी। इसमें सात के घंटे लटकाये गये थे। जहाँगीर शौकीन बादशाह विद्या का प्रचार कराया। उसके



शाहजहां



ताजमहल

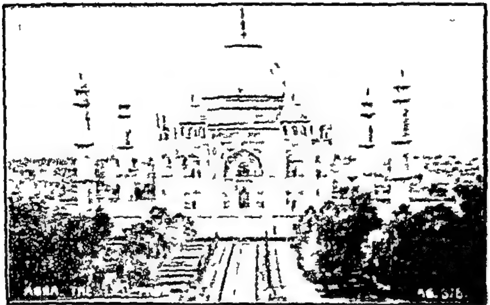


मुमताज महल

थी। अपने ऐश-आराम में विघ्न डालनेवाले धर्म-नियमों को भी वह नहीं मानता था। उसकी सवारी का ठाठ निराला था। उसने अपना जीवन चरित स्वयं लिखा है।

अंगरेज लोगों का भारत के साथ सम्बन्ध पहले पहल जहाँगीर के ही शासन काल में हुआ था। इस सम्बन्ध के सौ वर्ष पूर्व से ही भारत की जानकारी यूरोप में अच्छी तरह फैल गई थी और वहाँ के अनेक व्यापारी यहाँ व्यापार के लिए आया करते थे। हाकिन्स ( सन् १६०८ ) और सर टामस रो ( सन् १६१५ ) इंग्लैंड की ओर से बादशाह के पास व्यापार करने की आज्ञा माँगने आये थे। लेकिन उन्हें कोई खास सहूलियत न मिल सकी। केवल सूरत में एक कोठी खोलने की पर्वानगी उन्हें मिली थी। इसी समय अंगरेज़ों ने अपना व्यापार भारत के साथ प्रारम्भ किया। इन दोनों अंगरेजों के लिखे हुए यात्राओं के वर्णन बड़े मनोहर हैं।

( ५ ) शाहजहाँ का शासन-काल—मुग़ल-वंश में सब से अधिक भाग्यशाली बादशाह शाहजहाँ ही हुआ है। राजगद्दी पाने के लिए उसे कितने ही दुष्कर्म अवश्य करने पड़े, परन्तु इसके बाद उसने अपने चातुर्य को प्रकट किया। वह विषयी था, तथापि उसने शासन के कार्य में कोई गड़बड़ नहीं होने दिया। आसफख़ाँ और सादुल्लाख़ाँ उसके वजीर थे। आसफख़ाँ उसका ससुर था। वह शासन-कार्य में बड़ा दक्ष था। उसकी मृत्यु के बाद सन् १६४४ से ५६ तक सादुल्लाख़ाँ ने वजीरी का काम किया था। सादुल्लाख़ाँ पहले हिन्दू था। लेकिन बड़ी उम्र में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। वह बड़ा चतुर, हिसाब-किताब में पक्का और अपने काम में अनुभवी था। शाहजहाँ ने



ताजमहल



मुमताज महल

थी। अपने ऐश-आराम में विघ्न डालनेवाले धर्म नियमों को भी वह नहीं मानता था। उसकी सवारी का ठाठ निराला था। उसने अपना जीवन-चरित स्वय लिखा है।

अंगरेज लोगों का भारत के साथ सम्बन्ध पहले पहल जहाँगीर के ही शासन काल में हुआ था। इस सम्बन्ध के सौ वर्ष पूर्व से ही भारत की जानकारी यूरोप में अच्छी तरह फैल गई थी और वहाँ के अनेक व्यापारी यहाँ व्यापार के लिए आया करते थे। हाकिन्स ( सन् १६०८ ) और **सर टामस रो** ( सन् १६१५ ) इग्लैंड की ओर से बादशाह के पास व्यापार करने की आज्ञा माँगने आये थे। लेकिन उन्हें कोई खास सहूलियत न मिल सकी। केवल सूरत में एक कोठी खोलने की पर्वानगी उन्हें मिली थी। इसी समय अंगरेज़ों ने अपना व्यापार भारत के साथ प्रारंभ किया। इन दोनों अगरेजों के लिखे हुए यात्राओं के वर्णन बड़े मनोहर हैं।

**( ५ ) शाहजहाँ का शासन-काल**—मुगल-वश में सब से अधिक भाग्यशाली बादशाह शाहजहाँ ही हुआ है। राजगद्दी पाने के लिए उसे कितने ही दुष्कर्म अवश्य करने पड़े, परन्तु इसके बाद उसने अपने चातुर्य को प्रकट किया। वह विषयी था, तथापि उसने शासन के कार्य में कोई गड़बड़ नहीं होने दिया। आसफखाँ और सादुल्लाखाँ उसके वजीर थे। आसफखाँ उसका ससुर था। वह शासन-कार्य में बड़ा दक्ष था। उसकी मृत्यु के बाद सन् १६४४ से ५६ तक सादुल्लाखाँ ने वजीरी का काम किया था। सादुल्लाखाँ पहले हिन्दू था। लेकिन बड़ी उम्र में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। वह बड़ा चतुर, हिसाब-किताब में पक्का और अपने काम में अनुभवी था। शाहजहाँ ने

साध्य कार्य किये। धर्म के मामले में वह आग्रही न था। परन्तु अपने धर्माचार में वह दक्ष था। उसने हीरों इत्यादि मणियों से जड़ा हुआ एक मयूरासन तैयार कराया था। उसके बनने में ६ करोड़ से भी अधिक रुपये ख़र्च हुए थे। शाहजहाँ के समय में बादशाही ज़नानख़ाने की शान विशेष रूप से बढ़ गई थी। तोपख़ाने की उन्नति करके उसने उसके बल पर अनेक युद्ध जीते थे। तोपों के काम में उसने यूरोपियों को भर्ती किया था। उसने अपने आदमी इस काम में तैयार नहीं किये। यूरोपीय युद्ध-कला की ओर मुगलों ने ध्यान नहीं दिया। इसीसे इस देश में यूरोपियों का प्रवेश सहज में हो गया। दिल्ली और आगरे में अनेक इमारतें बनवा कर उन शहरों की बड़ी उन्नति की। शाहजहाँ का स्मारक अर्थात् उसकी प्यारी बेगम मुमताज महल की क़ब्र अर्थात् आगरा का ताजमहल यमुना के किनारे आगरे से दक्षिण की ओर डेढ कोस पर बना हुआ है। इसके बनने में ३ करोड़ रुपये ख़र्च हुए थे। यह १२ वर्ष में बन कर तैयार हुआ था। सभी काम भारतीय कारीगरों ने किया था। इतनी सुन्दर और गुम्बज़दार इमारत पृथिवी पर दूसरी नहीं है। शाहजहाँ के राज्य में २२ सूबे थे। उसकी आय ३८ करोड़ रुपये वार्षिक थी। अकबर की चलाई हुई मालगुजारी की पद्धति शाहजहाँ ने दक्षिण में भी चलाई। मंडेल्स्लो, टवर्नियर, बर्नियर इत्यादि यात्री शाहजहाँ के शासनकाल में भारत में आये थे। उन्होंने जो वर्णन लिखा है वह चित्ताकर्षक है। शाहजहाँ की मृत्यु २२ जनवरी सन् १६६६ में आगरे के किले में हुई।

---



औरङ्गजेब (युवावस्था)



औरङ्गजेब ( वृद्धावस्था )

# पाँचवाँ अध्याय

## औरङ्गज़ेब

### सन् १६५८-१७०७

१—औरङ्गज़ेब और अकबर २—मीर जुमला
३—बुन्देलखण्ड का छत्रसाल ४—राजपूतों से युद्ध और ज़जिया-कर
५—दक्षिण पर चढ़ाई और मृत्यु ६—औरङ्गज़ेब की योग्यता

(१) औरङ्गज़ेब और अकबर—औरङ्गज़ेब का शासनकाल अनेक बातों में बड़े मार्के का समझा जाता है। वास्तव में यदि देखा जाय तो चतुरता, उद्योग, विद्वत्ता दीर्घ जीवन इत्यादि में इसकी बराबरी का दूसरा बादशाह मुगल-वंश में हुआ ही नहीं। यदि इन गुणों का सरल रीति से उपयोग करके वह शासन करता तो अवश्य ही अकबर के समान उन्नति कर लेता और उसका राज्य चिरस्थायी बन जाता। लेकिन उसमें कपट की मात्रा अत्यधिक थी। दूसरों को किस तरह फँसाया जाय, इसी काम में उसने अपनी सब अक्ल खर्च कर डाली थी। उसका विश्वास कभी किसी पर न था। उसकी बराबरी के और उसका साथ देनेवाले कितने ही अन्य लोग थे। लेकिन उनका भी विश्वास उसने कभी नहीं किया। इसी से अन्त में साम्राज्य की दुर्दशा हो गई। मिथ्याभिमान से भड़क कर उसने स्वयं अपनी, अपने वंश की और अपने राज्य की हानि कर ली। मृत्यु से घेरे जाने पर उसकी

आँखें खुलीं और अपने किये का पश्चात्ताप होने से उसे बड़ी निराशा हुई। इससे अत्यन्त खिन्न होकर अपने सांसारिक जीवन का अन्त ही उसे श्रेय प्रतीत हुआ।

अकबर ने राज्य को सबल बनाने के जो जो उपाय किये थे उन सब पर औरङ्गज़ेब ने पानी फेर दिया। अकबर ने हिन्दू मुसलमानों को एक बनाये रखने का उपाय किया। औरङ्गज़ेब ने इस्लाम-धर्म का अति अभिमान करके हिन्दुओं को बर-बस मुसलमान बनाया। पहले परधर्मी लोगों पर "जजिया" नाम का कर बैठाया गया था। उसे अकबर ने माफ़ कर दिया था। लेकिन औरङ्गज़ेब ने इसे फिर चलाया। अकबर ने सौर वर्ष की गणना के अनुसार समय की गणना शुरू की थी, उसे बन्द कर औरङ्गज़ेब ने चान्द्र वर्ष की गणना से काम लिया। अपने दुष्कृत्यों का उल्लेख न हो, इस अभिप्राय से उसने बादशाही तवारीख़ का लिखा जाना तक बन्द करा दिया। उसने हिन्दुओं की पाठ-शालाएँ, मठ, देवालय इत्यादि नष्ट कर उनकी जगह पर मसजिदें बनवाईं। उसने हिन्दुओं के मेले और यात्राएँ बन्द करा दीं। योगी व संन्यासियों को भी कहीं रहने का स्थान न रहने दिया। इससे सन्यासियों ने दङ्गे किये। उनको रोकने में असंख्य मनुष्यों का संहार हुआ। इसी तरह औरङ्गज़ेब का शासन शुरू हुआ। मुग़ल-बादशाही को डुबाने में औरंगजेब की यही अदूरदर्शी नीति कारण बनी।

(२) मीर जुमला—मीर जुमला नाम का एक बली और प्रभावशाली सरदार ईरान से भारत में आकर गोलकुंडा के कुतुब-शाह के दरबार में नौकर हो गया था। उसमें और दारा में अन

बन हो जाने के कारण वह प्रारंभ से ही अपनी फ़ौज के साथ औरंगज़ेब से जा मिला था और उसी की सहायता से बाद को औरंगजेब को दिल्ली का तख्त मिला। उसी ने शुजा को हरा कर उससे बंगाल प्रांत छीन लिया था। इन कार्यों की सफलता को देख कर औरङ्गजेब मन ही मन उससे डरने लगा। इसी से वह मीर जुमला के नाश का मौक़ा खोजने लगा। यह कृतघ्न स्वभाव का एक नमूना है। बाद को आसाम-प्रान्त जीतने के लिए बादशाह ने उसको वहाँ भेजा। उस प्रान्त की आबहवा अनुकूल न होने के कारण वह वृद्ध अनुभवी सरदार वहीं बीमार पड़कर सन् १६६१ में मर गया। विदेश से आये हुए लोगों को इस देश में अपना पराक्रम दिखाने की कितनी सुविधा उस समय थी, यह बात मीर जुमला, नूरजहाँ, महम्मदगवाँ, मलिक अम्बर, क्लाइव, डूप्ले, वारेनहेस्टिंग्ज इत्यादि के उदाहरण भारतीय इतिहास में सहज ही मिल सकते हैं।

(३) बुंदेलखंड का राजा छत्रसाल (सन् १६५०-१७३३)—बुंदेलखंड-प्रान्त मुगलों की अधीनता में पक्की तरह से न आ पाया था। पहले के बादशाहों ने अनेक युद्ध करके वहाँ के राजपूतों को परास्त किया अवश्य, तथापि समय पाते ही वे स्वतन्त्र हो जाते थे। बुंदेलखंड के वीरसिंहदेव नाम के राजा ने ही सलीम के कहने से सन् १६०२ में अबुलफजल का ख़ून करा दिया था। औरङ्गजेब के समय में वीरसिंह का नाती चंपत बुंदेलखंड में महोबा में राज्य करता था। राज्य पाने के लिए जो युद्ध औरङ्गजेब ने अपने भाइयों के साथ किये थे, उनमें इस राजा ने औरङ्गजेब की सहायता की थी। लेकिन बाद



महाराजा छत्रसाल

बन हो जाने के कारण वह प्रारम्भ से ही अपनी फौज के साथ औरंगज़ेब से जा मिला था और उसी की सहायता से बाद को औरंगजेब को दिल्ली का तख़्त मिला। उसी ने शुजा को हरा कर उससे बंगाल प्रांत छीन लिया था। इन कार्यों की सफलता को देख कर औरङ्गजेब मन ही मन उससे डरने लगा। इसी से वह मीर जुमला के नाश का मौक़ा खोजने लगा। यह कृतघ्न स्वभाव का एक नमूना है। बाद को आसाम-प्रान्त जीतने के लिए बादशाह ने उसको वहाँ भेजा। उस प्रान्त की आबहवा अनुकूल न होने के कारण वह वृद्ध अनुभवी सरदार वहीं बीमार पड़कर सन् १६६१ में मर गया। विदेश से आये हुए लोगों को इस देश में अपना पराक्रम दिखाने की कितनी सुविधा उस समय थी, यह बात मीर जुमला, नूरजहाँ, महम्मदगवाँ, मलिक अम्बर, क्लाइव, डूप्ले, वारेनहेस्टिंग्ज इत्यादि के उदाहरण भारतीय इतिहास में सहज ही मिल सकते हैं।

( ३ ) बुंदेलखंड का राजा छत्रसाल (सन् १६५०-१७३३)—बुंदेलखंड प्रान्त मुगलों की अधीनता में पक्की तरह से न आ पाया था। पहले के बादशाहों ने अनेक युद्ध करके वहाँ के राजपूतों को परास्त किया अवश्य, तथापि समय पाते ही वे स्वतन्त्र हो जाते थे। बुंदेलखंड के वीरसिंहदेव नाम के राजा ने ही सलीम के कहने से सन् १६०२ में अबुलफजल का ख़ून करा दिया था। औरङ्गजेब के समय में वीरसिंह का नाती चंपत बुंदेलखंड में महोबा में राज्य करता था। राज्य पाने के लिए जो युद्ध औरङ्गजेब ने अपने भाइयों के साथ किये थे, उनमें इस राजा ने औरङ्गजेब की सहायता की थी। लेकिन बाद

को अपने स्वभाव से लाचार होकर बादशाह ने चंपतराय के नाश का बीड़ा उठाया। दोनों में युद्ध शुरू हुआ। अंत को सन् १६६४ में चम्पतराय मारा गया। उसके छत्रसाल नाम का एक लड़का था। इसकी उम्र चौदह वर्ष की थी। इस राजकुमार ने अपनी वीरता के सहारे अनेक वर्षों तक बादशाही फौजों के साथ टक्कर लेकर अपनी स्वतंत्रता रक्षित रक्खी। मराठों के शिवाजी से बुंदेलों के छत्रसाल की बड़ी मित्रता थी। बादशाही के विरुद्ध अन्त तक लड़ कर इसी ने अपनी सहायता के लिए बाजीराव को बुंदेलखंड में बुलाया था और सन् १७३३ में मरते समय अपने राज्य का तृतीयांश बाजीराव को दे गया था।

(४) राजपूतों के साथ युद्ध, जजिया कर (सन् १६६९-८१)—इस युद्ध के शुरू होने से पहले मुगल-बादशाह की सत्ता एकदम उन्नति के शिखर पर पहुँच चुकी थी। सन् १६६६ में औरंगजेब के अधिकार में जितना प्रदेश था, उतना प्रदेश पहले मुगल साम्राज्य में न था। यदि औरङ्ग़ज़ेब इतने ही से संतुष्ट रहता तो उसे आगे आनेवाली आफतें न झेलनी पड़तीं। लेकिन वह सोचने लगा कि मैं इस समय निश्चिन्त हूँ। इसलिए उसने हिन्दुओं के साथ छल करना शुरू किया। पहले उसने राजपूत राजाओं को जीतने का काम शुरू किया। अकबर की चलाई प्रथा के अनुसार राजपूत राजे अपने राज्य को सँभालते थे और बादशाही फौज में नौकरी करते थे। इससे साम्राज्य के वास्तविक आधार-स्तंभ वही लोग थे। पहले तो औरङ्गजेब ने उन राजाओं पर ज़ज़िया कर लगाने के सम्बन्ध में सख़्त हुक्म जारी किया। इसलिए उसके साथ ही साथ जहाँ-तहाँ गड़बड़ शुरू हुआ। जब मुसलमान अन्य राज्य जीतने

को खड़े हुए थे, उस समय परधर्मियों के सरक्षण के लिए अपनी फौज इत्यादि रखने का जो खर्च पड़ता था उसे पूरा करने के लिए खलीफा उमर ने यह कर पहले जारी किया था। अन्य देशों में जाकर वहाँ की प्रजा से अरब लोग कहते कि "तुम लोग मुसलमान बन कर हममें मिल जाओ तो तुमको भी हमारे ही समान हक मिलेंगे। यदि ऐसा न करोगे तो तुमको जजिया देना पड़ेगा।" अर्थात् जो मुसलमान बन जाते वे विजेताओं के पक्ष में गिने जाते थे, अन्य लोग हलके गिने जाते थे। यह भेद-भाव लोगों को बहुत अखरता था। इस भेद भाव को मिटाने के लिए अकबर ने यह कर उठा दिया था। यह जजिया-कर ब्राह्मणों से एक मोहर प्रतिवर्ष, गरीबों से ३॥ रुपया और अन्य लोगों से उनकी सामाजिक स्थिति के अनुसार ६० रुपया तक लिया जाता था।

राजपूताने में उस समय तीन राजे अगुआ थे, जयपुर के जयसिंह, जोधपुर के यशवन्तसिंह और उदयपुर के राजसिंह। इनमें से पहले दो राजे बादशाह की नोकरी में थे। यशवन्त सन् १६७८ में काबुल में मरा। इसके बाद बादशाह ने उसके राजकुमार को उसका राज्य नहीं दिया। इसलिए राजपूत लोग भड़क उठे। बादशाह ने इनके साथ लड़ाई करने के लिए इतनी अधिक तैयारी की कि लोगों को यह प्रतीत होने लगा कि बादशाह शायद सारी पृथिवी को ही जीतने का प्रबन्ध कर रहा है। उसका सामना करने का भार राजसिंह पर पड़ा। राजपूत लोग सारे देश को विध्वस करने लगे। औरंगजेब की कपट विद्या भी अपना काम कर रही थी। लेकिन उसका लक्ष्य वह स्वयं बन गया। राजपूतों ने शाहजादा अकबर को अपनी तरफ मिला लिया

अहदमनगर, ब्रह्मपुरी इत्यादि स्थानों में उसके कितने ही वर्ष निकल गये। अन्त में उसे बड़ा दु ख हुआ। शाहजादा अकबर उसके भय से भारत छोड़कर ईरान चला गया, वहीं उसकी मृत्यु हुई। उसके अन्य तीन शाहज़ादे मुअज़्ज़म, अज़ीम और कामबख्श आपस में एक दूसरे से बिगड़े और स्वय राज्य पाने के लिए प्रयत्न करने लगे। बादशाह को पता लगा कि कहीं मेरे लड़के भी मेरे कार्यों का अनुसरण कर मेरी दुर्दशा न करें, इस लिए उसने अपनी मृत्यु होने तक अपने किसी लड़के को अपने पास तक न फटकने दिया। उसके सभी उद्देश असफल रहे। अपने हाथों बड़े बड़े अनर्थ हो जाने से उसे परलोक की भी कोई आशा न रही। यह विचार करके कि मेरा राज्य बड़ी जल्दी नष्ट हो जायगा और भूलों को दुरुस्त करने का अब समय भी नहीं रहा, उसे बड़ा कष्ट हुआ। अन्त में मराठों के आक्रमण और भी अधिक ज़ोरदार होने लगे। इससे उसे बुढापे में अत्यंत कष्ट हुआ और इस प्रकार यह अन्तिम मुग़ल सम्राट् २० फरवरी सन १७०७ को अहमदनगर में मर गया। उसकी क़ब्र उसके स्थापित किये हुए औरगाबाद नाम के शहर में रौजा के नाम से प्रसिद्ध है।

(६) औरङ्गजेब की योग्यता—इतिहास में औरंगज़ेब का शासन बड़े मार्के का गिना जाता है। औरगजेब ने इतने प्रबल राज्य की शक्ति हिन्दू-धर्म के नाश करने के व्यर्थ मनोरथ को पूरा करने में खर्च की। अत्याचार, दुराग्रह, अविश्वास और कपटाचार से उसने अपने राज्य को अपने ही शासन काल में नष्ट कर दिया। औरंगजेब का घरू व्यवहार और आचरण बहुत ही सुन्दर और


काबुल
कन्धार
सिन्ध
दिल्ली
आगरा
ग्वालियर
उज्जैन
बम्बई
सूरत
दौलताबाद
औरंगाबाद
अहमदनगर
बीजापुर
हैदराबाद
गोआ
मछलीपट्टन
बिजगापट्टम
मद्रास
पाण्डुचेरी
कालीकट
पालीगार
कलकत्ता
ढाका
चन्द्रनगर
गोण्डवाना
मुगल राज्य
सन् १७०० ई०

आदर्श था, उसका रहन-सहन बिलकुल सादा था। अपने हाथ से लिखी हुई कुरान की प्रतियाँ बेच कर अपनी अन्तिम क्रिया करने के लिए उसने धन एकत्र किया था। उसके समान परिश्रम करनेवाला और निर्व्यसनी मनुष्य मिलना कठिन है। प्रजा में ऐक्य स्थापित करना अकबर का उद्देश था। लेकिन लोगों में फूट डाल कर अपनी रक्षा करना औरगजेब को इष्ट था। औरगजेब के समय में अंग्रेज, फ्रेंच इत्यादि विदेशी व्यापारियों की सत्ता बहुत बढी। औरगजेब के शासन काल में राज्य की आमदनी ४३ करोड़ रुपये वर्षिक थी। धर्म की बातों को छोड़ अन्य बातों में जो न्याय बादशाह करता था वह बिलकुल ठीक होता था। "फतवा-ए-आलमगीरी" अर्थात् औरगजेब के नियम नामक ग्र थ को उसीने लिखा था, जो आज भी धर्म-ग्र थ की तरह मान्य है। कर्मचारियों के अपराध क्षमा करना तो वह जानता ही न था। उसकी मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य कई भागों में बँट गया और अनेक नये मुसलमानी राज्य कायम हो गये। इन राज्यों के अनेक सस्थापक औरगजेब से ही शिक्षा पाकर बढे थे। वजीर आसदखाँ और उसका लड़का जुल्फिकारखाँ, अवध के नवाबों के मूल-पुरुष सआदतखाँ, हैदराबाद के निज़ामों के मूल पुरुष गाजीउद्दीन और उसका प्रसिद्ध लड़का चिनकिलिज़खाँ (निजामुलमुल्क), बगाल के सूबेदारों का मूल-पुरुष मुर्शिदकुलीखाँ, इसी प्रकार दक्षिण में नाम कमानेवाला दाउदखाँ पन्नी तथा अनेक राजपूत और बुदेले सरदार औरगज़ेब की नोकरी करके प्रसिद्ध हुए, किन्तु बाद को इन्हीं लोगों के द्वारा साम्राज्य में बडे बडे परिवर्त्तन हुए।

---

कर ली। इसी प्रकार दाऊदखाँ पन्नी को दक्षिण का सूबेदार बना कर जुल्फिकारखाँ को अपने दरबार में रक्खा।

(२) सिक्खों के झगड़े—इस समय पंजाब में सिक्ख लोग प्रबल होकर बागी हो रहे थे। अकबर के समय से हिन्दू और मुसलमान धर्मों को एक करके दोनों के बीच होनेवाले झगड़ों को बंद करने के लिए यद्यपि अनेक लोग प्रयत्न करने लगे थे, तो भी कबीर इत्यादि अनेक साधु संत ऐसे ऐक्य का उपदेश और भी पहले से करते आ रहे थे। गुरु नानक नाम के एक ऐसे ही साधु की उन्नति पंजाब में हुई थी (जन्म सन् १४६९)। उसने एक नवीन पंथ स्थापित करके अपना उपदेश लोगों को देना शुरू किया। उसने हिन्दू और मुसलमानों के धर्मों से उच्च तत्त्वों का संग्रह किया था। नानक के उपदेश का सार यह था कि धर्म के काम में आग्रह की आवश्यकता नहीं, मनोभाव अथवा किसी भी रीति से की हुई ईश्वरोपासना एक समान फलदायिनी है। उसके जो चेले बने वे शिष्य या सिक्ख के नाम से प्रसिद्ध हुए। धीरे धीरे यह पन्थ उन्नति करने लगा। उसके धर्म ग्रन्थ को "ग्रन्थ साहब" या आदि ग्रन्थ कहते हैं। यह ग्रन्थ पंजाबी या गुरुमुखी भाषा में है। नानक के बाद इस धर्म में १० गुरू हुए। पहले तीन गुरुओं ने शान्ति के साथ धर्म का उपदेश दिया। बाद को यह क्रम बदला और सिक्ख लोगों में सांसारिक उन्नति करने की भी इच्छा उत्पन्न हुई। वे अब सैनिक ढंग से रहने लगे। इससे अन्य लोगों में और खास कर मुसलमानों में भय उत्पन्न हुआ। यह ढंग औरङ्गजेब को भी न पसंद आया। उसने नवें गुरू तेगबहादुर को पकड़वा मँगाया और दिल्ली में कैद में रखकर मार डाला। इस घटना से सभी सिक्ख चिढ़ गये। सिक्खों का

और हुसेन को सेनापति का पद दिया। इन सय्यद भाइयों के कामों से राज्य की बड़ी हानि हुई। बादशाह को उनका प्रभाव दुस्सह हो गया। इसलिए उसने उनको नष्ट करने का उद्योग किया। इधर राजपूतों ने अपना सङ्गठन करके मुग़लों के शासन को निर्बल कर दिया। इस पर हुसेन ने उन पर हमला करके उनके अगुआ अजितसिंह को हरा दिया और उसकी लड़की इन्द्रकुमारी को पकड़ कर उसका विवाह बादशाह के साथ कर दिया। अँगरेज़ डाक्टर हेमिल्टन ने बादशाह को रोग से मुक्त किया था। इसीलिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी को उसने बङ्गाल प्रान्त में ३९ शहर देकर सब करों से माफ कर दिया। अन्त में सैय्यद-भाइयों से बादशाह की जो अनबन थी वह बहुत बढ़ गई। लेकिन उनका नाश करने के जो जो उपाय बादशाह ने किये वे सब उन दोनो पर प्रकट हो गये। हुसेनअली को उसने दक्षिण की सूबेदारी पर नियुक्त करके भेज दिया। वहाँ पहुँच कर हुसेनअली ने मराठों से मित्रता कर ली और उनकी फ़ौज लेकर वह दिल्ली पर चढ़ आया। उन दोनों सैय्यद-भाइयों ने बादशाह को पद-च्युत करके उसे मार डाला और सन् १७१९ में महम्मदशाह को तख़्त पर बैठाया। इन्हीं दोनो सैय्यद भाइयों की मदद से पेशवा बाला जी विश्वनाथ को स्वराज्य की सनद मिली। इसका हाल आगे दिया जायगा।

(४) महम्मदशाह (सन् १७१९-४८)—महम्मद शाह ने शीघ्र ही बड़ी युक्ति के साथ सैय्यद-बन्धुओं को हराया और उन्हें मार डाला। महम्मदशाह में काम करने का उत्साह न था। उसने शासन के काम में अधिक ध्यान न दिया। वह सदा ऐश आराम में ही पड़ा रहा। उसके समय में राज्य के टुकडे टुकडे



नादिरशाह

हो गये। दक्षिण में निजामुल्मुल्क ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। इसका असली नाम कमरुद्दीनखाँ था। इसको औरंगजेब ने "चिनकिलिजखाँ" की पदवी दी थी। जुल्फिकारखाँ से लड़ाई होने पर उसने सैय्यद-बन्धुओं को मदद दी। इसलिए उसे "आसफ जाह" और "निजामुल्मुल्क" की पदवी मिली थी। इसी अन्तिम पदवी से वह अधिक प्रसिद्ध है। दिल्ली की बादशाही को डूबने से बचाने का प्रयत्न इसने बहुत कुछ किया। लेकिन महम्मदशाह से इसकी न बनी। अत यह दक्षिण व गुजरात की सूबेदारी स्वीकार कर वहाँ चला गया। बादशाह उसका नाश करना चाहता था। निजाम को यह बात विदित हो गई। इसलिए सन १७२३ से उसने औरंगाबाद में स्वतन्त्र शासन शुरू किया। मालवा और गुजरात दोनों ही प्रान्तों पर अधिकार करने की इच्छा उसके मन में थी। लेकिन उसकी यह इच्छा पूर्ण न हुई। मराठों और निजाम में बड़ी शत्रुता उत्पन्न हो चुकी थी। उन्हें सारे भारत पर अपना अधिकार जमाते देख निजाम ने अपनी रक्षा का उपाय किया। इसी से मराठों ओर निजाम में झगड़ा शुरू हुआ। यह झगड़ा ७० वर्ष तक चला। इसका पूरा वृत्तान्त महाराष्ट्र-शासन-काल में दिया गया है। मराठे गुजरात, मालवा, बरार इत्यादि जीत कर दिल्ली पर चढाई करने लगे। अत चौथ ओर सरदेशमुखी वसूल करने का हक मराठों को बादशाह ने विवश होकर दे दिया।

(५) नादिरशाह की चढाई ( सन् १७३८ )—इधर राजधानी पर बिजली गिरने के समान एक बडा भयङ्कर काण्ड हो गया। ईरान देश में नादिरशाह नाम का एक पराक्रमी शाह शासन कर रहा था। उसने अपने राज्य की सीमा भारत से

मिला दी। बाद को सन् १७३८ में कुछ बहाना करके उसने एक बड़ी फौज लेकर दिल्ली पर चढ़ाई की। बादशाह को उसने क़ैद किया और स्वयं उसके महल में रहा। नादिरशाह के मारे जाने की झूठी ख़बर फैलते ही दिल्ली के निवासियों ने उसके कुछ सिपाहियों को मार डाला। यह देख कर प्रजा में भय उत्पन्न करने के लिए उसने शहर को लूटने और लोगों को क़त्ल करने का हुक्म दे दिया। फ़ौज ने शहर लूटना और मार-काट करना शुरू किया। इससे शहर के गली-कूचे मरे हुए आदमियों की लाशों से पट गये। लगभग ३० हज़ार से भी अधिक आदमी मारे गये। महम्मदशाह हाथ जोड़ कर और आँखों में आँसू भर कर नादिरशाह के सामने गया और मारकाट बन्द करने के लिए प्रार्थना की। "भारत के बादशाह की प्रार्थना व्यर्थ नहीं की जा सकती", यह कह कर उसने मार-काट बन्द करवा दी। नादिरशाह दिल्ली में कुल ५८ दिन रहा। इतने समय में उसने बादशाह से लगा कर ग़रीब से ग़रीब तक को भी लूटने से न छोड़ा। इस लूट में उसे ९ करोड़ से ३० करोड़ रुपए तक मिलने का अनुमान लगाया जाता है। मयूरासन और कोहनूर हीरा, जो मुग़ल-वंश के वैभव के नमूने थे, नादिरशाह अपने साथ ले गया। लौटने पर सन् १७४७ में उसे किसी ने मार डाला।

(६) राज्य के टुकडे—इस प्रलय से मुग़ल-बादशाही की पीठ टूट गई। सिन्धु नदी के उस पार का भू-भाग नादिरशाह ने अपने अधिकार में ले लिया। राजपूत रजवाड़े पहले ही से स्वतन्त्र हो चुके थे। दक्षिण में सन् १७२४ में निजाम स्वतन्त्र हुआ। उसके साथ ही साथ मराठों के विरोध की जड़ जमी। निजाम की मृत्यु सन् १७४८ में हो जाने पर उसका लड़का नासिर-

जग, उसके बाद उसका भतीजा मुजफ्फरजग, बाद को तीसरा लड़का सलावतजंग गद्दी पर बैठे। सन् १७६१ में निज़ामअली गद्दी पर बैठा। अन्त में अगरेजों का सार्वभौमत्व स्वीकार करके वह सन् १८०३ में मरा। मालवा, गुजरात इत्यादि प्रान्तों पर मराठों का अधिकार हो गया। पजाब प्रान्त को सिक्खों ने ले लिया। बंगाल-प्रान्त में अलीवर्दीख़ाँ सूबेदार था। उसके मरने पर सिराजुद्दौला से सन् १७५७ में वह प्रान्त अंगरेजों ने छीन लिया। अवध की सूबेदारी सआदतखाँ नाम के एक सरदार के हाथ में थी। सआदतखाँ सन् १७३९ में नादिरशाह की चढाई में मारा गया। इसके मारे जाने पर उसका भतीजा सफ़्दरजग अवध का सूबेदार बना। उसने दिल्ली में वज़ीर का भी काम किया। इसी से अवध के नवाबों को "नवाब वजीर" की उपाधि मिली। सन् १७५४ में सफ़्दरजग के मरने पर उसका लड़का शुजाउद्दौला सूबेदार बना। उस समय से अवध का सूबा स्वतन्त्र हुआ। शुजाउद्दौला ने अगरेजों की सहायता लेकर अपना बचाव किया। लेकिन सन् १७७५ में हाफिजरहमतख़ाँ की लड़की ने उसका वध कर डाला। कर्नाटक में अनेक परिवर्त्तन होने के बाद अंगरेजों की मदद से अर्काट का नवाब महम्मदअली स्वतन्त्र हो गया। साराश यह कि मुख्य बादशाही के निर्बल होते ही भिन्न भिन्न प्रान्त अलग और अरक्षित हो गये। इसी से प्रत्येक के साथ अलग और स्वतत्र व्यवहार करके अगरेजों ने सब को धीरे धीरे अपने वश में कर लिया। ब्रिटिश शासन का मुख्य इतिहास ऐसे ही व्यवहारों से भरा पड़ा है। महम्मदशाह सन् १७४८ में मरा।

---

# सातवाँ अध्याय

## मुग़ल-शाही का अन्त

### सन् १७४८-१८१३

१—अहमदशाह और आलमगीर २—शाहआलम
३—अवशिष्ट घराने ४—मुगलों के समय की परिस्थिति
५—मुगल बादशाही के विनाश के कारण

(१) अहमदशाह (१७४८-५४)—महम्मदशाह के मरने पर उसका लड़का अहमदशाह राज-गद्दी पर बैठा। चारों ओर शत्रु उत्पन्न हो चुके थे। उनको वश में रखने का काम वह न कर सका। अफ़ग़ानिस्तान में राज्य करने वाले अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर चढ़ाई करना शुरू किया। यह अहमदशाह अब्दाली पहले नादिरशाह के पास नौकर था। नादिरशाह के मारे जाने पर उसने अफ़ग़ानिस्तान में अपना स्वतंत्र राज्य खड़ा किया। सन् १७४८ में उसने भारत पर पहली चढ़ाई की। दिल्ली के अहमदशाह ने सरहिन्द की लड़ाई में उसे हरा दिया। फिर सन् १७५१ में उसने भारत पर हमला किया। उस समय बादशाह ने लाहौर और मुल्तान के सूबे देकर उसे लौटा दिया। बाद को सफ़दर जंग और निज़ामुल्मुल्क के सम्बन्धी ग़ाज़ीउद्दीन के बीच दिल्ली में परस्पर झगड़ा हुआ। उस झगड़े में ग़ाज़ीउद्दीन ने सन्

१७५४ में बादशाह का वध किया और एक शाहजादे को गद्दी पर बिठा कर उसका नाम आलमगीर रक्खा और शासन का काम अपने हाथों करने लगा। यह द्वितीय आलमगीर के नाम से प्रसिद्ध है। उसका कार्यभार गाजीउद्दीन स्वतंत्रता से करता था। इससे इन दोनों में शीघ्र ही अनबन हो गई। गाजीउद्दीन को मराठों की सहायता मिलती थी। इसी से वे लोग दिल्ली में आकर बस गये। इससे दिल्ली में दो पक्ष हो गये। एक पक्ष म गाजीउद्दीन और मराठे थे। दूसरे पक्ष में रुहेले, अहमदशाह अब्दाली तथा अन्य मुसलमान थे। अब्दाली ने सन् १७५७ में दिल्ली पर फिर हमला करके दिल्ली और मथुरा को लूटा। हजारों आदमियों का वध किया और दिल्ली का शासन नजीबखाँ रुहेले को देकर पजाब प्रान्त में अपने लड़के तैमूरशाह को नियत कर वह वापस गया। अब्दाली के आक्रमणों से बादशाही की रक्षा करने का काम मराठों पर आ गया। अफगान-शासन को न चाहनेवाले गाजीउद्दीन के समान मुसलमानों ने मराठों का साथ दिया। नजीबखाँ व अन्य मुसलमान अब्दाली के पक्ष में थे। मराठों ने पजाब प्रान्त पर अपना अधिकार फिर जमाया। इसी से अब्दाली ने फिर सन् १७५९ में भारत पर चढाई की। अन्त में सन् १६६१ में मराठों ने अब्दाली के साथ पानीपत के मैदान में युद्ध किया। इस युद्ध को पानीपत की तीसरी लड़ाई कहते हैं। इसका विस्तृत विवरण महाराष्ट्र-शासन-काल में दिया गया है। इस लड़ाई के गडबड़ में ही आलमगीर का वध किया गया।

(२) शाहआलम (सन् १७६१-१८०३)—दिल्ली में ऊपर बताई गई घटनाएँ जिस समय हो रही थीं, उसी समय आलमगीर का लड़का शाहजादा अलीगौहर बङ्गाल की ओर भाग गया

था। पिता के वध का समाचार सुनकर वह वहीं शाहआलम की पदवी धारण कर बादशाही पद पर बैठा और बहुत दिनों तक अवध में रहा। अँगरेज़ और मराठे ये दोनों ही उसे अपने-अपने अधीन रखना चाहते थे, लेकिन वह कहता था कि, 'जो मुझे दिल्ली पहुँचावेगा मैं उसी का आश्रय स्वीकार करूँगा'। अत: वह मराठों की मदद से सन् १७७१ में दिल्ली आया। इस विषय का ख़ुलासा हाल महाराष्ट्र-शासन-काल के वर्णन में दिया गया है। उस समय राज्य में अनेक परिवर्तन हुए। रुहेलों की उन्नति हो रही थी। ये रुहेले वास्तव में अफगान थे। इन्होंने बाबर को बड़ी सहायता दी थी। इसी से उसने गङ्गा के उस पार हिमालय की तराई तक का भाग उनके बसने के लिए अलग दे दिया गया था। पहले इस प्रदेश का नाम करहल प्रदेश था। लेकिन रुहेलों के बसने से इस प्रदेश का नाम रुहेलखण्ड पड़ गया। इन्हीं में से एक सरदार नजीबखाँ इधर बीस वर्षों तक दिल्ली के शासन में प्रधान व्यक्ति बन रहा था। मरहठों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकना अपना मुख्य कर्तव्य समझकर उसने बड़े ही प्रयत्न से अहमद शाह अब्दाली को बुलाया। वह सन् १७७० में मरा। उसके बाद उसका लड़का जाबताखाँ बादशाही का काम देखता भालता रहा। जाबताख़ाँ का लड़का गुलाम कादिर बड़ा अत्याचारी निकला। उसने बादशाह पर आक्रमण किया और दिल्ली में भय ङ्कर और अनुचित काम किये। बादशाह को और उसके कुटुम्ब की स्त्रियों और बच्चों तक को चाबुकों से पिटवाया। उस दुष्ट ने बूढ़े और सीधे बादशाह की आँखें तक निकलवा लीं और राजगद्दी की अप्रतिष्ठा की। अंत में बादशाह ने मराठों के सरदार महादजी सिन्धिया की सहायता लेकर गुलाम कादिर का अत्यन्त

क्रूरता के साथ वध किया। उस समय बादशाह मराठों के वश में रहा। सन् १८०३ में मराठों और अंगरेज़ों में युद्ध हुआ। इस युद्ध में दिल्ली शहर मराठों के अधिकार से निकल कर अंगरेज़ों के हाथों में चला गया। अत बादशाह अंगरेज़ों की शरण में रहने लगा। अंगरेज़ों ने उसको वार्षिक वृत्ति बाँध कर उसका सब राज्य अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार मुग़ल बादशाही का अन्त हुआ। सन् १८०६ में शाहआलम ९२ वर्ष की अवस्था में मर गया।

(३) अन्य मुग़ल वंशधर—शाहआलम का लड़का अकबर अंगरेज़ों से वार्षिक वृत्ति लेकर बादशाह के नाम से दिल्ली में रहने लगा। सन् १८३७ में वह मर गया। उसके मरने पर अहमद बहादुरशाह बराबर अंगरेजों से अपनी पेंशन पाता रहा। वह और उसके लड़के सन् १८५७ के सिपाही विद्रोह में अंगरेजों के विरुद्ध हो गये थे। इसलिए दिल्ली पर अंगरेज़ों का अधिकार होने पर उन्होंने शाहजादों को मार डाला और बहादुरशाह को देश निकाले का दंड देकर रंगून भेज दिया। वहाँ वह सन् १८६२ में मर गया। इस तरह पराक्रमी मुगल-वंश का अन्त हुआ। सन् १७०७ से १८५७ तक का ख़ुलासा महाराष्ट्र-शासन-काल और ब्रिटिश-शासन-काल के इतिहास में दिया गया है।

(४) मुगल शासन मे साम्पत्तिक तथा विद्योन्नति - मुगलों के शासन में अनेक यूरोपीयन यात्री भारत में आये। उनके लेख यद्यपि पक्षपातशून्य नहीं कहे जा सकते, तथापि उस समय की बहुत कुछ जानकारी उन लेखों से मिलती है। उस समय व्यापार की मुख्य वस्तुएँ, हर प्रकार के धान्य, कपास, नील, ऊन, रेशम, इत्यादि थीं। रेशम और ऊन के यहाँ

के बने कपड़े बड़े प्रसिद्ध थे। धन-धान्य की बहुतायत होने के कारण लोगों की माँगें यहाँ की चीजों से ही पूरी हो जाती थीं। विदेश के व्यापारी यहाँ से नक़द दाम देकर ही चीज़ें ख़रीद कर अपने देश को ले जाते थे। भारत का धन विदेश ले जाना एक बड़ा अपराध गिना जाता था। टेरी डिलाव्हेल, टवर्नियर, थिवेनाट, फायर इत्यादि यात्रियों का कथन है कि 'उस समय पश्चिमी राष्ट्रों की अपेक्षा भारत की उन्नति और वैभव कहीं अधिक अंशों में दिखलाई पड़ता।' टेरी का कथन है कि 'भारत के नौकर बड़े ही ईमानदार थे। वे अढाई रुपये मासिक पर काम करते थे। मुग़लों की सत्ता अत्यधिक होने से राज्य में बदइन्तज़ामी अवश्य थी। फाँसी पर लटकाना, हाथी के पैर से कुचलवा देना, सूली पर चढ़ाना, जङ्गली पशुओं के पिंजड़े में डाल देना इत्यादि दण्ड विधियाँ उस समय यहाँ प्रचलित थीं, तथापि सामान्य दृष्टि से राज्य का प्रबन्ध अच्छा ही था।' टवर्नियर का कहना है कि 'भारत मे यात्रा करना जितना सुलभ और सुखद है उतना सुलभ और सुखद योरूप में भी नहीं है।' मुग़लों के करों की आमदनी मुख्यत ज़मीन के लगान और ज़कात से मिलती थी। बाढ आने या सूखा पड जाने पर यदि फसलें मारी जातीं तो किसानो को लगान की माफी कर दी जाती। इसके अलावा बादशाह की आमदनी के अन्य भी अनेक साधन थे। जमींदार या इनामदार के मरने पर उसके उत्तराधिकारी अपना अधिकार पाने पर बादशाह को नज़र इत्यादि देते थे। जो व्यक्ति बादशाह से मिलने जाता था वह बादशाह को नज़र अवश्य देता था। इन बातो से बादशाह की आमदनी काफ़ी रहती थी।

न्याय-पद्धति—मुगल-शासन मे न्याय अधिकांशतया अच्छा ही होता था। मुसलमानों का न्याय मुसलमानी कानूनों से और हिन्दुओं का पहले की स्मृतियों के अनुसार न्याय किया जाता था। सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था सदा प्रजा के हाथों में रही। सरकार अपना कर लेने के अलावा प्रजा की अन्य बातों में बहुत कम हस्तक्षेप करती थी। जहाँगीर की "इन्साफ की साँकल" तो घर घर प्रसिद्ध थी।

ग्रन्थ-संग्रह—संस्कृत व अन्य भाषाओं के व्याकरण, अलंकार, वेदान्त, धर्म-शास्त्र इत्यादि विषयों पर उस समय अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ, गंगेश इत्यादि नैयायिक, जगन्नाथ पंडितराज, कुवलयानंदकार अप्पय्या दीक्षित, काव्य-प्रकाश-कर्ता मम्मट, गीत गोविन्दकार जयदेव तथा इनके अलावा अनेक संस्कृत कवि मुस्लिम शासन के समय मे हुए। यद्यपि इन पण्डितों का उदय हुआ था, तथापि संस्कृत की अवनति हो चली थी। पहले की प्राकृत भाषा का प्रचार उठ जाने से आजकल की मराठी, हिन्दी, बँगला, गुजराती इत्यादि भाषाओं का प्रचार सन् ११०० से शुरू हो गया था। पहले की वास्तविक मुसलमानी भाषाएँ तीन थीं—अरबी, फारसी, और तुर्की। भारत में आनेवाले अनेक मुसलमान तुर्की भाषा बोलते थे। इस देश में आने पर हिन्दी भाषा से उन्हें परिचय हो गया। इससे "उर्दू" अर्थात् (छावनी तुर्की शब्द के अनुसार) मुसलमानों की छावनी की नवीन भाषा बोल-चाल में आने लगी। वही आजकल की उर्दू की माता है। सरकारी काम में इसका और फारसी का ही उपयोग किया जाता था।

अंग्रेज़ी शब्द होर्ड ( Horde = फौज का समूह ) उर्दू शब्द का ही रूपान्तर है। हिन्दुओं ने भी उर्दू भाषा में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

लोकोपयोगी कार्य—( १ ) डाक भेजने का प्रबन्ध था। इसके लिए डाकवाले व सवार रहते थे। ( २ ) सूरत, मुसलीपट्टन इत्यादि व्यापार के बड़े बड़े बन्दर थे। राज्य भर में बड़े बड़े मार्ग थे, जिन पर गाड़ियाँ चलती थीं। राह में धर्मशालाएँ, कुएँ, तालाब व कितने ही अन्नसत्र थे। मुख्य मार्ग काबुल, लाहौर, आगरा इलाहाबाद, ढाका तक चला गया था। आगरे से एक मार्ग चल कर अहमदाबाद-सूरत तक था। दूसरा मार्ग आगरे से बुरहानपुर, गोलकुंडा, मुसलीपट्टन तक था। सूरत से बुरहानपुर तक एक और मार्ग था। ( ३ ) मुगलों के समय के बने महल, मसजिदें, इत्यादि इमारतें आज भी निर्माण-कला के नमूने गिने जाते हैं। आगरे में "ताजमहल", और बीजापुर का "गोल गुम्बज" भारत में ही नहीं, बल्कि सारे संसार में सुन्दरता के नमूने समझे जाते हैं।

सामाजिक बातें—( १ ) सतियों के मेले अधिक होते थे। ( २ ) रईस लोगों के मकान बड़े ऊँचे बनते थे और इनमें नक़्क़ाशी का काम ख़ूब रहता था। ( ३ ) विशेष साहस का कार्य करनेवाले को सरकार की ओर से इनाम अथवा पदवी दी जाने की व्यवस्था थी। ( ४ ) कला कौशल की इतनी उन्नति हो रही थी कि विदेशी यात्री उन्हें नमूने की चीज समझ अपने देश में ले जाते थे। ( ५ ) देश में अपार सम्पत्ति थी। ( ६ ) पोलो नामक खेल, जो आजकल खेला जाता है, वास्तव में मुगलों के समय का खेल है। यह खेल मुगल-बादशाहों के महलों में बेगमें खेलती थीं।

मुगल-बादशाही के पतन के कारण—( १ ) बादशाह

के मरने पर तख़्त पर बैठने के सम्बन्ध में कोई नियम न होने से घरेलू झगड़ों की उत्पत्ति। ( २ ) नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली इत्यादि विदेशियों के भारत पर आक्रमण। ( ३ ) मराठे, सिक्ख, रुहेले, जाट, राजपूत इत्यादि लोगों द्वारा स्वातंत्र्य पाने का प्रयत्न। ( ४ ) दक्षिण में मुसलमानी राज्यों का मुगलो द्वारा विनाश होना। ( ५ ) औरंगजेब का अदूरदर्शिता से शासन करना और उसके बाद के शासकों की दुर्बलता। ( ६ ) पश्चिमी हथियार और खासकर पश्चिमी ढंग की फौजी कवायद और तोपख़ाने के ज्ञानोपार्जन की ओर न ध्यान देना। ऐसी अनेक बातें हैं जिनका उल्लेख यथास्थान किया गया है, जिनके कारण मुगलों का अंत हुआ।

# तृतीय भाग

## महाराष्ट्र-शासन-काल

ई० स० १६६४-१८१८

## पहला अध्याय

### स्वराज्य-स्थापन की शक्ति

१—महाराष्ट्र का पूर्व-वृत्तान्त  २—बहमनी राज्य की आन्तरिक अवस्था
३—महाराष्ट्रों के उदय के कारण

(१) **महाराष्ट्रों का पूर्व-वृत्तान्त**—महाराष्ट्रों का क्रमबद्ध प्राचीन इतिहास आज भी नहीं मिलता। प्राचीन काल के ताम्रपत्र, शिलालेख इत्यादि साधनों से कुछ विद्वानों ने प्राचीन राजवंशों की थोड़ी बहुत छानबीन की है। इस संग्रह से महाराष्ट्रों की पूर्व स्थिति थोड़ी-बहुत जानी जा सकती है। पहले महाराष्ट्र-देश का नाम "दक्षिणापथ" व "दक्खन" था। "दक्खन" शब्द "दक्षिण" का अपभ्रंश है। नर्मदा-नदी के दक्षिण भूप्रदेश को यही नाम दिया गया है। लेकिन ताप्ती और तुङ्गभद्रा के बीच के भूप्रदेश को "महाराष्ट्र"

कहते थे। ईसवी सन् के पूर्व इस प्रदेश में "राष्ट्रिक" या "रट्ठे" नाम के लोग बसते थे। वे आगे चल कर बड़े प्रबल हुए। इसलिए उन्होंने अपना नाम "महाराष्ट्रिक" अथवा "महारट्ठे" रक्खा। "रट्ठे" शब्द "राष्ट्रिक" शब्द का अपभ्रंश है। उनके नाम पर इस देश का भी नाम "महाराष्ट्र" पड़ा। लोनावला—स्थान के समीप "भाजे" व "कार्ले" की जो गुफाएँ हैं, उनमें खुदे हुए शिलालेखों में "महारट्ठी" अर्थात् "मराठा" शब्द का प्रयोग इस देश के लोगों के लिए किया गया है।

ई० स० पू० ७३ वर्ष से सन् २१८ तक इस देश पर जिन राजाओं का शासन था उन्हें आन्ध्र भृत्य शातवाहन या शालिवाहन कहते हैं। इस बीच में दस-बीस वर्ष तक "शक" जाति (यवन) ने भी इस देश पर शासन किया था। इसका वृत्तान्त विष्णु और मत्स्य पुराणों में मिलता है। शकों ने अपना नया संवत् चलाया था। इसी संवत् को बाद को शालिवाहनों ने भी स्वीकार किया था। इसलिए इस संवत् का नाम "शालिवाहन-शक" पड़ा। शक लोग हार कर देश से निकल भागे, लेकिन उनका चलाया संवत् आज भी यहाँ माना जाता है। शालिवाहनों के शासन-काल में महाराष्ट्र में बौद्धधर्म का प्रचार अधिक था। उस समय के राजा, धनिक, व्यापारी लोग बौद्ध भिक्षुओं के लिए वन में गुफाएँ इत्यादि तैयार कराते थे। वे गुफाएँ आज कल "भाजे", "कार्ले" इत्यादि स्थानों में अब तक बनी हुई हैं। इन गुफाओं में भिक्षु लोग अर्थात् बौद्ध धर्मावलम्बी साधु भिक्षा माँग कर अपना जीवन व्यतीत करके वर्षा के दिनों में

आकर रहते थे। इन बौद्ध-भिक्षुओं की भाति ब्राह्मणों को भी दान देने की प्रथा चल पड़ी। महाराष्ट्रवालों का विदेशों के साथ बहुत व्यापार होता था। विदेशों को माल भेजने के लिए उस समय भड़ोंच बहुत बड़ा बंदर था। शालिवाहनों की राजधानी पैठन-नगर थी। उस समय पैठन-नगर उन्नति पर था। प्रजा सुखी और धन-धान्य से पूर्ण थी।

सन् २१८ से ६०० तक का ऐतिहासिक वृत्तान्त अनिश्चित है। इसके बाद ६०० से ७४७ तक चालुक्यवंश का शासन रहा। इन चालुक्यों का शासन उत्तर में नर्मदा तक और दक्षिण में ठेठ कन्या कुमारी तक था। बीजापुर-ज़िले मे बादामी नामक एक स्थान है। इसका पहला नाम बातापी या बातापीपुर था। यहीं चालुक्यों की राजधानी थी। इसी वंश के राजा द्वितीय पुलकेशी ने कन्नौज के राजा श्रीहर्ष को हराया था। हुएनसेङ्ग नाम के प्रसिद्ध चीनी यात्री ने इस राजा से भेंट की थी। इस चीनी यात्री ने जो वर्णन तत्कालीन महाराष्ट्र-देश का किया है उससे पता लगता है कि महाराष्ट्र उस समय पूरी उन्नति कर चुका था। पुलकेशी के भेजे हुए राजदूत ईरान के शाहंशाह के दरबार में रहते थे। उसके नक्काशी के चित्र अजंता की गुफा में अब भी देखे जा सकते हैं। चालुक्यों के समय में बौद्ध-धर्म की अवनति हो चली थी और वैदिक तथा जैन-धर्म की उन्नति हो रही थी। चालुक्यों का अन्त होने पर राष्ट्रकूटों का शासन महाराष्ट्र-देश मे प्रारम्भ हुआ। यही महाराष्ट्रों का पहला राजवंश है। इस राजवंश का शासन सन् ७४८ से ९२३ तक रहा। इसकी राजधानी का नाम मान्यखेट था। आजकल यह स्थान निजाम-राज्य में "मालखेड़" के नाम से

प्रसिद्ध है। येरूल में जो बड़ी सुन्दर गुफायें हैं वे इन्हीं के शासन-काल में बनी थीं। राष्ट्रकूट राजाओं ने विद्या के प्रचार में अच्छा उत्साह प्रदान किया था। ये राज बड़े वैभवशाली थे।

सन् ९७३ से सन् ११८९ तक चालुक्य फिर महाराष्ट्रों को अपने अधिकार में किये रहे। चालुक्य-राजा "उत्तर-चालुक्य" वंश के कहे गये। इनकी राजधानी उस स्थान पर थी जहाँ आज-कल कल्याण बसा हुआ है। यह कल्याण शहर निजाम-राज्य में है। "मिताक्षरा" का रचयिता विज्ञानेश्वर ही चालुक्यराज विक्रमादित्य का मन्त्री था। इस वंश के शासन का अन्त होने पर महाराष्ट्र में यादव वंश का शासन हुआ। इस वंश में "सिंघण" नाम का एक परम पराक्रमी राजा हुआ। इसने १२२० से १२४७ तक शासन किया। इसने मालवा, गुजरात दक्षिण महाराष्ट्र इत्यादि प्रान्त जीत कर उन्हें अपने राज्य में मिला लिया। सतारा जिले में "शिंगणापुर" नाम का एक गाँव है। यह गाँव इसी राजा का बसाया हुआ है। उसके दरबार में अनेक ज्योतिषी एव पण्डित उपस्थित रहते थे। सिंघण का पौत्र रामचन्द्र या रामदेव देवगिरि में जाकर शासन करने लगा। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने इसे हरा दिया। हार जाने पर रामदेव ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली। रामदेव के मरने पर उसके राज्य को सन् १३१८ में मुसल्मानों ने जीत लिया। हेमाद्रि नाम का एक विद्वान् पुरुष रामदेव के दरबार में प्रधान था। उसे लोग हेमाडपन्त भी कहते हैं। इस विद्वान् की चलाई मोडी लिपि और हेमाडपन्ती-पद्धति के भवन अब भी प्रसिद्ध हैं। "चतुर्वर्ग चिन्तामणि" नाम का संस्कृत में धर्मशास्त्र का जो ग्रन्थ है उसे पंडित हेमाद्रि ने ही रचा था। इस ग्रन्थ को

पंडित लोग प्रामाणिक मानते हैं। सुप्रसिद्ध व्याकरणकार वोप-देव हेमाद्रि के ही पास रहा करता था। रामदेव के शासन काल में ही प्रसिद्ध साधु ज्ञानेश्वर हुआ, जिसने महाराष्ट्र भाषा का पहला बृहद् ग्रन्थ रचा। यादवों के समय में महाराष्ट्र भाषा की अच्छी उन्नति हुई।

(२) वहमनी या बहामनी शासन और उसकी आन्तरिक अवस्था—सन् १३१८ से १३४७ तक महाराष्ट्र-देश दिल्ली के सुल्तान के अधीन रहा। सन् १३४७ में वहामनी नामक एक स्वतन्त्र मुस्लिम-शासन इस देश में स्थापित हुआ। इस शासन में सम्पूर्ण महाराष्ट्र-देश शामिल था। इस शासन का कुछ वृत्तान्त हम पहले दे चुके हैं। दक्षिण में तुंगभद्रा-नदी के किनारे इन्हीं दिनों एक प्रवल हिन्दू राज्य की स्थापना हुई थी। इस राज्य का नाम "विजयनगर" राज्य था। इस तरह दोनो की स्थापना हो चुकने पर दो सौ वर्षों तक इन दोनो राज्यों में वरावर पारस्परिक झगड़े चलते रहे। धीरे धीरे वहामनी राज्य की सीमा उत्तर में नर्मदा तक और दक्षिण मे तुङ्गभद्रा तक हो गई। इसमें कोंकण भी वहामनी शासन के अधीन हो गया। उस समय वहामनी शासन की विशालता के साथ साथ उसके ऐश्वर्य और वल की इतनी वृद्धि हुई कि उसकी वरावरी दिल्ली के साथ होने लगी। यही नहीं, उस समय वहामनी राज्य दिल्ली से भी कई अंशों में चढ़ा-बढ़ा था। किन्तु बहामनी सुलतानो ने अपने अधीनस्थ सूवेदारो को अनेक ऐसे अधिकार दे दिये जिससे वे स्वतन्त्र हो गये। उसी समय वावर ने दिल्ली में मुग़ल शासन जमाया। पर इधर महाराष्ट्र-देश में वहामनी राज्य टूट कर पाँच भिन्न भिन्न भागों में बँट गया। इनमें से वीजापुर की

आदिलशाही, अहमदनगर की निजामशाही व गोलकुंडा या गोवलकोंड्या की कुतुबशाही का सम्बन्ध महाराष्ट्र से रहा। शिवाजी के पूर्वज व अन्य महाराष्ट्र सरदार इन तीनों राज्यों में अधिक प्रवल थे। इन्हीं सरदारों को आगे चल कर शिवाजी ने एकत्र कर महाराष्ट्र शासन की जड जमाई थी। इन तीनों राज्यों में अनेक विदेशी व्यापारी आकर मालामाल हुए। इतना होते हुए भी यादवकालीन महाराष्ट्रराजवंशधर, जो इन राज्यों में बसते थे प्रवल थे और मुसलमानी फौजों में इन्हीं की भरती अधिक थी।

(३) महाराष्ट्रों की उन्नति के कारण—(१) यद्यपि मुसल्मानों ने भारत को जीत लिया था, तथापि मुसलमानों के मूल-स्वरूप में विकार पैदा हो गया था। दक्षिण में तो वे बहुत बदल गये थे। हिन्दू स्त्रियों से विवाह होने और हिन्दुओं से मिलने पर जो मुस्लिम प्रजा हुई उसके शरीर में विदेशी मुसलमानों का सा तेज न रह गया। (२) महाराष्ट्र जैसे पहाड़ी और ऊबड़ खाबड़ देश में मुसलमान लोग अच्छी तरह अपना पैर न जमा सके। (३) गाँववाले अपनी पद्धति के अनुसार अपने अपने काम में अपनी सीमा के भीतर बहुत कुछ स्वतंत्र थे। (४) उत्तर-भारत में जैसा मुस्लिम शासन जमा, वैसी पक्की नींव महाराष्ट्र-देश में मुस्लिम शासन की न जम पाई। फौज, व्यापार इत्यादि सभी बातों में मुसलमानों को महाराष्ट्रों का सहारा लेना पड़ता था। अनेक महाराष्ट्र सरदार और दरबारियों की उन्नति मुस्लिम शासन-काल में हुई। कबर सेन नामक एक ब्राह्मण विद्वान निजामशाही में प्रधान मन्त्री था। इसी प्रकार मुरार जगदेव

पंडित लोग प्रामाणिक मानते हैं। सुप्रसिद्ध व्याकरणकार बोप देव हेमाद्रि के ही पास रहा करता था। रामदेव के शासन-काल में ही प्रसिद्ध साधु ज्ञानेश्वर हुआ, जिसने महाराष्ट्र भाषा का पहला बृहद् ग्रन्थ रचा। यादवों के समय में महाराष्ट्र भाषा की अच्छी उन्नति हुई।

(२) बहमनी या बहामनी शासन और उसकी आन्तरिक अवस्था—सन् १३१८ से १३४७ तक महाराष्ट्र-देश दिल्ली के सुल्तान के अधीन रहा। सन् १३४७ में बहामनी नामक एक स्वतन्त्र मुस्लिम-शासन इस देश में स्थापित हुआ। इस शासन में सम्पूर्ण महाराष्ट्र-देश शामिल था। इस शासन का कुछ वृत्तान्त हम पहले दे चुके हैं। दक्षिण में तुंगभद्रा-नदी के किनारे इन्हीं दिनो एक प्रबल हिन्दू-राज्य की स्थापना हुई थी। इस राज्य का नाम "विजयनगर" राज्य था। इस तरह दोनों की स्थापना हो चुकने पर दो सौ वर्षों तक इन दोनो राज्यों में बराबर पारस्परिक झगड़े चलते रहे। धीरे धीरे बहामनी राज्य की सीमा उत्तर मे नर्मदा तक और दक्षिण में तुङ्गभद्रा तक हो गई। इसमें कोकण भी बहामनी शासन के अधीन हो गया। उस समय बहामनी शासन की विशालता के साथ साथ उसके ऐश्वर्य और बल की इतनी वृद्धि हुई कि उसकी बराबरी दिल्ली के साथ होने लगी। यही नहीं, उस समय बहामनी राज्य दिल्ली से भी कई अंशों में चढा-बढा था। किन्तु बहामनी सुलतानों ने अपने अधीनस्थ सूबेदारो को अनेक ऐसे अधिकार दे दिये जिससे वे स्वतन्त्र हो गये। उसी समय बाबर ने दिल्ली में मुग़ल शासन जमाया। पर इधर महाराष्ट्र-देश में बहामनी राज्य टूट कर पाँच भिन्न भिन्न भागों में बँट गया। इनमें से बीजापुर की

आदिलशाही, अहमदनगर की निजामशाही व गोलकुंडा या गोवलकोंड्या की कुतुबशाही का सम्बन्ध महाराष्ट्र से रहा। शिवाजी के पूर्वज व अन्य महाराष्ट्र सरदार इन तीनों राज्यों में अधिक प्रबल थे। इन्हीं सरदारों को आगे चल कर शिवाजी ने एकत्र कर महाराष्ट्र-शासन की जड जमाई थी। इन तीनों राज्यों में अनेक विदेशी व्यापारी आकर मालामाल हुए। इतना होते हुए भी यादवकालीन महाराष्ट्रराजवंशधर, जो इन राज्यों में बसते थे प्रबल थे और मुसलमानी फौजों में इन्हीं की भरती अधिक थी।

(३) महाराष्ट्रों की उन्नति के कारण—(१) यद्यपि मुसलमानों ने भारत को जीत लिया था, तथापि मुसलमानों के मूल-स्वरूप में विकार पदा हो गया था। दक्षिण में तो वे बहुत बदल गये थे। हिन्दू स्त्रियों से विवाह होने और हिन्दुओं से मिलने पर जो मुस्लिम प्रजा हुई उसके शरीर में विदेशी मुसलमानों का सा तेज न रह गया। (२) महाराष्ट्र जैसे पहाडी और ऊबड़-खाबड़ देश में मुसलमान लोग अच्छी तरह अपना पर न जमा सके। (३) गाँववाले अपनी पद्धति के अनुसार अपने अपने काम में अपनी सीमा के भीतर बहुत कुछ स्वतंत्र थे। (४) उत्तर-भारत में जैसा मुस्लिम शासन जमा, वैसी पक्की नींव महाराष्ट्र-देश में मुस्लिम शासन की न जम पाई। फौज, व्यापार इत्यादि सभी बातों में मुसलमानों को महाराष्ट्रों का सहारा लेना पड़ता था। अनेक महाराष्ट्र सरदार और दरबारियों की उन्नति मुस्लिम शासन-काल में हुई। कवर सेन नामक एक ब्राह्मण विद्वान निजामशाही में प्रधान मन्त्री था। इसी प्रकार मुरार जगदेव

नाम का एक चतुर गृहस्थ आदिलशाही राज्य में था। मदन पंत (मादण्णा) व एकनाथ पंत (आकण्णा) नाम के दो दरबारी कुतबशाही राज्य में विख्यात थे। इसी प्रकार कदमराव, रामराव जगदेव राव, लखू जी, जाधव राव इत्यादि महाराष्ट्र सरदार फौजों में काम करते थे। जावली के मोरे, कोंकण के शिर्के, फालटन के निंबालकर, खटाव व वड़ी के देशमुख, घाटगे, उसी प्रकार घोरपड़े, माने, डफले गुजर, भोंसले इत्यादि महाराष्ट्र सरदारों की भर्ती मुसलमानी फौजों में होती थी। (५) इन कारणों के अतिरिक्त महाराष्ट्र के उदय होने का एक कारण यह भी था कि दो सौ वर्षों में भारत के अनेक प्रसिद्ध साधु-संतों का उदय इसी देश में हुआ। इनमें मुकुन्दराव, ज्ञानदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास, इत्यादि की मंडलियों ने अपने पवित्र व्यवहार और प्रेम-पूर्ण उपदेशों से महाराष्ट्र में स्वदेश, स्वभाषा, व स्वधर्म के लिए लोगों के चित्त में अभिमान उत्पन्न किया और संस्कृत भाषा में लिखे ग्रन्थों को देशी भाषा में लिख कर उनका ज्ञान लोगों को कराया। मुसलमानो की परस्पर की कलह, उनके शासन की दुरवस्था, हिन्दुओं के साथ छल करने से उनमें उत्पन्न होनेवाला आवेश और विशेष कर इन संत मडलियो द्वारा किये गये धर्म-सुधार के बल पर अभिमान इत्यादि बातों और उनमें शिवाजी जैसे योग्य नेता की सहायता ने उनका सगठन किया और इसी से उनके स्वतत्र राज्य-की स्थापना हुई।

---

# दूसरा अध्याय

## शिवाजी का पूर्व-चरित

### ई० स० १६२७ १६६२

१—शाहजी भोसले
२—शिवाजी का बाल्यकाल
३—राज्य-स्थापन का मूल
४—बीजापुरवालों से पहला युद्ध

(१) शाहजी भोसले ( सन् १५९४ १६६४ )—भोंसले क्षत्रिय हैं। वे अपनी उत्पत्ति उदयपुर के शिसौदियों से मानते हैं। सेकड़ों वर्षो से वे पूना तथा उसके समीप हिंगणी, बेरडी, देवल-गाँव इत्यादि स्थानों में पटेल या सरदेशमुखी का काम करके अपना जीवन निर्वाह करते थे। बाद को उन्होंने दौलताबाद के समीप वेरूल गाँव की पटेली ले ली। सरदेशमुख वह व्यक्ति कहलाता है जो सरकारी कर वसूल कर १० फी सैकड़ा खुद ले लेता है। उस समय पटेल गाँव में राजा का सा सम्मान पाता था। उसी की सत्ता गाँववाले मानते थे। भोंसले-वंश में सम्भाजी नाम के एक व्यक्ति थे। उनका एक लड़का सन् १५३३ में पैदा हुआ। इसका नाम बाबाजी भोंसले था। बाबाजी के दो पुत्र—मालोजी ( जन्म सन् १५५० ) विठोजी ( जन्म सन् १५५३ ) थे। ये दोनों भाई निजामशाही दरबार के प्रधान सरदार लखूजी यादवराव के यहाँ नौकर हो गये। मालोजी का विवाह फाल-

और जिजाबाई में अधिक नहीं पटी। उसके दो बालक हुए। बड़े का नाम सम्भाजी था। इसका जन्म सन् १६२३ में हुआ था। छोटे का नाम शिवाजी था। उसका जन्म शिवनेरी-क़िले में वैशाख शुक्ल २ शनिवार शक १५४९ ता० ७ अप्रैल सन् १६२७ के दिन हुआ ( जेंठ शकावली के प्रमाणानुसार उनकी जन्म तिथि शुक्रवार फाल्गुन वदी ३ शके १५५१ ता० १९ फरवरी १६३० है)। शाहजी ने बाद को अपना दूसरा विवाह किया। इस स्त्री का नाम तुकाबाई था। यह मोहिता की कन्या थी। इस स्त्री से व्यंकोजी नाम का पुत्र हुआ। बीजापुर की नौकरी में आकर शाहजी ने कर्नाटक मे एक नया राज्य प्राप्त किया। यह तंजौर-राज्य उनके पुत्र व्यंकोजी को मिला। पूना और सूपा की दो जागीरें और शिवनेरी व चाकन के दो क़िले और उनके आस पास की भूमि की मालगुज़ारी निज़ामशाह से शाहजी को मिली थी। उस निजामशाही के नष्ट होने पर बीजापुर के अधिकार में वह सब भूमि चली गई। वहाँ रहने पर भी वह शाहजी के ही अधिकार में रही। इस जागीर में शाहजी के लड़के शिवाजी और उसकी माता रहने लगीं।

( २ ) शिवाजी का बाल्यकाल—जिस समय शिवाजी का जन्म हुआ, उस समय महाराष्ट्र देश में बड़ी खलबली मची हुई थी। माता का लाड़-प्यार इस बालक पर विशेष था। शाहजी के प्रबन्धक दादाजी कोंडदेव और शिवाजी की माता जिजाबाई दोनों ने मिलकर शिवाजी को बचपन से अच्छी शिक्षा दी। इन दोनों ही व्यक्तियों ने राज्यों की उलट-पलट देखी थी। इसलिए जिजाबाई ने अपने पूर्वजों के शौर्य के कृत्य और उनके वैभव की बातें



श्री शिवाजी महाराज

समर्थ गुरु रामदास



वघारले

शिवाजी को सुना सुना कर उसके चित्त में शौर्य और साहस के कार्य करने की शिक्षा का प्रभाव पूरी तरह से जमा दिया। इसी प्रकार शिवाजी को अक्षर बोध, हिसाब किताब, पुराण की कथायें इत्यादि दादाजी कोंडदेव ने सिखाई। जिजाबाई ने उसे देश की परिस्थिति का ज्ञान करा दिया। शिवाजी की मा स्वभाव से ही बड़ी अभिमानिनी और महत्त्वाकाक्षिणी स्त्री थी। दूसरे की कही हुई बातों का बड़ी जल्दी प्रभाव उस पर पड़ता था। थोड़ी सी बात को वह बहुत बुरा मान जाती थी। उसका सारा जीवन संकट में बीता था। इससे उसमें साहस अधिक था। अन्य किसी का आधार न होने के कारण उसका सर्वस्व केवल शिवाजी ही था। अर्थात् माता-पिता के उदाहरण को देख बाल्यकाल से ही पराक्रम दिखाने की स्फूर्त्ति शिवाजी में उत्पन्न हो गई थी।

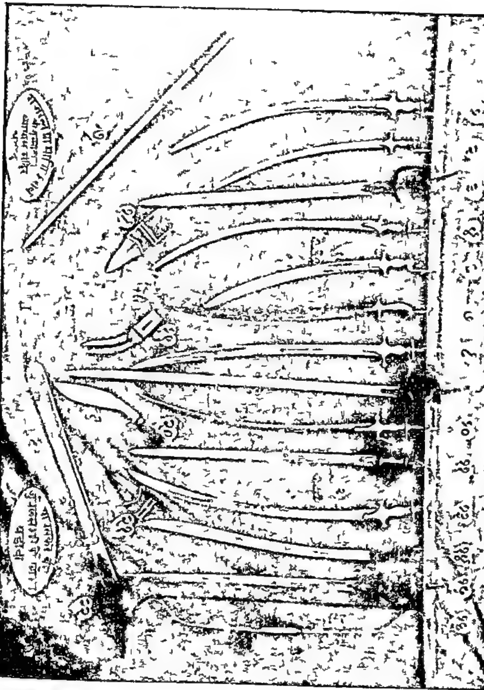
दादाजी कोंडदेव ने पूना में महल बना कर शिवाजी के रहने का प्रबन्ध कर दिया था। उसने शिवाजी को गाँव की पचायत और प्रबन्ध का कार्य भी सिखाया और उसमें बैठ कर उसके भूमि-सम्बन्धी झगडे भी उससे मिटवाये। जमीन की पहचान, मालगुजारी की वसूलयाबी, हिसाब किताब रखने का काम, खेती को प्रोत्साहन करने तथा लोगों के झगडे मिटाकर उनकी स्थिति सुधारने इत्यादि का कार्य दादाजी के साथ साथ रह कर शिवाजी ने गाँव गाँव फिर कर किया। घोड़े पर सवारी करना, निशाना मारना, लाठी चलाना इत्यादि वीरोचित कार्य भी दादाजी ने शिवाजी को सिखाये। जागीर की रक्षा के लिए दादाजी ने एक छोटी सी फौज रक्खी। जगली जानवरों को मार खेतों की रक्षा की। लगान की माफी देकर उन्होंने खेत सुधारने के लिए खेतिहरों को समुत्साहित किया। शिवाजी ने आगे चल कर जो प्रतिभा अपने राज्य प्रबन्ध मे दिखाई थी उस

प्रतिभा की जड़ इसी समय मज़बूत की गई थी। जैसे जैसे शिवाजी की अवस्था बढ़ने लगी, वैसे ही वैसे वह अधिक पराक्रम के कार्य करने लगा। गाँवों में जाकर अपने समान साहसी व्यक्तियों को एकत्र करके वन्य पशुओं का शिकार करता पहाड़ी मार्गों को देखता, किलों के गुप्त मार्गों की देख-भाल करता। कौन धनी है, कौन शूर है, किस स्थान में कैसी परिस्थिति है, इत्यादि सब बातों को बड़ी सावधानी से मनन करता। सह्याद्रि (पश्चिमी घाट) के पूर्वी ढालू देश का नाम मावल है। यह मावल देश १२ भागों में बँटा है। यहाँ के लोग बड़े विश्वस्त, सुहृद् और अपनी जान पर खेल कर अपने सौहार्द की रक्षा करना धर्म मानते थे। शिवाजी ने उनको अपने पक्ष में किया। कान्होजी जेढे, बाजी सर्जेराव, (कान्होजी के पुत्र) बाजी पासलकर (कान्होजी के श्वसुर), येसाजी कङ्क, तानाजो मालुसुरे इत्यादि बाल्यकाल से ही शिवाजी के अभिन्न मित्र बन गये थे। इनके सिवा दादाजी की देख-भाल में जागीर का काम करनेवाले श्राबाजी सोनदेव, रघुनाथ बल्लाल, कोरडे, बालकृष्णपत, मुजुमदार और गोमाजी नाईक, पानसबल, इत्यादि जिजाबाई के पिता के घर की ओरवाले होकर भी ये सभी शिवाजी की सहायता करने लगे। शिवाजी ने अपने विलक्षण साहस और पराक्रम के द्वारा लोगों पर अपनी धाक जमा दी। सन् १६४७ में दादाजी कोंडदेव के मरने पर जागीर की व्यवस्था शिवाजी स्वत करने लगा, उसके इस उद्योग में गुप्त रूप से उसका पिता शाहजी भी सहायता देता था।

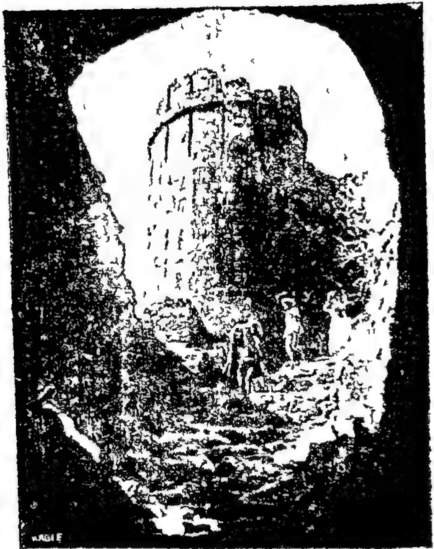
(३) राज्य-स्थापन का प्रारम्भ—शिवाजी ने पहले जागीर का प्रबन्ध किया। आसपास के अनेक किलेदारों को अपने वश में करके चारों ओर के मराठे सरदारों को दबा लिया। (१) सन् १६४६ के लगभग शिवाजी ने पूना के समीप "तोरण" नाम का किला दबा लिया। वहाँ उसे प्रचुर धन मिला। (२) मोरो पंत पिङ्गले की सहायता से समीप ही "राजगढ" नाम का किला बनवाया। (३) शाहजी की दूसरी स्त्री का भाई बाजी मोहिते सूपा में रहता था। वह शिवाजी को नहीं मानता था। अत शिवाजी ने एक बार आधी रात में छापा मार कर उसे कैद किया, और बाद को उसे कैद में ही शाहजी के पास भेज दिया। (४) चाकन के किलेदार फिरङ्गोजी नरसाला को पकड कर किले पर अपना अधिकार जमाया। (५) कोडाणा किले में एक मुसलमान किलेदार था, उससे किला छीन कर उसका नाम सिंहगढ रक्खा। (६) पुरन्धर के क़िले में एक ब्राह्मण किलेदार था। उस समय वहाँ कुछ झगड़ा चल रहा था। उसका निपटारा करने के लिए वह वहाँ गया। उसने किलेदार को कैद करके उस को भी अपने अधिकार में कर लिया। (७) कल्याण प्रान्त में मौलाना अहमद सूबेदार था। उसे आबाजी सोनदेव के द्वारा पकड़ कर उस प्रान्त पर अपना अधिकार जमाया और वहाँ के खजाने को भी ले लिया। (८) कोंकण मे पश्चिम तट पर जजीरा में सीदी नाम का व्यक्ति बीजापुर की ओर से जहाजों का मुखिया था। ये सीदी लोग अबीसीनियाँ के रहनेवाले थे, इसलिए ये हबशी कहलाते थे। अरब-समुद्र पर अरब-लोग ही व्यापार करते थे। इससे पुर्तगीज व यूरोपीय व्यापा-

पास ही प्रतापगढ़ का किला बनाया। इसके बाद शिवाजी ने हिरडस के देशमुखों से रोहिडा का क़िला छीना। इससे नाराज़ होकर आदिलशाह ने अफजलखाँ नामक एक प्रबल सरदार को शिवाजी के साथ युद्ध करने के लिए भेजा। अफ़ज़लख़ाँ सह्याद्रि-प्रान्त में १० वर्ष तक शासन कर चुका था। इसलिए उसे उस प्रान्त की राई-रत्ती की ख़बर थी। इस समय शिवाजी प्रतापगढ में था। अफजलख़ाँ का सामना करना उसके वश की बात नहीं थी। इसलिए पताजी गोपीनाथ नाम के अपने एक वकील को भेजकर खाँ साहब से कहला भेजा कि मैं आपसे मिल कर मामले को तय करने के लिए तैयार हूँ। पर भेंट एकान्त में होनी चाहिए। इस सन्देश के अनुसार प्रतापगढ के नीचे एक सुन्दर ख़ीमे में दोनों की भेंट हुई। भेंट होने के समय अफ़ज़लख़ाँ ने शिवाजी को गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया। इस पर शिवाजी ने अपने हाथों में पहने हुए बघनखों से अफजलखाँ का पेट चीर डाला और वहीं उसे मार डाला। अफ़ज़लख़ाँ की फ़ौज का पीछा करके उसे तितर-बितर कर दिया (ता० २४ ११-१६५९)।

अफजलख़ाँ का वध होने से बीजापुर के शाह का पक्ष बहुत दुर्बल हो गया। शिवाजी के वैभव की वृद्धि हुई और उसका नाम भी प्रसिद्ध हो गया। अगले वर्ष अफ्जलख़ाँ का पुत्र फ़ाज़ल ख़ाँ व सीदी जौहर नाम के अन्य दो सरदारों ने शिवाजी को पन्हल किले में घेर लिया। लेकिन रात में शिवाजी ने घेरने-वालों की फ़ौज को भेद कर विशालगढ की राह पकड़ी। फाजल-ख़ाँ ने उसका पीछा किया। रास्ते में फाजलख़ाँ से शिवाजी के सरदार बाजी देशपाडे से मुठभेड़ हो गई। उसने फ़ाज़लख़ाँ को आगे न बढने दिया और वहीं अपने प्राण गँवा दिये। सन्



भाग थे—पेदल और घुड़सवार। (१) पैदल की संख्या अधिक थी। दस पैदल सिपाहियों के ऊपर एक नायक, पाँच नायकों पर एक हवलदार, दो हवलदारों पर एक जुमलेदार और दस जुमलेदारों पर अर्थात् एक हज़ार सिपाहियों पर "हेरकरी सरनौबत" अर्थात् सेनापति रहता था। इस पैदल फौज में मावले और कोंकन के हेरकरी लोगों की भरती होती थी। ये लोग विश्वास पात्र और पहाड़ी रास्तों पर चलने में सहज अभ्यस्त थे। जुमलेदारों को १०० होन, एक हजारी को पाँच सो होन व पाँच हजारी को आठ सौ होन वार्षिक वेतन मिलता था। इसके साथ साथ अनेक पदाधिकारियों को पालकी इत्यादि पर बैठने की राजाज्ञा थी। शिवाजी के पास तोपखाना न था। (२) घुड़सवार फौज की व्यवस्था भी इसी प्रकार थी। पचीस सवारों पर एक हवलदार, पाँच हवलदारों पर एक जुमलेदार दस जुमलेदारों पर एक सूबेदार, दस सूबेदारों पर एक पंच हजारी, इत्यादि पदाधिकारी क्रमश नियत थे। प्रत्येक २५ सवारों की एक टोली में एक नालबंद और एक भिश्ती रहता था। घुड़सवार दो प्रकार के थे, शिलेदार और बारगीर। शिलेदारों की गणना ऊँचे दरजे में की जाती थी। सरकार से उनको सालाना सलामी नियत रहती थी। अपनी सवारी के लिए घोडा और हथियार वे खुद खरीदते थे। बारगीर दरजे के घुड़सवार सरकारी नौकरी में रहनेवाले थे। इनको घोडे व हथियार सरकार की ओर से मिलते थे। शिलेदारों का वेतन ६ होन से १२ होन तक और बारगीरों का वेतन एक होन से ५ होन तक नियत था। फौज में खुफिया, कारकुन, सावनीस, और कारखानीस इत्यादि



सिंहगड ( कल्याण दरवाजा )

भाग थे—पैदल और घुड़सवार। (१) पैदल की सख्या अधिक थी। दस पैदल सिपाहियों के ऊपर एक नायक, पाँच नायकों पर एक हवल्दार, दो हवल्दारों पर एक जुमलेदार और दस जुमलेदारों पर अर्थात् एक हजार सिपाहियों पर "हेरकरी सरनौबत" अर्थात् सेनापति रहता था। इस पैदल फौज में मावले और कोकन के हेरकरी लोगो की भरती होती थी। ये लोग विश्वास पात्र और पहाड़ी रास्तों पर चलने में सहज अभ्यस्त थे। जुमलेदारों को १०० होन, एक हजारी को पाँच सौ होन व पाँच हजारी को आठ सौ होन वार्षिक वेतन मिलता था। इसके साथ साथ अनेक पदाधिकारियो को पालकी इत्यादि पर बैठने की राजाज्ञा थी। शिवाजी के पास तोपखाना न था। (२) घुड़सवार फौज को व्यवस्था भी इसी प्रकार थी। पच्चीस सवारों पर एक हवल्दार, पाँच हवल्दारों पर एक जुमलेदार दस जुमलेदारों पर एक सूबेदार, दस सूबेदारों पर एक पच हजारी, इत्यादि पदाधिकारी क्रमश नियत थे। प्रत्येक २५ सवारों की एक टोली में एक नालबन्द और एक भिश्ती रहता था। घुड़सवार दो प्रकार के थे, शिलेदार और बारगीर। शिलेदारों की गणना ऊँचे दरजे में की जाती थी। सरकार से उनको सालाना सलामी नियत रहती थी। अपनी सवारी के लिए घोड़ा और हथियार वे खुद खरीदते थे। बारगीर दरजे के घुड़सवार सरकारी नौकरी में रहनेवाले थे। इनको घोड़े व हथियार सरकार की ओर से मिलते थे। शिलेदारों का वेतन ६ होन से १२ होन तक और बारगीरों का वेतन एक होन से ५ होन तक नियत था। फौज में खुफिया, कारकुन, सावनीस, और कारखानीस इत्यादि

भी रहते थे। बहिरजी नाईक नाम का चतुर महाराष्ट्र सरदार ख़ुफ़ियों का प्रधान था। फौज में नियत समय पर वेतन बाँट दिया जाता था। फ़ौज में दासी, स्त्री, कलाल इत्यादि लाने का बिलकुल निषेध था। नये आदमी की भरती के समय उसकी ज़मानत पुराने सिपाहियों में से ली जाती थी। लूट का सारा माल सरकार में जमा होता था। विशेष पराक्रम दिखलाने वाले को सरकार की ओर से बहुमान और पदवी इत्यादि देने का नियम था।

(३) फौज के समान ही शिवाजी ने जहाजी बेड़े की भी व्यवस्था अच्छी तरह की थी। जहाज बनाकर उनकी सहायता से राज्य की रक्षा करने की आवश्यकता का महत्व उसे विदित था। सीदियों की शक्ति तोड़ देने के बाद पश्चिमी समुद्रतट पर शिवाजी ने अनेक क़िले बनवाये और स्थान स्थान पर जहाज़ी बेड़े तैनात किये। अलीबाग का क़िला कुलाबा के जहाजी बेड़ों का केन्द्र बनाया गया। सन् १६६५ में शिवाजी के पास ३० टन से लगा कर १५० टन तक के छोटे-बड़े कुल मिलाकर ८५ जहाज़ थे। उनमें बड़े बड़े तीन काठियों के डोल भी थे। इसके बाद छ वर्षों में ही १६० जहाज़ हो गये। समुद्री युद्ध में प्रसिद्ध होने वाला कान्होजी आँगरे शिवाजी के जहाज़ी बेड़े का मुख्य सरदार था। इसके अतिरिक्त दरिया सारग, इब्राहीम खाँ और मायनाक भंडारी शिवाजी के जहाजी बेड़े में समय समय पर काम कर चुके थे।

(५) राज्य-व्यवस्था—शिवाजी ने पहले की व्यवस्था में दो परिवर्तन किये थे। पहला, मालगुजारी की तहसील-वसूल में

अनाज न लेकर नक्द रुपये लेना शुरू किया था, और दूसरा नया प्रबन्ध यह था कि किसानों से जमीनदारों की मार्फत कर वसूल न कर अपने सरकारी आदमियों के द्वारा कर वसूल करना शुरू किया। इस काम के लिए कमाविसदार (तहसीलदार) महालकरी (ज़िलेदार) और सूबेदार (प्रान्त प्रधान) इत्यादि अधिकारी नियत थे। उपज का दो पचमांश भाग कर के रूप में वसूल किया जाता था। इन्हीं अधिकारियों को फौजदारी के अधिकार दिये गये थे। अनेक न्याय के काम गाँव-पचायतें करती थीं। शिवाजी के राज्य के दो मुख्य विभाग थे, स्वराज्य और मुगलाई। राज्य का वह भाग स्वराज्य के नाम से पुकारा जाता था कि जहाँ सर्व-सत्ता अधिकार शिवाजी का था। किन्तु दूसरा भाग, जहाँ का स्वामित्व दूसरे का और प्रबन्ध उसके हाथ में था यह भाग मुगलाई के नाम से प्रसिद्ध था। स्वराज्य में कुल बारह सूबे थे। प्रत्येक सूबे में दो या तीन उपभाग भी होते थे। इन उपभागों का नाम "महाल" था। शिवाजी के राज्य की कुल आय नौ करोड रुपये थी। प्रत्यक्ष आमदनी बहुत कम थी। सूबेदारों का वेतन ४०० होन था, क़िले के सरक्षण करने वालों, देवस्थानों, लडाई में पराक्रम दिखाने वालों को शिवाजी की ओर से इनाम में जमीन भी कभी कभी मिलती थी। उन्होंने हिन्दू या मुस्लिम देवस्थानों की आमदनी जब्त नहीं की। मोटे तौर से यह कहा जा सकता है कि शिवाजी का राज्य उत्तर में तासी नदी से लगाकर दक्षिण में तुगभद्रा तक फैला था। इस राज्य-विस्तार में कहीं कहीं विच्छिन्नता भी थी। लेकिन उक्त भूभाग के उत्तमोत्तम प्रदेशों पर शिवाजी का ही अधिकार था। जिन प्रदेशों पर अधिकार न था उन पर अपना प्रभाव शिवाजी

ने अच्छी तरह जमा लिया था। इसी व्यवस्था को आगे चल कर पेशवे भी बनाये गये और कर्नाटक, गुजरात, मालवा, वरार-प्रान्तो में यद्यपि छोटे भूभागों पर उन्होंने अधिकार जमाया, तथापि सघन प्रदेशों को अपने अधिकार में लाने का विशेष प्रयत्न किया।

(६) उपसंहार—ऐसा व्यवस्था करके, भिन्न भिन्न विषयों में राष्ट्र की उन्नति करने के लिए शिवाजी ने अनेक उपाय किये। बजाजी निम्बालकर, नेताजी पालकर इत्यादि अनेक रूपों में त्रस्त होकर मुसलमान बन गये थे, वे पुन. प्रायश्चित करके अपने धर्म पर आरूढ़ होकर शिवाजी के साथी बन गये। शिवाजी ने व्यापार मे, विद्या में, और संस्कृत भाषा व महाराष्ट्र भाषा में उन्नति करने के लिए योग दान दिया। उसने पारिभाषिक शब्दो का एक राज-व्यवहार कोष तैयार कराया। राज्य की साम्पत्तिक नीति में शिवाजी को कैसा ज्ञान था, इसका परिचय हमें उस विभाग से मिलता है, जिसके द्वारा उसने परराष्ट्रों से अपना सम्बन्ध खोला था। सरकारी काग़जों से पता चलता है कि सिक्के के लिए शिवाजी ने निम्न लिखित छाप स्थिर की थी—

प्रतिपच्चन्द्र रेखेव वर्धिष्णुर्लोक वन्दिता।
शाह सूनो शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते॥

अर्थात् शाह जी के पुत्र शिवाजी की यह मुद्रा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा की चन्द्र रेखा के समान वृद्धिकर्ता है, यह लोक कल्याणार्थ अवतरित हुई है, और इसका सब संसार वंदन करने वाला है।

शिवाजी ने भारत के राष्ट्र की, जो सेवा की उसका श्रेय

यद्यपि शिवाजी को ही है, तथापि उसको इस कार्य में सहायता पहुँचानेवाले भी थे। उसके प्रसिद्ध सहायक स्वामी रामदास, जिजाबाई, दादाजी कोंडदेव, कङ्क मालसुरे, पासलकर, कान्होजी जेधे और उसका पुत्र बाजी सार्जेराव मोरो पन्त पिङ्गले, निलो सोन देव, हणमन्ते, निराजी राव-जी, अण्णाजी दत्तो, दत्ताजी पन्त, वोकील, मुरार बाजी, बाजी देशपाडे, बालाजी जी आवजी, चिटणीस, फिरङ्गो जी नरसाला, नेताजी पालकर, प्रतापराव गुजर, हम्बीरराव मोहिते इत्यादि के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं।

---

# पाँचवाँ अध्याय

## छत्रपति सम्भाजी

### सन् १६८०-१६८९

१—राज्यारोहण और राज्य व्यवस्था  २—सम्भाजी का युद्ध
३—सम्भाजी का वध

(१) **राज्यारोहण और राज्य-व्यवस्था**—सम्भाजी का जन्म १४ मई सन् १६५७ को पुरन्दर के किले में हुआ था। सम्भाजी अपने पिता के समान बल्कि उससे भी अधिक शूर-वीर था। पिता के साथ अनेक लड़ाइयों में रहने से उसके चित्त में धैर्य और कष्ट-सहिष्णुता भी कूट कूट कर भर गई थी। लेकिन इन गुणों के साथ साथ उसमें अन्य अवगुण भी आ गये थे। वह छोटी ही अवस्था में व्यसनी हो गया था। इससे उसका स्वभाव कठोर और क्रूर हो गया था, इसलिए वह किसी को कुछ नहीं समझता था। औरंगज़ेब के एक सरदार दिलेरख़ाँ ने शिवाजी पर सन् १६७८ में १३ दिसम्बर को चढ़ाई की। इसी दिन संभाजी अपने पिता से लड़कर दिलेरख़ाँ से जा मिला। लेकिन दिलेरख़ाँ ने उसे अपने यहाँ नहीं रहने दिया। सन् १६७९ में शिवाजी उसे समझा-बुझा कर ले आया और पन्हल किले में कैद कर दिया। उसकी देख भाल के लिए जनार्दन पंत हनमते को तैनात कर दिया। शिवाजी की मृत्यु

के समय संभाजी पन्हलगढ़ में ही कैद था। शिवाजी का मृतक-संस्कार राजाराम ने रायगढ़ में ही किया था। राजाराम का जन्म सन् १६७० की २४ फर्वरी को हुआ था। इसलिए शिवा जी की मृत्यु के समय उसकी अवस्था केवल दस वर्ष की थी।

अण्णा जी दत्तो और मोरोपंत पिंगले को मिलाकर राजा राम की माँ सोयराबाई ने शिवाजी की मृत्यु का समाचार सभाजी से नहीं बताया और राजाराम को गद्दी पर बिठा कर राज्य का कार्य चलाने लगी। लेकिन यह सब समाचार संभाजी को किसी न किसी तरह विदित हो गया, और वह वहाँ से चल कर तुरंत रायगढ आ पहुँचा। रायगढ़ पहुँच कर उसने राजाराम और अण्णा जी दत्तो को कैद कर लिया और सोयराबाई को तत्काल मार डाला। अनन्तर सन् १६८१ की १६ जनवरी को वह राजगद्दी पर बैठा। रायगढ का प्रबंध करके संभाजी पन्हल गढ गया। इसी बीच मे औरंगजेब का लड़का अकबर औरङ्ग जेब से बागी होकर संभाजी के पास सहायता माँगने के लिए आया। १३-११-१६८१ को उसने सभाजी से भेंट की। पदाधिकारियों ने उसके साथ सभाजी के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र रचा। किन्तु इसका रहस्य सभाजी को मालूम हो गया। इससे सभाजी के क्रोध का वारापार न रहा और क्रोधांध होकर वह अपने पिता के समय के समस्त पदाधिकारियों को अपने विरुद्ध समझ बैठा। उसने विचार किया कि जब तक इन लोगों का नाश न किया जायगा तब तक मेरी अवस्था निश्चिंत न रहेगी। उसकी यह बुरी धारणा यावज्जीवन बनी रही। इस दुर्वृत्ति के कारण उसने अपनी ही हानि नहीं की, बल्कि राज्य की भी भारी हानि की। विरोधी मंडल पर उसका विश्वास न जमा। वह सदैव यही संदेह करता रहता कि ये लोग मुझे फँसाना चाहते

हैं। इस भयकर दुश्चिंता के कारण राज्य के अनेक नर-रत्न मारे गये।

अण्णाजी दत्तो—सोयराबाई के समीपी व पक्षपाती सरदार, बालाजी आवजी चिटणीस, इसका भाई श्यामजी और पुत्र आवजी, और हिरोजी फर्जंद इत्यादि लोगों को संभाजी ने हाथी के पैर से कुचलवा कर मार डाला। शिर्के सरदारों के घराने का उसने समूल नाश किया। लेकिन संभाजी की स्त्री येसूबाई बड़ी चतुर स्त्री थी। उसने संभाजी पर प्रभाव डाल कर बालाजी आवजी के दूसरे पुत्र खंडो बल्लाल को सरकारी काम पर नियत करा दिया। इसी खंडो बल्लाल ने बाद को राज्य की बड़ी बड़ी सेवाएँ कीं। संभाजी ने शिवाजी के समय के समस्त कर्मचारियों को राज्य के प्रबन्ध से अलग कर दिया और कवि कुलेश उर्फ "कलुशा" नाम के एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण को पहले पंडितराव का पद देकर बाद को मुख्य प्रधान का पद दिया, और उसे ही अन्य कार्य भी सौंप दिये। यह ब्राह्मण मंत्र-तंत्र तथा शास्त्र जानता था। उसने अपनी मीठी मीठी बातों से संभाजी को प्रसन्न कर लिया था।

(२) सम्भाजी के युद्ध—शाहजादा अकबर को संभाजी ने आश्रय दिया था, इसलिए औरंगज़ेब स्वयं एक बड़ी फौज लेकर दक्षिण-देश जीतने के लिए सन् १६८३ में आया। उसने सोचा कि शिवाजी मर चुका है और संभाजी व्यसनी है। इससे महाराष्ट्र इस समय सहज में ही जीता जा सकता है। जंजीरा के सीदी और पुर्तगीज लोग संभाजी के साथ शत्रुता रखते थे। ऐसे कठिन अवसर पर संभाजी ने अपनी वीरता का परिचय दिया।

गोवा के पास "फोंडे" नामक स्थान पर पुर्त्तगीज़ों का एक थाना था। इसी स्थान पर मराठों ने पुर्त्तगीज़ों के साथ घमासान युद्ध कर २०० यूरोपीयों और एक हज़ार देशी लोगों को हताहत किया और पुर्त्तगीजों का वसई के समीप का देश अपने अधिकार में कर लिया।

इसी समय उत्तर की ओर से औरंगज़ेब की फौज "बागलाना" में आ पहुँची। वहाँ पर जो युद्ध हुआ उसमें मराठों ने मुगलों को हरा दिया। यह देख कर बादशाह ने अगले दो तीन वर्षों में संभाजी को हराने की धुन छोड़ कर बीजापुर, गोलकुंडा (गोवल कोंडा) के राज्यों पर अधिकार कर लिया। इस अवसर का यथोचित उपयोग संभाजी ने नहीं किया। राज्य की आमदनी और शिवाजी द्वारा की गई राज्य व्यवस्था बंद हो जाने से यत्र-तत्र अधाधुन्धी ने अपना सिक्का जमा लिया। ख़जाना ख़ाली हो गया। मालगुजारी की वसूलयाबी बंद हो गई। शौर्य के अतिरिक्त सम्भाजी में दूसरा कोई भी गुण न था। ऐसी अवस्था में महाराष्ट्र-शासन हीनावस्था को पहुँच गया।

(३) सम्भाजी का वध (सन् १६८९)—सन् १६८७ में औरंगजेब ने सभाजी के साथ फिर युद्ध शुरू किया। शाहज़ादा अकबर ने सभाजी को छोड़ कर ईरान की राह ली। बादशाह के सरदार सर्जेख़ाँ से हंबीरराव मोहिते ने वाई के पास युद्ध किया। इस युद्ध में मराठों की जीत हुई, लेकिन हंबीरराव गोली लग जाने से रण-भूमि में मारा गया। उसकी मृत्यु से संभाजी का मानों दाहना हाथ ही बेकाम हो गया। बाद को मुगलों ने संभाजी को चारों ओर से घेर लिया और रायगढ जाते समय रास्ते में संगमेश्वर में सभाजी व "कलुशा" पर

कोल्हापुर के मुसलमान अधिकारी छापा मार कर संभाजी को १-२-१६८९ के दिन पकड़ कर तुलापुर में बादशाह की छावनी मे ले गया। इस अधिकारी का नाम तकरीबखाँ था। उस समय बादशाह ने संभाजी से मुसलमान बन जाने को कहा। संभाजी ने उत्तर देते हुए कहा कि "तुम अपनी बेटी का विवाह मेरे साथ कर दो तो मैं मुसलमान बनूँ" ऐसी कड़ा कड़ी की बातें कह कर संभाजी ने मुस्लिम-धर्म की निन्दा की। यह बादशाह को सहय नहीं हुआ। इसलिए उसने संभाजी की जीभ कटवा डाली और क्रूरता के साथ उसका वध करा दिया। (११ ३-१६८९)। व्यसनी होने के कारण संभाजी का नाश हुआ, तथापि वह शूर और कर्त्तव्यशील था। संभाजी मार डाला गया। उस समय संभाजी की स्त्री येसूबाई और उसका पुत्र शिवाजी (इसकी उम्र ९ वर्ष की थी) रायगढ़ में थे। इनको वहीं रखकर राजाराम व अन्य सरदार बाहर निकले। इधर रायगढ़ पर घेरा डाल कर ईतकदखाँ उर्फ जुलफिकारखाँ ने ३ ११-१६८९ को किला जीत लिया और येसूबाई तथा शिवाजी को कैद कर के साथ ले गया। येसूबाई वहाँ सत्रह वर्ष तक क़ैद में रहीं। संभाजी के हृदय द्रावक वध ने समस्त महाराष्ट्र-देश को हिला डाला। उन्होंने जोश में आकर मुग़लों से बदला लेने का संकल्प किया। इधर येसूबाई और शिवाजी बादशाह के पास क़ैद थे। इनके साथ बादशाह की बड़ी शाहज़ादी जीनतुन्निसा की प्रीति हो गई। इससे उसने बड़ी सावधानी के साथ उनके सुख का सुप्रबंध रक्खा। गुप्त रीति से येसूबाई और राजाराम एक दूसरे के पास आते जाते थे। येसूबाई

क हाथ में जाते ही रामचंद्र पंत ने विशालगढ और पन्हाल
में रह कर महाराष्ट्र की रक्षा की। राजाराम ने प्रह्लाद
ी और खंडो बल्लाल के साथ जिंजी जाकर राज्य का
कार्य देखना शुरू किया और सन्ताजी घोरपड़े व धनाजी
ओर महाराष्ट्र के बीच में घूम फिर कर बादशाह का पीछा
लगा। इस क्रम के चलते ही कार्य ठीक होने लगा।
जी मल्हार व परशुराम त्रिंबक कुलकर्णी किन्हईकर
धि के मूल-पुरुष रामचन्द्र के साथ काम करने में प्रसिद्ध
राजाराम ने जिंजी में गद्दी को स्थापित कर अष्टप्रधान-
ी फिर से स्थापना की। प्रह्लाद निराजी को चतुर, कर्त
और राज्य का एकमात्र आधार-स्तम्भ समझ और अपना
स्वरूप मान राजाराम ने उसे "प्रतिनिधि" का नया
ा। प्रतिनिधि का पद अष्टप्रधानों से भी ऊँचा रक्खा।
ु राज्य में पुन प्रबन्ध स्थापित किया। इसके सिवा राष्ट्र
के लिए उसने एक नई बात यह की कि जो व्यक्ति परा
राष्ट्र की सहायता करके शत्रु को हराने में सफल होगा

# छठा अध्याय

## छत्रपति राजाराम व द्वितीय शिवाजी

सन् १६८९–१७०८

१—मराठों पर भयङ्कर सङ्कट २—सन्ताजी घोरपड़े व धनाजी जाधव
३—राजाराम की मृत्यु ४—ताराबाई व शिवाजी
५—शाहू का छुटकारा

(१) मराठों पर भयंकर संकट—मराठाशाही पर आज तक जितने संकट पड़े उन सब में यह संकट सबसे अधिक भयंकर और दुस्तर था। सम्भाजी के मारे जाने के बाद मराठों ने उसके बेटे को गद्दी पर बैठा कर राज्य की व्यवस्था शुरू की। राजाराम, प्रह्लाद, निराजी, रामचन्द्र, नीलकंठ अमात्य, संताजी घोरपड़े, खंडो बल्लाल, धनाजी जाधव इत्यादि पहले ही रायगढ़ से बाहर निकल गये थे। इसलिए वे शत्रु के पंजे में न फँस सके। एक एक करके मराठों के सभी क़िले और प्रान्त मुग़लों के अधिकार में जाने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा कि मराठाशाही का अन्त आ गया। लेकिन इस भयङ्कर परीक्षा ने मराठों के तेज को और भी चमका दिया। राजाराम का स्वभाव संभाजी के स्वभाव से बिलकुल भिन्न था। वह निर्व्यसनी, स्वार्थत्यागी व मिलनसार व्यक्ति था। रायगढ़ के

मुग़लों के हाथ में जाते ही रामचद्र पत ने विशालगढ और पन्हाल के बीच में रह कर महाराष्ट्र की रक्षा की। राजाराम ने प्रह्लाद निराजी और खंडो बल्लाल के साथ जिंजी जाकर राज्य का शासन-कार्य देखना शुरू किया और सन्ताजी घोरपडे व धनाजी जिंजी और महाराष्ट्र के बीच में घूम फिर कर बादशाह का पीछा करने लगा। इस क्रम के चलते ही कार्य ठीक होने लगा। शंकराजी मल्हार व परशुराम त्रिंबक कुलकर्णी किन्हईकर प्रतिनिधि के मूल-पुरुष रामचन्द्र के साथ काम करने में प्रसिद्ध हुए। राजाराम ने जिंजी में गद्दी को स्थापित कर अष्टप्रधान मडल की फिर से स्थापना की। प्रह्लाद निराजी को चतुर, कर्तव्यशील और राज्य का एकमात्र आधार-स्तम्भ समझ और अपना दूसरा स्वरूप मान राजाराम ने उसे "प्रतिनिधि" का नया पद दिया। प्रतिनिधि का पद अष्टप्रधानों से भी ऊँचा रक्खा। इस तरह राज्य में पुन प्रबन्ध स्थापित किया। इसके सिवा राष्ट्र की रक्षा के लिए उसने एक नई बात यह की कि जो व्यक्ति पराक्रम से राष्ट्र की सहायता करके शत्रु को हराने में सफल होगा और विपत्ति के समय धैर्य के साथ आगे बढ कर राज्य की सहायता करेगा वह पुरस्कार, पदाधिकार, इनाम इत्यादि से सतुष्ट किया जायगा। इस प्रकार की राजाज्ञा का प्रचार होते ही अनेक लोगों ने राज्य का पक्ष लेकर अपना कर्त्तव्य पालन किया और अनेक प्रकार के राज-सम्मानों से वे विभूषित हुए। यह क्रम आज तक सरदारों में जारी है।

(२) सन्ताजी घोरपडे व धनाजी जाधव—औरंगजेब की फ़ौजी तैयारी बड़ी प्रबल थी। लेकिन उसके सैनिक बड़े धीमे और

# छठा अध्याय

## छत्रपति राजाराम व द्वितीय शिवाजी

सन् १६८९—१७०८

१—मराठों पर भयङ्कर सङ्कट　२—सन्ताजी घोरपड़े व धनाजी जाधव
३—राजाराम की मृत्यु　४—ताराबाई व शिवाजी
५—शाहू का छुटकारा

(१) मराठो पर भयंकर संकट—मराठाशाही पर आज तक जितने संकट पड़े उन सब में यह संकट सबसे अधिक भयंकर और दुस्तर था। सभाजी के मारे जाने के बाद मराठों ने उसके बेटे को गद्दी पर बैठा कर राज्य की व्यवस्था शुरू की। राजाराम, प्रह्लाद, निराजी, रामचन्द्र, नीलकठ अमात्य, सताजी घोरपड़े, खण्डो बल्लाल, धनाजी जाधव इत्यादि पहले ही रायगढ़ से बाहर निकल गये थे। इसलिए वे शत्रु के पंजे में न फँस सके। एक एक करके मराठों के सभी किले और प्रान्त मुगलों के अधिकार में जाने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा कि मराठाशाही का अन्त आ गया। लेकिन इस भयङ्कर परीक्षा ने मराठों के तेज को और भी चमका दिया। राजाराम का स्वभाव संभाजी के स्वभाव से बिलकुल भिन्न था। वह निर्व्यसनी, स्वार्थत्यागी व मिलनसार व्यक्ति था। रायगढ़ के

मुग़लों के हाथ में जाते ही रामचंद्र पंत ने विशालगढ़ और पन्हाल के बीच में रह कर महाराष्ट्र की रक्षा की। राजाराम ने प्रह्लाद निराजी और खंडो बल्लाल के साथ जिंजी जाकर राज्य का शासन-कार्य देखना शुरू किया और सन्ताजी घोरपडे व धनाजी जिंजी और महाराष्ट्र के बीच में घूम फिर कर बादशाह का पीछा करने लगा। इस क्रम के चलते ही कार्य ठीक होने लगा। शंकराजी मल्हार व परशुराम त्रिंबक कुलकर्णी किन्हईकर प्रतिनिधि के मूल-पुरुष रामचन्द्र के साथ काम करने में प्रसिद्ध हुए। राजाराम ने जिंजी में गद्दी को स्थापित कर अष्टप्रधान-मंडल की फिर से स्थापना की। प्रह्लाद निराजी को चतुर, कर्त्तव्यशील और राज्य का एकमात्र आधार-स्तम्भ समझ और अपना दूसरा स्वरूप मान राजाराम ने उसे "प्रतिनिधि" का नया पद दिया। प्रतिनिधि का पद अष्टप्रधानों से भी ऊँचा रक्खा। इस तरह राज्य में पुनः प्रबन्ध स्थापित किया। इसके सिवा राष्ट्र की रक्षा के लिए उसने एक नई बात यह की कि जो व्यक्ति पराक्रम से राष्ट्र की सहायता करके शत्रु को हराने में सफल होगा और विपत्ति के समय धैर्य के साथ आगे बढ़ कर राज्य की सहायता करेगा वह पुरस्कार, पदाधिकार, इनाम इत्यादि से सन्तुष्ट किया जायगा। इस प्रकार की राजाज्ञा का प्रचार होते ही अनेक लोगों ने राज्य का पक्ष लेकर अपना कर्त्तव्य पालन किया और अनेक प्रकार के राज-सम्मानों से वे विभूषित हुए। यह क्रम आज तक सरदारों में जारी है।

(२) सन्ताजी घोरपडे व धनाजी जाधव—औरंगज़ेब की फ़ौजी तैयारी बड़ी प्रबल थी। लेकिन उसके सैनिक बड़े धीमे और

अभिमानी थे। इसलिए महाराष्ट्र-देश के ऊँचे नीचे ऊबड़-खाबड़ रास्तों में उनको चलने में बड़ी कठनाई झेलनी पड़ती थी। बाद शाह के पास तोपखाना और हरबे हथियारों की कमी न थी। लेकिन तेज़ मराठों पर वे ठीक निशाना न लगा सकते थे। मराठों ने बादशाही फौज की इस दुर्बलता को जान कर उसके ऊपर लुक छिप कर मौका देख कर छापा मारने का निश्चय किया। मराठे सवारों की समस्त आवश्यक वस्तुएँ उनके छोटे से घोड़ों पर ही लदो रहती थीं। जगल में उन्हें जो कुछ मिल जाता उसे ही खा-पी कर अपना निर्वाह कर लेते थे। बादशाही फौज के साथ खुले मैदान में न लड़कर मौका देखकर उस पर टूट पड़ते और ख़जाना व रसद का सामान लूट ले जाते और देखते ही देखते वे पासवाले पहाड़ की ओट में छिप कर विलीन हो जाते। उनके ऊपर हमला करने में बादशाही फौज के अभिमानी सिपाही चाहे जितनी शीघ्रता क्यो न करते, समय लग ही जाता था। इस प्रकार युद्ध करने की शैली को अग्रेजी में "गुरीला वार" कहते हैं। इन छापों ने बादशाह की बड़ी फौज को तंग कर डाला। रामचन्द्र पंत, सताजी, धनाजी इत्यादि लोगों ने युद्ध की इस पद्धति को पसन्द कर इसके अनुसार कार्य किया था। ये दोनों वीर सरदार पहले शिवाजी की फौज में नौकर थे। बाद को इन्होंने युद्ध की ऊँची योग्यता प्राप्त कर ली थी। इनकी वीरता के विषय में इतिहासकार ख़ाफीख़ाँ कहता है कि सन्ताजी ने मुग़ल-सरदारों को विवश कर दिया था। उसके सामने जो व्यक्ति जाता वह जीता जागता कभी नहीं लौट पाता था। अपने सामने किसी को कुछ न गिननेवाले मुगल-सरदार उसके सामने जाने ही काँप उठते थे। उसके सामने जम कर लड़नेवाला एक

भी सरदार मुग़ल पक्ष में न था, धनाजी भी वैसा ही शूर था। मुग़ल तो उससे इतना भय मानते थे कि यदि किसी का घोड़ा पानी न पीता तो वे उससे पूछते कि क्यों रे पानी पीता क्यों नहीं? क्या तुझे पानी में धनाजी की परछाईं दीखती है?" संताजी ने एक बार खास बादशाह के तम्बू पर हमला करके उसका सोने का कलश काट लिया था। उस समय भाग्यवश बादशाह अपने तम्बू में न था, इसीसे वह बच गया। इसके बाद बादशाह की छावनी भीमा के किनारे से उठ कर ब्रह्मपुरी में आ गई। मराठों ने कर्नाटक से लगा कर खानदेश की उत्तरी सीमा तक सारे देश में खलबली पैदा कर दी थी। सन् १६९१ में बादशाह की आज्ञा से ज़ुल्फिकारखाँ ने जिंजी के क़िले को घेर लिया। यह घेरा डाले छ वर्ष तक पड़ा रहा। इस क़िले के भीतर ही राजाराम और उसकी मंडली इत्यादि घिरी हुई थी। अन्त में बादशाह ने ज़ुल्फिकारखाँ को बड़ी सख्त-सुस्त बातें लिख भेजीं। तब उसने जिंजी के क़िले पर अधिकार कर लिया। लेकिन क़िले पर अधिकार होने से पहले ही राजाराम अपनी मंडली के सहित सकुशल बाहर आ कर स्वदेश पहुँच चुका था।

(३) राजाराम की मृत्यु (मार्च १७००)—राजाराम ने जिंजी से लौट कर सतारा के क़िले में महाराष्ट्र की राज्य-गद्दी स्थापित की। मराठाशाही की यह गद्दी अन्त तक सतारे में ही रही। गद्दी स्थापित करने के बाद उसने अपने सरदारों से सम्मति लेकर मुगलों पर चढ़ाई की। उसने स्वयं फ़ौज लेकर मुगलों के प्रान्तों पर हमला किया और वहाँ से चौथ और सरदेशमुखी वसूल की। उसने खानदेश तक बराबर हमले किये और चौथ इत्यादि वसूल की। इस प्रकार वह सिंहगढ़ वापस आया। उसका सारा जीवन

शाही के संकट दूर हो गये। इसके बाद मराठों की धाक मुग़लों पर जम गई।

(५) शाहू का छुटकारा—सम्भाजी का पुत्र शिवाजी उर्फ़ शाहू का जन्म १८ मई १६८२ में हुआ था। उस पर औरङ्गज़ेब की पूर्ण कृपा थी। उसे छुड़ाने के लिए मराठा सरदारों ने अनेक प्रयत्न किये, लेकिन वे सब निष्फल गये। अठारह वर्ष तक बादशाह के ज़नानख़ाने में रहने से योग्य अनुभव से मिलने वाले ज्ञान से वह वञ्चित रहा। उसमें तेज, निश्चयात्मक बुद्धि और शौर्य इत्यादि गुणों का अभाव था।

औरङ्गज़ेब की मृत्यु होते ही उसके पुत्रों में गद्दी के लिए झगड़े उठ खड़े हुए। अजीमशाह ने जुल्फ़िकारख़ाँ की सहायता पाकर शाहू को साथ लेकर दिल्ली की यात्रा की। जुल्फ़िकारख़ाँ की सम्मति से सन १७०७ में अप्रैल मास में भोपाल के पास शाहू को अजीमशाह ने क़ैद से मुक्त किया। वापस लौटते समय खानदेश में परसोजी भोंसले इत्यादि मराठे सरदार शाहू से मिल गये। आगे बढ़ कर गोदावरी नदी के किनारे पहुँच कर शाहू ने ताराबाई से कहला भेजा कि "मैं आ रहा हूँ। मेरा राज्य मुझे सौंप दो।" ताराबाई को यह बात पसन्द न आई। उसने धनाजी जाधव, खण्डो बल्लाल और परशुराम त्रिंबक को शाहू के विरुद्ध लड़ने के लिए भेजा। इनमें से पहले दो व्यक्ति ताराबाई का पक्ष छोड़ कर शाहू से जा मिले और नवम्बर सन् १७०७ में खेड के समीप परशुराम लड़ाई में हार कर वापस लौट गया। इसके बाद शाहू ने सतारा पर चढ़ाई की और परशुराम पन्त को क़ैद करके क़िले पर अपना अधिकार कर लिया। ताराबाई अपने साथियों

# आठवाँ अध्याय

## छत्रपति शाहू, पेशवा बाजीराव व नाना साहब

ई० स० १७२०-१७४०

१—पेशवा पहला बाजीराव  २—निजामुल्मुल्क
३—मराठा शक्ति का विस्तार  ४—पेशवा नाना साहब
५—शाहू की मृत्यु

(१) पेशवा पहला बाजीराव—बालजी के बाद पेशवाई का कार्य उसके लड़के को न देकर किसी अन्य व्यक्ति को दिलाने का आग्रह अनेक सरदारों ने किया। लेकिन बालाजी का पुत्र अपने पिता के समान चतुर था और पराक्रमी भी था। उसका भाई चिमणाजी अप्पा भी उसके समान कर्त्तव्यशील था। शाहू को स्वयं लड़ाई पर जाने की इच्छा न रहने से उसने बालाजी की सहायता से आज तक राज्यश्री का भोग किया था। इसलिए यह उद्योग वैसा ही आगे भी चलाने के अभिप्राय से शाहू ने पेशवाई की पोशाक बाजीराव को ही पहनाई। उसने भी अपने पिता के उद्देश को यथाशक्य शीघ्र सफल करने का निश्चय कर नवीन उद्योग शुरू किया।



बाजीराव



निजामुलमुल्क

बालापुर की लड़ाई के बाद शीघ्र ही सैय्यदों का नाश कर निजाम ने कुछ दिनों दिल्ली की बादशाही की वज़ीरी की। लेकिन बादशाह को कमजोर और अपने हाथ से बादशाह का भला होता न देख स्वतंत्र होने का विचार कर वह दक्षिण में आया और औरङ्गाबाद में आकर उसने अपना राज्य स्थापित (सन् १७२३) किया। वही आजकल हैदराबाद का राज्य है। निजाम से मराठे लोग चौथ व सरदेशमुखी माँगने लगे। इसी से दोनों में बिगाड़ उठ खड़ा हुआ। दोनों ही महाराष्ट्र-देश पर अपना शासन जमाना चाहते थे। इसलिए बाजीराव और आगे के पेशवा इस निजाम-राज्य से बराबर नियम से लड़ाई लड़ते रहे। इसी प्रकार पश्चिमी किनारे पर जंजीरा में सीदी सरदार मुगल जहाजी बेड़े के कर्त्ता धर्ता थे। वे लोग मराठों को तंग किया करते थे। इनके अतिरिक्त यूरोप से आये हुये पुर्तगीज लोग भारत में आकर गोवा, वसई इत्यादि स्थानों पर अपना अधिकार जमाये बैठे थे। वे भी पेशवा के साथ लड़ाई करने लगे। एक ही समय कौन कौन शत्रु थे और उनके साथ मराठे कहाँ कहाँ लड़ाई लड़ते थे, इसका वर्णन आगे किया जायगा।

निजामुल्मुल्क मराठों का शासन शान्ति के साथ चलने न देता था और शाहू तक को उखाड़ फेकने का प्रयत्न करता था। तब बाजीराव ने उसके साथ प्रबल युद्ध करके सन् १७२८ में पालखेड में उसे बिलकुल हरा दिया और मराठा शक्ति की गृह-कलह में हाथ न डालने की प्रतिज्ञा निजाम से करा ली।

ताराबाई के झगड़े का निपटारा करने के लिए उसके साथ शाहू ने पहले ही सन्धि करके उसे कोल्हापुर का राज्य अलग कर

मल्हारराव होल्कर, राणोजी सिन्धे, उदाजी पवार, इत्यादि अनेक सरदार उसके बचपन के ही साथी थे। उनकी सहायता तथा पिलाजी जाधव, खंडेराव दाभाडे, फतहसिंह भोसले उसी प्रकार कान्होजी आँगरे, रघुजी भोंसले, और श्रीपतिराव प्रतिनिधि शाहू के भरोसे के सरदार इत्यादि लोगों की सहायता से सम्पूर्ण देश को जीतने का उद्योग उसने प्रारम्भ किया।

२—निजामुल्मुल्क—मुग़लों के भारत में प्रवश करने के समय अनेक घराने भारत में विदेश से आये और यहाँ नामाङ्कित हुए। इनमें निजाम का वंश प्रधान था। इस वंश के लोग बादशाह के दरबार में वजीर इत्यादि ऊँचे ऊँचे पदों पर थे। उन्हीं लोगों में से चिनकिलिजखाँ उर्फ निज़ामुल्मुल्क नामक एक पराक्रमी सरदार औरङ्गज़ेब के दरबार में उन्नति कर चुका था। सैय्यदों को निर्बल करने के लिए निज़ाम ने एक बड़ी फौज तैयार की। सैय्यदों का सरदार आलमअली इस फौज पर चढ़ दौड़ा। बालाजी विश्वनाथ की सन्धि के अनुसार सैय्यदों की सहायता करने के लिए खंडेराव दाभाडे मराठों की फौज लेकर गया। बरार में बालापुर नामक स्थान में निजाम और आलम अली की लडाई हुई। इस लड़ाई में आलमअली मारा गया। (सन् १७२०)। इस लड़ाई में दामाजी ने विशेष पराक्रम दिखाया था इसलिए शाहू ने उसे दाभाडे का सहायक बना कर "शमशेर बहादुर" की पदवी दी। दामाजी से ही गायकवाड राज घराने की उत्पत्ति हुई है। इसके बाद दामाजी की शीघ्र ही मृत्यु हो गई। बालापुर की लड़ाई में निज़ाम को जीत न मिली होती तो भारत का भावी इतिहास आज कुछ और ही होता।

बालापुर की लड़ाई के बाद शीघ्र ही सैय्यदों का नाश कर निजाम ने कुछ दिनों दिल्ली की बादशाही की वज़ीरी की। लेकिन बादशाह को कमज़ोर और अपने हाथ से बादशाह का भला होता न देख स्वतंत्र होने का विचार कर वह दक्षिण में आया और औरङ्गाबाद में आकर उसने अपना राज्य स्थापित ( सन् १७२३ ) किया। वही आजकल हैदराबाद का राज्य है। निजाम से मराठे लोग चौथ व सरदेशमुखी माँगने लगे। इसी से दोनों में बिगाड़ उठ खड़ा हुआ। दोनों ही महाराष्ट्र-देश पर अपना शासन जमाना चाहते थे। इसलिए बाजीराव और आगे के पेशवा इस निजाम-राज्य से बराबर नियम से लड़ाई लड़ते रहे। इसी प्रकार पश्चिमी किनारे पर जजीरा में सीदी सरदार मुगल जहाजी बेड़े के कर्त्ता धर्ता थे। वे लोग मराठों को तंग किया करते थे। इनके अतिरिक्त यूरोप से आये हुये पुर्तगीज लोग भारत में आकर गोवा, बसई इत्यादि स्थानों पर अपना अधिकार जमाये बैठे थे। वे भी पेशवा के साथ लड़ाई करने लगे। एक ही समय कौन कौन शत्रु थे और उनके साथ मराठे कहाँ कहाँ लड़ाई लड़ते थे, इसका वर्णन आगे किया जायगा।

निजामुल्मुल्क मराठों का शासन शान्ति के साथ चलने न देता था और शाहू तक को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करता था। तब बाजीराव ने उसके साथ प्रबल युद्ध करके सन् १७२८ में पालखेड़ में उसे बिल्कुल हरा दिया और मराठा शक्ति की गृह-कलह में हाथ न डालने की प्रतिज्ञा निजाम से करा ली।

ताराबाई के झगड़े का निपटारा करने के लिए उसके साथ शाहू ने पहले ही सन्धि करके उसे कोल्हापुर का राज्य अलग कर

दिया था। इस स्थान पर राजसबाई का लड़का राज्य करता था। इसका नाम सम्भाजी था । यह निज़ाम से जा मिला। तब शाहू ने उससे लड़ने के लिए प्रतिनिधि को भेजा। इस युद्ध में प्रतिनिधि से वह हार गया। उसे भेंट करने के लिए बुलाकर उसने उससे संधि करके कोल्हापुर के स्वतंत्र राज्य का दान-पत्र दिया। यही संभाजी कोल्हापुर के वर्त्तमान छत्रपति राजवंश का आदि-पुरुष था ( सन् १७३१ )।

मराठाशक्ति के कितने ही पुराने सरदार पेशवाओं के विरुद्ध थे। उन्हें पेशवा का शासन रुचिकर न था। अवसर पाकर वे पेशवा के शत्रुओं से मिल जाते थे। सेनापति खंडेराव दाभाडे के सन् १७२९ में मरने के बाद उसका लड़का त्रिंबकराव दाभाडे गुप्तरीति से निजाम के साथ लिखा पढ़ी करके पेशवाओं का पतन करने का उद्योग कर रहा था। इसलिए बाजीराव ने उस पर चढ़ाई करके गुजरात में डभई नामक स्थान में उसको परास्त किया। उस लड़ाई में त्रिंबकराव मारा गया (१-४-१७३१)। उसका भाई पराक्रमी न था, इसलिए गुजरात का कार्य दाभाडे के सहायक पिलाजी [illegible] दिया गया। उसके वंशज बड़ौदा के गायकवाड़ हु[illegible] में बाजी[illegible] कोंकण पर चढ़ाई कर जंजीरा के [illegible] कर।

[illegible]

की। दिल्ली [illegible]
चाहता था।
को हरा [illegible]
बाजीराव ने [illegible]

फौजों की मुठभेड़ भोपाल के समीप हुई। इस लड़ाई में घोर युद्ध के बाद निजाम को बुरी तरह की हार हुई। यह हार सन् १७३८ में ८ जनवरी को हुई। इसमें अनेक वीरों के मारे जाने से निजाम शिथिल होकर बैठ रहा।

( ३ ) **मराठाशाही का विस्तार**—बाजीराव के समय के मराठे सरदार सारे भारत में विजय प्राप्त करने लगे। भिन्न भिन्न प्रान्तों पर अधिकार जमाने का काम भिन्न भिन्न सरदारों को बाँट दिया गया, और वे स्थान स्थान पर जाकर सदैव के लिए बस गये। शाहू ने उन्हें बहुमान और जागीर देकर इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया। अलिजा बहादुर, सेना साहेब सूबा, शमशेर बहादुर, सर लश्कर इत्यादि आकर्षक पदवियाँ मराठे सरदारों को शाहू के समय में मिलीं। सिंधे उत्तर भारत में जा बसा, मालवे में होल्कर और पँवार की नियुक्ति हुई। वहाँ के राजा गिरधर और मुहम्मदखाँ बंगश को हरा कर वह प्रान्त मराठों ने ले लिया। बुंदेलखंड में छत्रसाल की सहायता कर बाजीराव ने वहाँ बहुत सी भूमि अपने अधिकार में की। नागपुर को भोसलों ने अपना घर बनाया। गुजरात में सेनापति दाभाडे तथा उनके सहायक गायकवाड रहने लगे। उन लोगों ने बादशाह के सूबेदार सर बुलन्दखाँ और मारवाड़ के राजा अभयसिंह को परास्त किया। कोंकन में आँगरे रहता ही था। दक्षिण में कर्नाटक प्रान्त को रघुजी भोंसले ने अपने अधिकार में किया। दक्षिण-महाराष्ट्र में आगे चल कर पटवर्धनों की शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और स्वत

दिया था। इस स्थान पर राजसबाई का लड़का राज्य करता था। इसका नाम सम्भाजी था। यह निज़ाम से जा मिला। तब शाहू ने उससे लड़ने के लिए प्रतिनिधि को भेजा। इस युद्ध में प्रतिनिधि से वह हार गया। उसे भेंट करने के लिए बुलाकर उसने उससे संधि करके कोल्हापुर के स्वतंत्र राज्य का दान-पत्र दिया। यही संभाजी कोल्हापुर के वर्त्तमान छत्रपति राजवंश का आदि-पुरुष था ( सन् १७३१ )।

मराठाशक्ति के कितने ही पुराने सरदार पेशवाओं के विरुद्ध थे। उन्हें पेशवा का शासन रुचिकर न था। अवसर पाकर वे पेशवा के शत्रुओं से मिल जाते थे। सेनापति खंडेराव दाभाडे के सन् १७२९ में मरने के बाद उसका लड़का त्रिंबकराव दाभाडे गुप्तरीति से निजाम के साथ लिखा पढ़ी करके पेशवाओं का पतन करने का उद्योग कर रहा था। इसलिए बाजीराव ने उस पर चढ़ाई करके गुजरात में उभई नामक स्थान में उसको परास्त किया। उस लड़ाई में त्रिंबकराव मारा गया (१-४ १७३१)। उसका भाई पराक्रमी न था, इसलिए गुजरात का कार्य दाभाडे के सहायक पिलाजी गायकवाड़ को दिया गया। उसके वंशज बड़ोदा के गायकवाड़ हुए। सन् १७३३ में बाजीराव ने कोंकन पर चढाई कर जंजीरा के सीदियों का अंत कर दिया।

निजामुल्मुल्क ने बाजीराव के साथ फिर छेड़छाड़ शुरू की। दिल्ली से सहायता पाकर वह मराठों का पतन करना चाहता था। बाजीराव ने ठेठ दिल्ली तक चढाई करके बादशाह को हरा दिया। यह बात निजाम न सह सका, इसलिए उसने बाजीराव से लड़ाई ठानने के लिए फौजें भेजीं। इन दोनों

फौजों की मुठभेड़ भोपाल के समीप हुई। इस लड़ाई में घोर युद्ध के बाद निजाम को बुरी तरह की हार हुई। यह हार सन् १७३८ में ८ जनवरी को हुई। इसमें अनेक वीरों के मारे जाने से निजाम शिथिल होकर बैठ रहा।

( ३ ) मराठाशाही का विस्तार—बाजीराव के समय के मराठे सरदार सारे भारत में विजय प्राप्त करने लगे। भिन्न भिन्न प्रांतों पर अधिकार जमाने का काम भिन्न भिन्न सरदारों को बाँट दिया गया, और वे स्थान स्थान पर जाकर सदैव के लिए बस गये। शाहू ने उन्हें बहुमान और जागीर देकर इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया। अलिजा बहादुर, सेना साहेब सूबा, शमशेर बहादुर, सर लश्कर इत्यादि आकर्षक पदवियाँ मराठे सरदारों को शाहू के समय में मिलीं। सिंधे उत्तर भारत में जा बसा, मालवे में होल्कर और पँवार की नियुक्ति हुई। वहाँ के राजा गिरधर और मुहम्मदखाँ बगश को हरा कर वह प्रान्त मराठों ने ले लिया। बुंदेलखंड में छत्रसाल की सहायता कर बाजीराव ने वहाँ बहुत सी भूमि अपने अधिकार में की। नागपुर को भोसलों ने अपना घर बनाया। गुजरात में सेनापति दाभाडे तथा उनके सहायक गायकवाड़ रहने लगे। उन लोगों ने बादशाह के सूबेदार सर बुलन्दखाँ और मारवाड़ के राजा अभयसिंह को परास्त किया। कोंकन में आँगरे रहता ही था। दक्षिण में कर्नाटक प्रान्त को रघुजी भोंसले ने अपने अधिकार में किया। दक्षिण महाराष्ट्र में आगे चल कर पटवर्धनों की शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और स्वत

पेशवा दक्षिण से उत्तर तक घूम फिर कर महाराष्ट्र-सत्ता का विस्तार करने लगा। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रान्तों में मराठे सरदारों की राजधानियाँ बन गईं। ग्वालियर, धार, सागर, झाँसी, इंदौर, नागपुर, बड़ौदा अक्कल कोट इत्यादि स्थानों में मराठों का शासन होने लगा और उनका ज़ोर धीरे धीरे इतना बढ़ा कि लगभग एक सौ वर्ष तक उनकी सत्ता सार्वभौम कायम रही। इस प्रकार माराठा सरदारों ने मुग़ल-बादशाही को चारों तरफ से घेर लिया। बाजीराव के भाई चिमणाजी अप्पा ने सन् १७३९ में पुर्त्तगीज़ लोगों से बसई छीन कर कोंकन के किनारे पर महाराष्ट्र-शासन का अधिकार जमाया। इस राज्य-विस्तार से हर प्रकार के लोगों का कर्त्तव्यक्षेत्र बढ़ गया। अनेक प्रकार के उद्योगों द्वारा व्यवसाय में सैकड़ों घरानों का उदय हुआ। इनमें से अनेक लोगों के वतन अब भी विद्यमान हैं। इनके उस समय के उद्योगों की कथाओं से महाराष्ट्र-काल का इतिहास बड़ा ही मनोरञ्जक हो गया है। सारस्वत तक समस्त ब्राह्मण, मराठे, परभू, वैश्य और सब प्रकार के कला प्रवीण साहूकार इत्यादि प्राय बड़ी तेज़ी के साथ उन्नति करने लगे। इन सब का हाल जानने के लिए बड़ी पुस्तक पढ़नी चाहिए। शाहू के दरबार में उनके निज का काम-काज करने वाले चिटणीस गोविन्द खंडो की निस्पृहता और राष्ट्र सेवा, तथा उसके बाप और बाबा का अनुपम स्वार्थ-त्याग प्रशंसनीय है। इस चिटणीस घराने ने लेखनी ही पकड़ी थी और सरंजामी सरदार पद का त्याग किया था। लेकिन राष्ट्र के इतिहास को लेखबद्ध करने का सौभाग्य उसी को प्राप्त हुआ। ऐसे कितने ही कुटुम्बों की नामावली दी जा सकती है जिसको देने के लिए यहाँ स्थान नहीं है।

इस प्रकार पेशवाओं द्वारा शुरू किया गया उद्योग उन्नत होने लगा परन्तु मराठे सरदार सब एक मत होकर न रहते थे। इसलिए उनकी सत्ता चिरस्थायी न रही। बाजीराव को पैसे की बड़ी अड़चन पड़ती थी। उसके ऊपर कर्ज भी अधिक हो गया था। सन् १७४० में उत्तर-भारत पर आक्रमण करने के लिए जाते समय मार्ग में नर्मदा के तट पर अकस्मात् उसने शरीर त्याग किया। वह "गुरीला" ढङ्ग की लड़ाई लड़ना खूब जानता था। वह शूर और यशस्वी योद्धा था। उसके समय में अनेक लोगों की प्रसिद्धि हुई। बाजीराव के दो पुत्र—बालाजी राव और रघुनाथ राव थे। चिमणाजी अप्पा भी इसी वर्ष दिसम्बर मास की १७ तारीख को मर गया। उसके लड़के का नाम सदाशिव राव था। ये तीनों ही आगे चलकर प्रसिद्ध हुए।

(४) पेशवा नाना साहब—इसके समय में रघूजी भोंसले और फतहसिंह भोंसले ने कर्नाटक पर आक्रमण करके त्रिचनापल्ली पर अधिकार किया। वहाँ मुरारराव घोरपड़े को प्रबन्ध के लिए नियुक्त करके तथा तजौर के महाराष्ट्र-राजा को तंग करनेवाले कर्नाटक के नवाब दोस्तअली को मार कर उसके दामाद चंदा साहब को सतारा लाकर कैद कर दिया था। बाजीराव के मरने पर उसके बड़े लड़के बालाजी उर्फ नाना साहब को शाहू ने पेशवाई का पद दिया। वह भी अत्यन्त चतुर था। अपने पूर्वजों के द्वारा किये हुए कार्य को उसने जोरों के साथ आगे बढाया। नागपुर के भोसले और बड़ौदे के गायकवाड़ ये दोनों ही नाना साहब के विरुद्ध थे। ये चाहते थे कि पेशवा के प्रतिबन्ध में न रहकर उसका नाश करके स्वतन्त्रता से राज्य करें। गायकवाड़ ने गुजरात प्रान्त पर अपनी सत्ता जमाई थी और भोंसलों

पेशवा दक्षिण से उत्तर तक घूम-फिर कर महाराष्ट्र-सत्ता का विस्तार करने लगा। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रान्तों में मराठे सरदारों की राजधानियाँ बन गईं। ग्वालियर, धार, सागर, झाँसी, इंदौर, नागपुर, बड़ौदा अक्कल कोट इत्यादि स्थानों में मराठों का शासन होने लगा और उनका ज़ोर धीरे धीरे इतना बढ़ा कि लगभग एक सौ वर्ष तक उनकी सत्ता सार्वभौम कायम रही। इस प्रकार मराठा सरदारों ने मुग़ल बादशाही को चारों तरफ से घेर लिया। बाजीराव के भाई चिमणाजी अप्पा ने सन् १७३९ में पुर्त्तगीज़ लोगों से बसई छीन कर कोंकन के किनारे पर महाराष्ट्र शासन का अधिकार जमाया। इस राज्य-विस्तार से हर प्रकार के लोगों का कर्त्तव्यक्षेत्र बढ़ गया। अनेक प्रकार के उद्योगों द्वारा व्यवसाय में सैकड़ों घरानों का उदय हुआ। इनमें से अनेक लोगों के वतन अब भी विद्यमान हैं। इनके उस समय के उद्योगों की कथाओं से महाराष्ट्र-काल का इतिहास बड़ा ही मनोरञ्जक हो गया है। सारस्वत तक समस्त ब्राह्मण, मराठे, परभू, वैश्य और सब प्रकार के कला प्रवीण साहूकार इत्यादि प्राय बड़ी तेज़ी के साथ उन्नति करने लगे। इन सब का हाल जानने के लिए बड़ी पुस्तक पढ़नी चाहिए। शाहू के दरबार में उनके निज का काम-काज करने वाले चिटणीस गोविन्द खंडो की निस्पृहता और राष्ट्र सेवा, तथा उसके बाप और बाबा का अनुपम स्वार्थ-त्याग प्रशंसनीय है। इस चिटणीस घराने ने लेखनी ही पकड़ी थी और सरंजामी सरदार पद का त्याग किया था। लेकिन राष्ट्र के इतिहास को लेखबद्ध करने का सौभाग्य उसी को प्राप्त हुआ। ऐसे कितने ही कुटुम्बों की नामावली दी जा सकती है जिसको देने के लिए यहाँ स्थान नहीं है।

इस प्रकार पेशवाओं द्वारा शुरू किया गया उद्योग उन्नत होने लगा परन्तु मराठे सरदार सब एक मत होकर न रहते थे। इसलिए उनकी सत्ता चिरस्थायी न रही। बाजीराव को पैसे की बड़ी अड़चन पड़ती थी। उसके ऊपर कर्ज भी अधिक हो गया था। सन् १७४० में उत्तर-भारत पर आक्रमण करने के लिए जाते समय मार्ग में नर्मदा के तट पर अकस्मात् उसने शरीर त्याग किया। वह "गुरीला" ढङ्ग की लड़ाई लड़ना खूब जानता था। वह शूर और यशस्वी योद्धा था। उसके समय में अनेक लोगों की प्रसिद्धि हुई। बाजीराव के दो पुत्र—बालाजी राव और रघुनाथ राव थे। चिमणाजी अप्पा भी इसी वर्ष दिसम्बर मास की १७ तारीख़ को मर गया। उसके लड़के का नाम सदाशिव राव था। ये तीनों ही आगे चलकर प्रसिद्ध हुए।

( ४ ) पेशवा नाना साहब—इसके समय में रघूजी भोंसले और फतहसिंह भोंसले ने कर्नाटक पर आक्रमण करके त्रिचनापल्ली पर अधिकार किया। वहाँ मुरारराव घोरपड़े को प्रबन्ध के लिए नियुक्त करके तथा तजौर के महाराष्ट्र-राजा को तंग करनेवाले कर्नाटक के नवाब दोस्तअली को मार कर उसके दामाद चन्दा साहब को सतारा लाकर क़ैद कर दिया था। बाजीराव के मरने पर उसके बड़े लड़के बालाजी उर्फ नाना साहब को शाहू ने पेशवाई का पद दिया। वह भी अत्यन्त चतुर था। अपने पूर्वजों के द्वारा किये हुए कार्य को उसने जोरों के साथ आगे बढाया। नागपुर के भोंसले और बड़ौदे के गायकवाड़ ये दोनों ही नाना साहब के विरुद्ध थे। ये चाहते थे कि पेशवा के प्रतिबन्ध में न रहकर उसका नाश करके स्वतन्त्रता से राज्य करें। गायकवाड़ ने गुजरात-प्रान्त पर अपनी सत्ता जमाई थी और भोंसलों

पेशवा दक्षिण से उत्तर तक घूम-फिर कर महाराष्ट्र-सत्ता का विस्तार करने लगा। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रान्तों में मराठे सरदारों की राजधानियाँ बन गईं। ग्वालियर, धार, सागर, झाँसी, इंदौर, नागपुर, बड़ौदा अकल कोट इत्यादि स्थानों में मराठों का शासन होने लगा और उनका ज़ोर धीरे धीरे इतना बढ़ा कि लगभग एक सौ वर्ष तक उनकी सत्ता सार्वभौम कायम रही। इस प्रकार माराठा सरदारों ने मुग़ल-बादशाही को चारों तरफ़ से घेर लिया। बाजीराव के भाई चिमणाजी अप्पा ने सन् १७३९ में पुर्त्तगीज़ लोगों से बसई छीन कर कोंकन के किनारे पर महाराष्ट्र-शासन का अधिकार जमाया। इस राज्य-विस्तार से हर प्रकार के लोगों का कर्त्तव्यक्षेत्र बढ़ गया। अनेक प्रकार के उद्योगों द्वारा व्यवसाय में सैकड़ों घरानों का उदय हुआ। इनमें से अनेक लोगों के वतन अब भी विद्यमान हैं। इनके उस समय के उद्योगों की कथाओं से महाराष्ट्र-काल का इतिहास बड़ा ही मनोरञ्जक हो गया है। सारस्वत तक समस्त ब्राह्मण, मराठे, परभू, वैश्य और सब प्रकार के कला प्रवीण साहूकार इत्यादि प्राय बड़ी तेज़ी के साथ उन्नति करने लगे। इन सब का हाल जानने के लिए बड़ी पुस्तक पढ़नी चाहिए। शाहू के दरबार में उनके निज का काम-काज करने वाले चिटणीस गोविन्द खंडो की निस्पृहता और राष्ट्र सेवा, तथा उसके बाप और बाबा का अनुपम स्वार्थ-त्याग प्रशंसनीय है। इस चिटणीस घराने ने लेखनी ही पकड़ी थी और सरंजामी सरदार पद का त्याग किया था। लेकिन राष्ट्र के इतिहास को लेखबद्ध करने का सौभाग्य उसी को प्राप्त हुआ। ऐसे कितने ही कुटुम्बों की नामावली दी जा सकती है जिसको देने के लिए यहाँ स्थान नहीं है।

इस प्रकार पेशवाओं द्वारा शुरू किया गया उद्योग उन्नत होने लगा परन्तु मराठे सरदार सब एक मत होकर न रहते थे। इसलिए उनकी सत्ता चिरस्थायी न रही। बाजीराव को पैसे की बड़ी अड़चन पड़ती थी। उसके ऊपर कर्ज़ भी अधिक हो गया था। सन् १७४० में उत्तर-भारत पर आक्रमण करने के लिए जाते समय मार्ग में नर्मदा के तट पर अकस्मात् उसने शरीर त्याग किया। वह "गुरीला" ढङ्ग की लड़ाई लड़ना खूब जानता था। वह शूर और यशस्वी योद्धा था। उसके समय में अनेक लोगों की प्रसिद्धि हुई। बाजीराव के दो पुत्र—बालाजी राव और रघुनाथ राव थे। चिमणाजी अप्पा भी इसी वर्ष दिसम्बर मास की १७ तारीख़ को मर गया। उसके लड़के का नाम सदाशिव राव था। ये तीनों ही आगे चलकर प्रसिद्ध हुए।

(४) पेशवा नाना साहब—इसके समय में रघूजी भोंसले और फतहसिंह भोंसले ने कर्नाटक पर आक्रमण करके त्रिचनापल्ली पर अधिकार किया। वहाँ मुरारराव घोरपड़े को प्रबन्ध के लिए नियुक्त करके तथा तञ्जौर के महाराष्ट्र राजा को तंग करनेवाले कर्नाटक के नवाब दोस्तअली को मार कर उसके दामाद चंदा साहब को सतारा लाकर कैद कर दिया था। बाजीराव के मरने पर उसके बड़े लड़के बालाजी उर्फ नाना साहब को शाहू ने पेशवाई का पद दिया। वह भी अत्यन्त चतुर था। अपने पूर्वजों के द्वारा किये हुए कार्य को उसने जोरों के साथ आगे बढाया। नागपुर के भोसले और बड़ोदे के गायकवाड़ ये दोनों ही नाना साहब के विरुद्ध थे। ये चाहते थे कि पेशवा के प्रतिबन्ध में न रहकर उसका नाश करके स्वतन्त्रता से राज्य करें। गायकवाड़ ने गुजरात प्रान्त पर अपनी सत्ता जमाई थी और भोंसलों

पेशवा दक्षिण से उत्तर तक घूम-फिर कर महाराष्ट्र-सत्ता का विस्तार करने लगा। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रान्तों में मराठे सरदारों की राजधानियाँ बन गईं। ग्वालियर, धार, सागर, झाँसी, इंदौर, नागपुर, बड़ौदा अक्कल कोट इत्यादि स्थानों में मराठों का शासन होने लगा और उनका ज़ोर धीरे धीरे इतना बढ़ा कि लगभग एक सौ वर्ष तक उनकी सत्ता सार्वभौम कायम रही। इस प्रकार मराठा सरदारों ने मुग़ल-बादशाही को चारों तरफ से घेर लिया। बाजीराव के भाई चिमणाजी अप्पा ने सन् १७३९ में पुर्त्तगीज लोगों से बसई छीन कर कोंकण के किनारे पर महाराष्ट्र-शासन का अधिकार जमाया। इस राज्य-विस्तार से हर प्रकार के लोगों का कर्त्तव्यक्षेत्र बढ़ गया। अनेक प्रकार के उद्योगों द्वारा व्यवसाय में सैकड़ों घरानों का उदय हुआ। इनमें से अनेक लोगों के वतन अब भी विद्यमान हैं। इनके उस समय के उद्योगों की कथाओं से महाराष्ट्र-काल का इतिहास बड़ा ही मनोरञ्जक हो गया है। सारस्वत तक समस्त ब्राह्मण, मराठे, परभू, वैश्य और सब प्रकार के कला प्रवीण साहूकार इत्यादि प्राय बड़ी तेज़ी के साथ उन्नति करने लगे। इन सब का हाल जानने के लिए बड़ी पुस्तक पढ़नी चाहिए। शाहू के दरबार में उनके निज का काम-काज करने वाले चिटणीस गोविन्द खंडो की निस्पृहता और राष्ट्र-सेवा, तथा उसके बाप और बाबा का अनुपम स्वार्थ-त्याग प्रशंसनीय है। इस चिटणीस घराने ने लेखनी ही पकड़ी थी और सरंजामी सरदार पद का त्याग किया था। लेकिन राष्ट्र के इतिहास को लेखबद्ध करने का सोभाग्य उसी को प्राप्त हुआ। ऐसे कितने ही कुटुम्बों की नामावली दी जा सकती है जिसको देने के लिए यहाँ स्थान नहीं है।

इस प्रकार पेशवाओं द्वारा शुरू किया गया उद्योग उन्नत होने लगा परन्तु मराठे सरदार सब एक मत होकर न रहते थे। इसलिए उनकी सत्ता चिरस्थायी न रही। बाजीराव को पैसे की बड़ी अड़चन पड़ती थी। उसके ऊपर क़र्ज़ भी अधिक हो गया था। सन् १७४० में उत्तर-भारत पर आक्रमण करने के लिए जाते समय मार्ग में नर्मदा के तट पर अकस्मात् उसने शरीर त्याग किया। वह "गुरीला" ढङ्ग की लड़ाई लड़ना खूब जानता था। वह शूर और यशस्वी योद्धा था। उसके समय में अनेक लोगों की प्रसिद्धि हुई। बाजीराव के दो पुत्र—बालाजी राव और रघुनाथ राव थे। चिमणाजी अप्पा भी इसी वर्ष दिसम्बर मास की १७ तारीख को मर गया। उसके लड़के का नाम सदाशिव राव था। ये तीनों ही आगे चलकर प्रसिद्ध हुए।

( ४ ) पेशवा नाना साहब—इसके समय में रघूजी भोंसले और फतहसिंह भोंसले ने कर्नाटक पर आक्रमण करके त्रिचनापल्ली पर अधिकार किया। वहाँ मुरारराव घोरपडे को प्रबन्ध के लिए नियुक्त करके तथा तजौर के महाराष्ट्र राजा को तग करनेवाले कर्नाटक के नवाब दोस्तअली को मार कर उसके दामाद चन्दा साहब को सतारा लाकर क़ैद कर दिया था। बाजीराव के मरने पर उसके बड़े लड़के बालाजी उर्फ़ नाना साहब को शाहू ने पेशवाई का पद दिया। वह भी अत्यन्त चतुर था। अपने पूर्वजों के द्वारा किये हुए कार्य को उसने जोरों के साथ आगे बढाया। नागपुर के भोंसले और बड़ोदे के गायकवाड़ ये दोनों ही नाना साहब के विरुद्ध थे। ये चाहते थे कि पेशवा के प्रतिबन्ध में न रहकर उसका नाश करके स्वतन्त्रता से राज्य करें। गायकवाड़ ने गुजरात-प्रान्त पर अपनी सत्ता जमाई थी और भोंसलों

ने नागपुर व ठेठ बंगाल तक का देश अपने अधिकार में किया था।

पेशवा नाना साहब पर शाहू का पुत्रवत् स्नेह था। जिस समय उसे पेशवाई मिली उस समय उसकी अवस्था केवल १८ वर्ष की थी। शीघ्र ही बाजाराव और चिम्माजी अप्पा के द्वारा किये गये उद्योग, को सफल करने का नाना साहब ने सकल्प किया। वह स्वभाव से गम्भीर, लिखने में कुशल, व्यवहार मे चतुर और बातचीत में दूसरे पर प्रभाव डालनेवाला था। उसने कोल्हापुर के महाराज सम्भाजी के साथ मैत्री कर ली थी। निजाम से मिलकर उसने उसे अपना लिया था। उत्तर भारत में बुन्देलखंड, प्रयाग, काशी, गया, मुर्शिदाबाद तक आक्रमण कर उन प्रान्तों में मराठों की धाक जमा दी थी। दिल्ली के बादशाह से मालवा की सूबेदारी मराठों के लिए लिखा ली थी। पहले रघुजी भोंसले पेशवों के बहुत विरुद्ध रहता था। इसीलिए नाना साहब ने युद्ध में शाहू के द्वारा उसका गर्व नष्ट करा के उसके साथ सन्धि करके स्नेह स्थापित किया। प्रतिनिधि और आँगरे भी पेशवा के विरुद्ध थे। इनमें से प्रतिनिधि के हाथ में कोई सत्ता न थी। सन् १७५६ में नाना साहब ने अगरेजों की सहायता लेकर आँगरे को हराया। अगरेजों ने बम्बई-द्वीप लेकर उस पर अपनी बस्ती बसाई थी। पेशवों ने पुर्त्तगीजों का नाश करके पश्चिमी किनारे पर अंगरेजों का एक शत्रु कम कर दिया था और नाना साहब ने अगरेज़ों को सहायता देकर आँगरे का पतन किया। इससे पश्चिमी किनारे पर अगरेज़ों को कोई रोक-टोक करनेवाला न रहा। अपने जहाजी बेडे को स्वय ही डुबाना पेशवा की बड़ी भारी भूल थी।

ने सतारा छोड़कर पूना में ही अपना सारा कार्य शुरू किया और प्रतिनिधि, सचिव इत्यादि मंडली के साथ स्वतंत्र संधि कर के ताराबाई हार कर बैठ रही। उधर ताराबाई ने रामराजा को सतारा के क़िले में सख्त क़ैद कर पेशवा के साथ विरोध खड़ा किया। किन्तु इस विरोध का कुछ फल न हुआ और वह सन् १७६१ में ९ नवम्बर को मर गई। रामराजा को वास्तव में ताराबाई के नाती न होने की बात पीछे प्रकट हुई। इससे मराठों में बड़ा प्रपंच उठ खड़ा हुआ। उसमें चतुरता भी न थी। और इधर राज-वंश के साथ कृत्रिम सम्बन्ध खुलने से छत्रपति के राज्य का विलक्षण उत्तरदायित्व भी आ पड़ा। इससे कोल्हापुर और सतारा दोनों के ही राज्य का क्षय हुआ।

पेशवे पूने में रहने लगे। इससे सतारा का महत्त्व कम होकर पूना ही आगे मराठा-राज्य की राजधानी बना। भिन्न भिन्न सरदारों के एक होकर एक साथ उद्योग करने की पद्धति शिवाजी ने चलाई थी। लेकिन बादशाह के आक्रमण के समय से इस पद्धति का नाश हो गया और एक दूसरे से अलग रह कर उद्योग करने वाले, सरंजामी सरदार बन कर वे अपने अपने स्वार्थ की पूर्ति करने लगे। उनको एक सूत्र में बाँधने का काम शाहू ने केवल अपने प्रभाव से थोड़ा-बहुत किया था। उसकी मृत्यु ने यह एक बन्धन भी तोड़ दिया। इससे मराठा मंडल में फूट फैल गई। इस फूट को दूर करने का प्रयत्न कुछ समय तक पेशवों ने किया, लेकिन जब उन्हीं के घर में कलह उठ खड़ी हुई तब अन्त में राज्य का नाश हो गया।

---

ने सतारा छोड़कर पूना में ही अपना सारा कार्य शुरू किया और प्रतिनिधि, सचिव इत्यादि मंडली के साथ स्वतंत्र संधि कर के ताराबाई हार कर बैठ रही। उधर ताराबाई ने रामराजा को सतारा के क़िले में सख़्त क़ैद कर पेशवा के साथ विरोध खड़ा किया। किन्तु इस विरोध का कुछ फल न हुआ और वह सन् १७६१ में ९ नवम्बर को मर गई। रामराजा को वास्तव में ताराबाई के नाती न होने की बात पीछे प्रकट हुई। इससे, मराठों में बड़ा प्रपंच उठ खड़ा हुआ। उसमे चतुरता भी न थी। और इधर राज-वंश के साथ कृत्रिम सम्बन्ध खुलने से छत्रपति के राज्य का विलक्षण उत्तरदायित्व भी आ पड़ा। इससे कोल्हापुर और सतारा दोनों के ही राज्य का क्षय हुआ।

पेशवे पूने में रहने लगे। इससे सतारा का महत्त्व कम होकर पूना ही आगे मराठा-राज्य की राजधानी बना। भिन्न भिन्न सरदारों के एक होकर एक साथ उद्योग करने की पद्धति शिवाजी ने चलाई थी। लेकिन बादशाह के आक्रमण के समय से इस पद्धति का नाश हो गया और एक दूसरे से अलग रह कर उद्योग करने वाले, सरंजामी सरदार बन कर वे अपने अपने स्वार्थ की पूर्ति करने लगे। उनको एक सूत्र में बाँधने का काम शाहू ने केवल अपने प्रभाव से थोड़ा-बहुत किया था। उसकी मृत्यु ने यह एक बन्धन भी तोड़ दिया। इससे मराठा मडल में फूट फैल गई। इस फूट को दूर करने का प्रयत्न कुछ समय तक पेशवों ने किया, लेकिन जब उन्हीं के घर में कलह उठ खड़ी हुई तब अन्त में राज्य का नाश हो गया।

---

# नवाँ अध्याय

## छत्रपति रामराजा, पेशवा नाना साहब

सन् १७५०-१७६१

१—राज्य विस्तार के दो विभाग २—उत्तर-भारत में चौथवसूली का अधिकार
३—दत्ताजी सिंधिया का वध ४—पानीपत का भीषण संग्राम

(१) राज्य-विस्तार के दो विभाग—मराठों का राज्य उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों ही देशों में फैल रहा था। इनमें से दक्षिण भारत में महाराष्ट्र-शक्ति के विस्तार करने का कार्य शाहू ने कोल्हापुर के संभाजी को सौंप दिया था और उत्तर-भारत में महाराष्ट्र-शक्ति के विस्तार का भार स्वयं शाहू ने अपने हाथ में लिया था। किन्तु जिस प्रकार शाहू ने नवीन सरदारों को जमाकर जोरों के साथ उत्तर-भारत में महाराष्ट्र-शक्ति की स्थापना करने का कार्य किया था, वैसे ही उत्साह के साथ दक्षिण-भारत में संभाजी ने कोई काम न किया। दक्षिण में तंजौर भोंसलों का छोटा सा राज्य शाहजी के समय से ही अनेक शत्रुओं से अपनी रक्षा करता हुआ निर्वाह कर रहा था। उसकी रक्षा और शिवाजी-द्वारा जीते हुए भूभाग की रक्षा करने के लिए शाहू ने ७ आक्रमण करवाये थे। इस ओर के कार्य को जारी रखने के लिए शाहू की मृत्यु के बाद नाना साहब ने भी ध्यान दिया और

लगा। इनमें नजीबखाँ नाम का एक रुहेला सरदार, मुखिया था। उसने बादशाह की माँ से मिलकर और उसकी सम्मति प्राप्त कर मराठों को शिथिल करने का उद्योग किया। इसी अभिप्राय से उसने अब्दाली को हर प्रकार की सहायता देकर उसे बार बार भारत में आने के लिए प्रेरित किया। इस षड्यंत्र को निष्फल करने के लिए पेशवा ने रघुनाथराव को सिन्धे और होलकर की सहायता के लिए भेजा। इस प्रकार मराठों और अब्दाली के बीच झगड़े की जड़ पड़ी, उसका अन्त पानीपत के मैदान में ही हुआ।

सैकड़ों वर्षों से जमे हुए मुसलमानों के राज्य के इस समय मराठों-द्वारा जीते जाने का अनुमान लोगों को हो रहा था। वास्तव में दिल्ली की बादशाही जीतने का काम हाथ में न लिया गया था। मराठे उत्तर भारत पर आक्रमण करने लगे थे। उस समय वहाँ के लोगों को बड़ा दु ख हुआ। शिवाजी की चलाई पद्धति का नाश इस समय तक हो चुका था। धन का अभाव होने लगा था। इसलिए मराठे लोग मनमानी लूट करने लग गये थे। प्राय लूट के अभिप्राय से ही वे लोग लड़ाई में जाते थे। उस समय राजपूत इत्यादि उत्तर के हिन्दू लोगों को मराठों की लूट-पाट से बड़ा दु ख हुआ। इससे मराठो की उद्देशसिद्धि में अड़चनें आने लगीं। उन पर प्रभाव जमाने में रघुनाथराव अशक्त था। उत्तर में लड़नेवाले सरदारों को वश में रखने तथा उनसे काम कराने की शक्ति भी उसमें न थी। उसका व्यवहार भी शुद्ध न था। इससे किसी भी प्रश्न में वह स्वयं कोई बात निश्चय न कर सकता था। इसलिए उद्योगशील मराठे सरदारों को वह एक दूसरे के साथ मेल करा कर न रख सका। सिन्धिया और होल्कर में बिगड़ रही थी। इस वैमनस्य का अन्त भी रघुनाथराव न कर

सका। कुम्भेरी पर घेरा डालते समय मल्हारराव का लड़का प्रसिद्ध अहिल्याबाई का पति खण्डेराव होल्कर १७ ३ १७५४ को गोली लगने से मर गया। इससे होल्कर अत्यधिक चिढ़ गया। इससे जयापा रुठ कर मारवाड़ की ओर चला गया। वहाँ राजपूतों ने नागौर में उसे मार डाला (३० ६ १७५५)।

इधर नजीबखाँ ये सब बातें अब्दाली को अच्छी तरह बता कर भारत पर उसे चढ़ा लाया। उसने आकर दिल्ली पर सन् १७५७ में अधिकार जमा लिया। इस प्रकार दिल्ली लेकर वह दक्षिण की ओर बढ़ा और उसने मथुरा के हिन्दू-देवालय को नष्ट कर दिया और उसे लूटा। इसी समय उसने दिल्ली को अपने अधिकार में रखने का पक्का प्रबन्ध करना चाहा, लेकिन उसकी फौज में महामारी फैल जाने से उसके सिपाही अफगानिस्तान को लौटने लगे।

अब्दाली का प्रबन्ध करने के लिए फिर भी रघुनाथराव को ही पेशवा ने दिल्ली भेजा। उसके दिल्ली पहुँचने तक अहमदशाह दिल्ली से निकल गया था। रघुनाथराव ने दिल्ली का प्रबंध कर पञ्जाब पर चढ़ाई की। पञ्जाब की रक्षा उस समय अहमदशाह अब्दाली का लड़का तैमूरशाह कर रहा था। उसको भी मराठों ने मार भगाया और अटक तक उसका पीछा करके सिन्धु नदी का पानी दक्षिण के घोड़ों को पिलया ( सन् १७५८ )। बस यहाँ मराठों के उत्कर्ष की सीमा का अन्त हुआ। मराठों का झंडा अटक पर फहरा गया। नजीबखाँ इत्यादि मुसलमान सरदारों को मराठों की यह विजय बेतरह खटकी। पञ्जाब का पक्का प्रबन्ध किये बिना ही रघुनाथराव दिल्ली को लौट पड़ा। वहाँ के बन्दोबस्त का कार्य उसने दत्ताजी सिन्धिया को सौंप दिया। इस

१७६८ में नासिक के समीप धोड़प किले के पास लड़ाई हुई इस लड़ाई में माधवराव ने रघुनाथराव को कैद कर पूने में शनिवार वाड़े में अच्छा प्रबंध करके रक्खा। यह कैद सिर्फ बाहर की राजनीति से रघुनाथराव को अलग रखने के लिए थी। इस प्रकार रघुनाथराव को ठीक ठिकाने बैठाकर माधवराव राज कार्य निर्विघ्न चलाने लगा। कैद में भी रहकर अनेक प्रकार की कार्रवाइयाँ करने में रघुनाथराव ने कमी न की।

(३) बादशाही की दिल्ली मे स्थापना—आगे के चार वर्षों में माधवराव का उद्योग निर्विघ्न रूप में बड़ी शीघ्रता से सफल होने लगा। नागपुर के भोंसले बहुधा मराठा-शक्ति के उद्योग में सम्मिलित न होकर अपनी स्वतन्त्रता जताते थे और मराठों के शत्रुओं से मिलकर हानि पहुँचाते थे। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए माधवराव ने नागपुर पर आक्रमण करके जानोजी भोंसले का अहंकार ढीला किया और कनकापुर में उसके साथ सधि कर आगे के उद्योग का मार्ग निश्चित किया। यह सधि माधवराव की कार्य कुशलता का द्योतक है। भोंसले पर गई हुई फ़ौजें वहाँ से सीधा उत्तर-भारत की ओर चली गईं। इन फ़ौजों के साथ माधवराव ने चार मुख्य सरदार भेजे थे। इनके नाम महादजी सिंधिया, तुकोजी होल्कर, रामचन्द्र गणेश कानडे, और विसाजी कृष्ण बिनीवाले थे। इन सरदारों को आदेश दिया गया था कि वे उत्तर-भारत में मराठों का शासन पूर्णरूप से स्थिर करके बादशाह शाहआलम को लाकर दिल्ली की मसनद पर फिर बैठा दें और उससे पूर्व की प्रतिज्ञाएँ पूरी कराई जायँ। बड़ी मेहनत और ३ वर्ष के लगातार परिश्रम के बाद



नाना फड़नवीस



महादा जा सधिया।

इन सरदारों ने सब काम यथावत् सफल किये। सन् १७७१ के अन्त में बादशाह को दिल्ली लाकर सिंहासन पर बैठा दिया और इस प्रकार पानीपत से पहले अधूरा रहा हुआ काम पूरा करने से देश भर में माधवराव का यश फैल गया। नजीबखाँ इत्यादि विद्रोही रुहेलों को परास्त कर उनके द्वारा की गई हानि का पूरा पूरा प्रतिशोध लिया गया। दत्ताजी सिंधिया के वध का प्रतिशोध लेने पर महादजी सिंधिया को पूरा पूरा संतोष हुआ। इसी से महादजी का नाम महाराष्ट्र-इतिहास में इतना अधिक प्रसिद्ध हुआ।

इसके अतिरिक्त माधवराव ने अपनी छोटी उमर में ही हैदर को परास्त किया। उसने निजाम के साथ मेल किया। नागपुर के भोंसलों को महाराष्ट्र के उद्योग में सम्मिलित किया। ऐसी रीति से प्रारंभ से चलाये गये हिन्दू-पद-पातशाही के उद्देश में उसने सर्वांगीण सफलता प्राप्त की। इस कार्य को करने के लिए माधवराव के समय में अनेक नवीन कार्य-कर्त्ता तैयार हुए। उस समय के कार्यकर्त्ताओं में सखाराम बापू, मोरोबा दादा, नानाफड़नवीस, गोविंद शिवराम खासगी-वाले, मानाजी फाकडे, सखाराम हरि गुप्ते, महादजी वल्लाल, गुरूजी गोपालराव पटवर्धन, चिंतो विट्ठल, गंगाधर यशवंत विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्हीं लोगों के कारण पानीपत में मारे गये नेताओं का अभाव लोगों को नहीं खला। माधवराव के उद्योग का यह परिणाम था।

(४) माधवराव की अकाल-मृत्यु—माधवराव का शरीर दुर्बल था ही, इसलिये दस-बारह वर्षों की कड़ी मेहनत का भार पड़ने

से उसे क्षय रोग ने धर पकड़ा। धीरे धीरे यह व्याधि प्रबल होती गई और २८ वर्ष की अल्पावस्था में थेंडर ग्राम में १८ नवम्बर सन् १७७२ को उसकी मृत्यु हो गई। उस समय उसकी स्त्री रमाबाई उसके साथ सती हो गई। उसकी माँ गोपिकाबाई पहले से ही नासिक के समीप गङ्गापुर में तीर्थवास करती थी, उसने फिर कभी पूना नहीं देखा। माधवराव के कोई लड़का न था। नारायणराव उसका छोटा भाई सत्रह वर्ष का था। माधवराव ने पेशवाई वस्त्र नारायणराव को देने और सखाराम बापू व नाना नवीस को राज्य भार सँभालने का निर्णय मरने के समय किया था। शौर्य, न्याय, निष्पक्षपात, चतुरता तथा शासन-सुप्रबन्ध की दृष्टि से माधवराव अपने कुल में एक ही जन्मा था। उसके न्यायाधीश रामशास्त्री प्रभुणे की कीर्त्ति महाराष्ट्र में आज भी गाई जाती है। वास्तव में माधवराव के चल बसने से महाराष्ट्र की भारी हानि हुई। इतनी बड़ी हानि पानीपत के संहार से भी न हुई थी। माधवराव की मृत्यु होते ही महाराष्ट्र के अध:पतन का समय प्रारम्भ हुआ।

(५) मुरारराव घोरपडे—शिवाजी के पहले उद्योग से ही जिन मराठे घरानों ने कितने ही शताब्दियों तक बराबर मेहनत की थी, उनमें घोरपड़े का घराना मुख्य है। औरङ्गजेब को वश में करने वाला सन्ताजी घोरपड़े का वध होने पर उसका भाई बहीरजी आगे आया। इस बहीरजी के नाती मुरारराव का चरित अनेक कारणों से बड़ा विचित्र है। उसका जन्म सन् १७०४ में हुआ और उसकी मृत्यु हैदरअली के श्रीरङ्गपट्टन के समीप कपालदुर्ग किले में सन १७७६ में हुई। इसके इतने लम्बे जीवन में जितने अनुभव और पराक्रम देखे जाते हैं उतने अन्य किसी

के जीवन में नहीं देखे गये। कृष्णा के दक्षिण पूर्व का कर्नाटक प्रदेश शिवाजी ने जीत लिया था। वहाँ गुत्ती की जागीर वश परम्परानुसार मुरारराव को मिली। कर्नाटक पर शाहू का आक्रमण होते ही उसमें मुरारराव सम्मिलित हुआ। मराठी फौजों द्वारा देश के जीते जाने पर उस प्रदेश का उत्तरदायित्व मुरारराव पर आ गया सन् १७४० में त्रिचनापली जीतकर चन्दा साहब को पकड़कर उसने उसे सतारा में ८ वर्ष तक कैद रक्खा। उस समय त्रिचनापली पर मुरारराव का अधिकार रहा। इसी बीच में अँग्रेजों और फ्रेंचों के परस्पर झगड़े शुरू हुए। उस समय उस झगड़े में मुरारराव की सहायता वहाँ के सत्ताधीश चाहते थे। अर्काट के घेरे के समय मुरारराव ने मुहम्मदअली को सहायता दी। इसके बाद नाना साहब और माधवराव के धावे हुए। इन धावों में मुरार राव का पराक्रम ख़ूब चमका। नारायणराव का वध हो जाने के बाद कर्नाटक में मराठों का प्रभाव घट गया और हैदरअली ने कर्नाटक में प्रलय करना प्रारम्भ किया। उसने गुत्ती पर अधिकार करके मुरारराव को हथकड़ी-बेड़ी डाल कैद में रक्खा। वहीं उसका हृदय-द्रावक अन्त हुआ।

# ग्यारहवाँ अध्याय

## नारायणराव और सवाई माधवराव

### सन् १७७२-१७९५

१—नारायणराव का वध २—अंग्रेज-मराठों का पहला युद्ध
३—महादजी द्वारा बादशाही का प्रबंध ४—खड़ी की लड़ाई
५—कर्ता पुरुष की मृत्यु

(१) नारायणराव का वध और राज्य का ह्रास— रघुनाथराव की यह इच्छा न थी कि वह स्वयं राज्य का शासन करे। किन्तु माधवराव के जीते जी उसकी यह इच्छा फलवती न हो पाई। माधवराव ने उसका कर्ज चुका कर उसका वेतन बाँध दिया था। इस प्रकार रह कर वह राज्य का उद्योग करता तो उसे किसी बात की कमी न थी। लेकिन भाई-बन्धुओं द्वारा आपस में झगड़ा खड़ा कर उसने राज्य की हानि की। वास्तव में पेशवा लोग छत्रपति के नोकर थे, लेकिन छत्रपतियों में दम न रहने से राज्य का भार पेशवाओं पर आ पड़ा। यद्यपि पेशवे भी अयोग्य हो गये, तो भी उनसे राज्याधिकार लेकर राज्य की दूसरी व्यवस्था करने का उपाय न हो सका। नाना साहब का सब से छोटा लड़का नारायणराव ही केवल इस समय जीवित था। उसने सतारा जाकर पेशवाई के वस्त्र प्राप्त किये। स्वभाव का हठी होने

से अपनी बातों द्वारा लोगों पर प्रभाव डाल कर शासन करने की योग्यता उसमें न थी। माधवराव के तेजस्वीपन का ही उसने अनुसरण किया। इससे अनेक लोग उससे नाराज या उदासीन हो गये। मार्च मास में वह अपनी माता से भेंट करने के लिए गगापुर गया। उसकी अनुपस्थिति में रघुनाथराव हैदरअली से षड्यन्त्र रचने लगा। उसका समाचार पाते ही नारायणराव तुरन्त वापस आया, और उसने अपने चाचा पर कड़ा पहरा बैठा दिया। इससे उसकी पूजा इत्यादि के नित्य नैमित्तिक कार्यों में अड़चन पड़ने लगी। रघुनाथराव नियमित जीवन व्यतीत करने वाला था। उसका नित्य-कर्म समय पर न होने से उसने भोजन त्याग दिया। इससे उसकी स्त्री भी उपवास करने लगी। सखाराम बापू इत्यादि कार्यकर्ताओं ने नारायणराव को बड़ी नम्रता के साथ समझाया, लेकिन उसने किसी की एक न सुनी। ऐसी स्थिति में ही बाहर के राज्य-सम्बन्धी काम की भी भरमार हुई। उस समय रघुनाथराव और उसकी स्त्री ने अनेक लोगों से विचार कर स्वयं कैद से निकल भागने और नारायणराव को कैद करने का षड्यन्त्र रचा। पेशवा के वाड़े में गारदी अर्थात् कवायद सीखे हुए पहरे पर रहनेवाले सिपाहियों के सरदार सुमेरसिंह और मुहम्मद यूसफ को अपनी ओर मिला कर रघुनाथराव ने उन्हें लिख कर हुक्म दिया कि नारायणराव को गिरफ्तार कर लो। ३० अगस्त सन् १७७३ को नारायणराव दोपहर के समय आराम कर रहा था। हजार पाँच सौ गारदी अपने वेतन का तक़ाज़ा करने के लिए पेशवा के वाड़े में घुस पड़े और उन्होंने नारायणराव को पकड़ कर तलवार से काट डाला। इस झगड़े में पेशवा के नौकर

भी जो उसे बचाने आये थे, मारे गये। इसके अतिरिक्त ७८ मनुष्यों का और भी ख़ून हुआ। शिव छत्रपति के गो-ब्राह्मण प्रतिपालन' के व्रत को चरितार्थ करनेवाले पेशवा के वाड़े में ही यह नर-हत्या देख कर विचारवानों की यह धारणा हो गई कि महाराष्ट्रों के अस्त का समय आ पहुँचा। इसके बाद रघुनाथराव ने पेशवाई के वस्त्र लाकर दो-तीन मास राज्य का प्रबन्ध किया। इसी अवधि में रामशास्त्री ने वारकों में अनुसन्धान करके यह निश्चय किया कि यह दुष्कृत्य स्वयं रघुनाथराव ने करवाया है। यह ख़बर फैलते ही लोगों में रघुनाथराव के प्रति कोपाग्नि भड़क उठी। उसने अवश्य ही पेशवाई के वस्त्र धारण किये थे। किन्तु स्त्री-हत्या, ब्रह्म-हत्या व गो-हत्या के कारण उसे पेशवा के अधिकार से च्युत करने के लिए सखाराम बापू ने बाहर की लड़ाइयों से लौट कर सारी कार्रवाई का पता युक्ति से लगा लिया, और गर्भवती गङ्गाबाई को पुरन्दर ले जाकर जनवरी सन् १७७४ से उसके नाम पर राज्य का प्रबन्ध करना शुरू किया। उसी समय से ख़ूनी अपराधियों को खोज खोज कर दण्ड दिया जाना शुरू किया गया। यह कार्य लगभग दस वर्ष तक चला। एक वर्ष के बाद सुमेरसिंह बीमार पड़ कर मर गया। महम्मद यूसुफ तथा रघुनाथराव के दरबार में रहनेवाले अन्य अनेक अपराधियों को कठिन दण्ड दिया गया।

पेशवा के यहाँ ऐसा गड़बड़ सुन निज़ाम हैदरअली इत्यादि की मंडली को बड़ा आनन्द हुआ। इनको परास्त करने के लिए रघुनाथराव दक्षिण की ओर गया। उसके साथ सखाराम बापू इत्यादि कारबारी और हरिपंत फड़के व त्रिंबकराव पेठे भी गये। मौक़ा पाकर इन लोगों ने राघोबा पर शस्त्र उठाया। २६ ३ १७७४ के दिन पंढरपुर के पास लड़ाई हुई। इसमें त्रिंबकराव

मारा गया, लेकिन हरिपन्त ने राघोबा का पीछा किया। रघुनाथराव भागता हुआ मालवा पहुँचा, लेकिन वहाँ सिन्धिया या होलकर ने उसे कुछ भी सहायता न दी। वहाँ से वह गुजरात पहुँचा। वहाँ सिन्धिया, होलकर और फड़के राघोबा का पीछा करते हुए पहुँचे। तब राघोबा ने सूरत पहुँच कर पेशवाई पाने की इच्छा से अँगरेजों की सहायता माँगी।

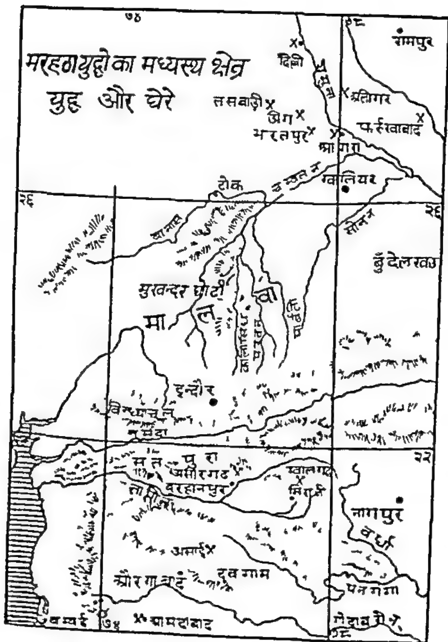
इधर पुरन्दर में १८-४-१७७४ के दिन गङ्गाबाई की कोख से लड़का उत्पन्न हुआ। इसका नाम सवाइ माधवराव रख कर कार्य-कर्त्ताओं की मण्डली ने उसके नाम से चालीसवें दिन पेशवाई के वस्त्र सतारा के रामराजा से लाकर राज्य का कार्य भार चलाना शुरु किया। राघोबा ने आनन्दीबाई को धार में छोड़ दिया था। वहाँ ७-१ १७७५ के दिन उसकी कोख से जो बालक उत्पन्न हुआ उसका नाम सवाई बाजीराव पड़ा। रामराजा की मृत्यु १७७७ में हुई और उसका दत्तक पुत्र द्वितीय शाहू गद्दी पर बैठा। राघोबा ने अंग्रेजों की सहायता माँग कर मराठों और अंग्रेजों के युद्ध का प्रारम्भ किया। यह युद्ध "अंग्रेजों और मराठों का पहला युद्ध" के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है।

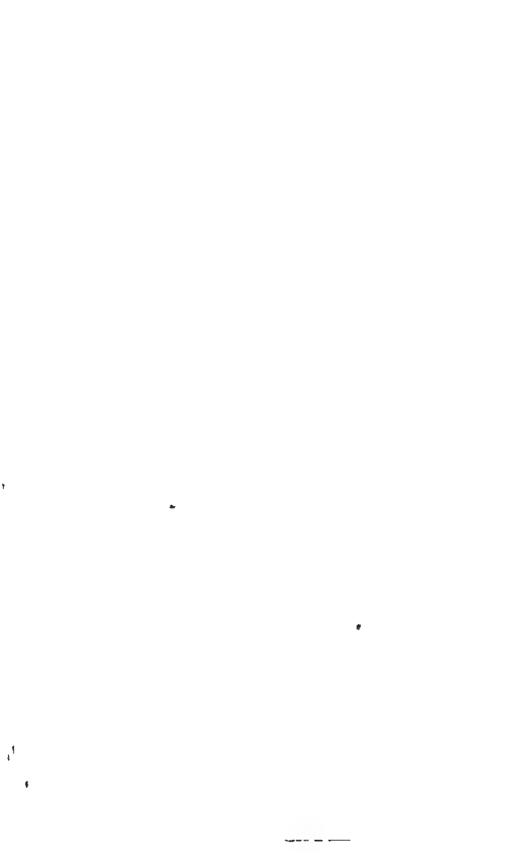
( २ ) प्रथम अंग्रेज-मराठा युद्ध—( १७७० ८२ )—बंगाल और मद्रास के प्रान्तों को जीत लेने के बाद अंग्रेजों की सत्ता भारत के पूर्वी किनारे पर स्थापित होते ही उनका ध्यान पश्चिमी किनारे की ओर गया। मराठों की बढ़ती हुई शक्ति को देख और उसे अपना बाधक समझ कर अंग्रेजों ने सन् १७७२ में मास्टिन को पूना में अपने राजदूत के रूप में नियत किया। नारायणराव के मारे जाने का लाभ उठाते हुए उन्होंने राघोबा को अपनी ओर मिला लिया। इस मामले में आगे चल कर वारेन हेस्टिंग्ज का सम्बन्ध हुआ।

विरुद्ध उठ खड़े हुए थे उनका भी ठीक ठीक प्रबन्ध किया इसके लिए महादजी ने फ्रेंच लोगों को नौकर रख उनसे अपने सिपाहियो को पाश्चात्य युद्ध-शिक्षा दिलाई और बादशाह से कह कर उसने "वजीरी" का पद पेशवा के नाम लिखा कर स्वय पेशवा का नायब बना।

यद्यपि दिखावे के लिए भिन्न भिन्न सरदार और अधिकारी दिल्ली में महादजी के अनुकूल हो गये थे, तथापि गुप्त रूप से वे महादजी के सर्वथा विरुद्ध थे। राजपूत और मुसलमान दोनों एकत्र होकर महादजी के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे, क्योंकि मराठों का शासन राजपूतों को नहीं पसन्द था। और मुसलमान इस लिए रूठे हुए थे कि उनकी जागीरें महादजी ने जब्त कर ली थीं। किन्तु दो-चार लड़ाइयों में ही महादजी ने उनको परास्त कर दिया। इस मामले में महादजी के साथ अबाजी इंगले, लखबा दादा बक्षी, गणेखान, खडेराव हरि, तुकोजी होल्कर और अली बहादुर इत्यादि ने अच्छा पराक्रम दिखाया। इनकी सहायता से महादजी ने दिल्ली में अपना प्रबन्ध सलफता पूर्वक किया। राजपूतों को जीत कर अजमेर, पुष्कर इत्यादि स्थान महादजी ने अपने अधिकार में किये। यह सब कार्य कर वह सन् १७९२ की गरमी की ऋतु में पूना आया। विजय प्राप्त कर पूना आने में उसकी बड़ी बड़ाई हुई। पूना में एक बड़ा दरबार करके बादशाह से प्राप्त हुए खिताब और खिलअत इत्यादि उसने पेशवा को अर्पित की। परन्तु कुछ दिनों बाद नाना और महादजी के बीच राज काज के मामले में तना तनी हो गई। लेकिन हरिपंत [illegible] दोनों में फिर मेल करा दिया। [illegible] के [illegible]

बहुत दिनों तक [illegible] । १ [illegible] दिन सब ज्वर से पीड़ित [illegible] देहान्त


मरहठायुद्धों का मध्यस्थ क्षेत्र
युद्ध और घेरे
७४
७८
२६
२६
२२
रामपुर
दिल्ली
लसवाड़ी
भरतपुर
फर्रुखाबाद
टोंक
बुंदेलखण्ड
इन्दौर
नर्मदा
सतपुरा
असीरगढ
बरहानपुर
नागपुर
वर्धा
असाई
औरंगाबाद
बम्बई
अहमदाबाद



हो गया। मरने के समय उसकी अवस्था ६७ वर्ष की थी। महाराष्ट्र-शक्ति के निर्माताओं में महादजी का भी नाम गिना जाता है। वह स्वभाव से शांत और धैर्यवान् था। चाहे जैसी बात बना कर दूसरे के चित्त की छिपी बात निकाल लेने में वह बड़ा प्रवीण था। लेकिन अपने चित्त का आशय कभी किसी पर नहीं प्रकट होने देता था। विपत्ति के समय उसकी शान्ति में जरा भी फर्क न पड़ता था। लेकिन हिसाब किताब और कारकुनी के काम में बिलकुल कोरा था। नाना फड़नवीस का स्वभाव इसके विपरीत था, अर्थात् कड़े बर्तावबाला, कभी किसी तरह की रियायत न करनेवाला, सकट में घबरा कर बावला सा बन जानेवाला, और हिसाब किताब में अत्यंत पटु था। नाना काम काज में पूरा अभ्यस्त होने से सभी बारीक से बारीक बातें याद रखता और उनका निरीक्षण स्वयं करता था। महादजी धीमी चाल चलनेवाला, ढीला और दीर्घसूत्री था। दोनों एक दूसरे से सहमत होते तभी राज का कारबार अच्छा चल पाता। एक दूसरे के बिना दोनों लगडे हो जाते। "बार भाई" की सभा में प्रधान मडली के अधिक मतानुसार शासन कार्य करने की उत्कृष्ट व्यवस्था हो गई थी। उसे नष्ट करके नाना फड़नवीस ने अकेले ही अपने हाथों में शासन का सब काम रक्खा। इसके अभाव में सब चतुरों की मडली का उसने एक मडल बना कर शासन भार की व्यवस्था स्थिर की, तथापि महाराष्ट्र शक्ति इतनी जल्दी अग्रसर न हो पाती थी। महादजी का दूसरा नाम "पाटील बुवा" भी था। उसके कोई सतान भी न थी। इसलिए दौलतराव को उसने गोद लिया। लेकिन यह महादजी के समान पराक्रमी और कर्त्तव्यशील न था।

(४) खर्डी की लड़ाई (सन् १७९५)—निजाम और



राघोबा



अहिल्याबाई

मृत्यु—इस प्रकार यद्यपि बाहर से महाराष्ट्र-राज्य का प्रबन्ध सब ठीक था और वह शक्ति सम्पन्न दिखाई देता था, तथापि उसकी भीतरी दशा ख़राब हो चली थी। धीरे धीरे अंग्रेजी सत्ता की वृद्धि हो रही थी। बड़ी सावधानी से पुष्ट किया गया सवाई माधवराव बड़ा ही दुर्वृत्त पुरुष निकला। राघोबा का पुत्र बाजीराव शिवनेरी किले में कैद था। वहाँ बैठे बैठे गुप्त रीति से उसने सवाई माधवराव के साथ कार्रवाई करनी शुरू की। यह बात नाना फड़नवीस को भी विदित हो गई। अत उसने बाजी राव की कैद और भी सख्त कर दी, सवाई माधवराव पर भी दृष्टि रखनी शुरू की। सन् १७९५ के वर्षाकाल में वह ज्वर से पीड़ित हुआ और उससे वह दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगा। अक्टोबर मास में दशहरा के दिन ज्वर का प्रकोप अधिक हुआ। द्वादशी के दिन वह ऊपर के छज्जे पर बैठा था। अचानक उठने के कारण उसे चक्कर आया और वह नीचे फर्श पर आ गिरा। इस चोट से विह्वल होकर पूर्णिमा के दिन (२१-१० १७९५) उसकी मृत्यु हो गई। इस दुर्घटना के दो ही-चार वर्षों के अनन्तर रामशास्त्री, हरिपंत फड़के, अहिल्याबाई, महादजी सिंधिया तुकोजी होल्कर इत्यादि महाराष्ट्र के समुन्नत कार्यकर्त्ताओं की भी मृत्यु हो गई। आगे चलकर परशुराम पंत और नाना फड़नवीस के चल बसते ही मराठों के स्वातंत्र्य का अंत हो गया।

ऊपर अहिल्याबाई की चर्चा की जा चुकी है। भारत के शासकों और पराक्रमशालिनी स्त्रियों में अहिल्याबाई की गिनती होती है। वह मल्हारराव होल्कर की पुत्रवधू और खंडेराव होल्कर की पत्नी थी। एक लड़का होने पर पति की मृत्यु हुई। बाद को ससुर की भी मृत्यु २०५ १७६८ को हो गई। मल्हारराव की

योग्यता अत्यधिक थी। पहला बाजीराव ही ''गुरीला' लड़ाइयों का निर्माता था। अपना स्वार्थ साधकर राज्य का कल्याण यदि सधे तो वह राज्य का कार्य करता था। वह केवल लड़ने में ही प्रवीण न था, बल्कि उसमें विचारशक्ति, दूरदर्शिता और सावधानी के साथ कार्य करने के भी विशेष गुण थे। उसके मरने के बाद अहिल्याबाई ने ३० वर्ष तक होलकर-राज्य का शासन किया, और लौकिक हित के अनेक काम भी उसने किये। वह अत्यन्त धर्मनिष्ठ थी। उसके मंदिर, घाट, धर्मशाला, अन्नसत्र इत्यादि परोपकार के काम भारत में आज भी मौजूद हैं। यदि वह पुरुष होती तो महादजी सिंधिया की अपेक्षा उसका महत्त्व कम न होता। उसके ऊपर जो अनेक कष्ट आये उन्हें उसने धैर्यपूर्वक झेल लिया।

---

# बारहवाँ अध्याय

## छत्रपति द्वितीय शाहू पेशवा द्वितीय बाजीराव

### सन् १७९६-१८०८

१—पेशवा द्वितीय बाजीराव
२—नाना फड़नवीस की मृत्यु
३—तैनाती फौज
४—मराठों के साथ दूसरा युद्ध
५—होल्कर-युद्ध

(१) पेशवा द्वितीय बाजीराव (सन् १७९६)—सवाई माधवराव की मृत्यु के बाद पेशवा का पद किसको दिया जाय, इस प्रश्न पर बड़ी उखाड़ पछाड़ के बाद नाना परशुराम भाऊ और दौलतराव सिन्धिया इत्यादि ने मिलकर बाजीराव को पेशवाई की गद्दी पर बैठाया। वह विपन्नावस्था प्राप्त होने से राज्य का भार सँभालने में बिलकुल असमर्थ था। भोग विलास में वह मस्त रहता था। स्वभाव से अविश्वासी और चंचल होने के कारण उसने राज-काज के सम्बन्ध में किसी से परामर्श न लेकर हर काम में केवल असफलता ही प्राप्त की। इसकी अपेक्षा दौलतराव का प्रभाव अच्छा था। लेकिन राज्य का कल्याण किस में है, यह जानने की शक्ति उसमें भी न थी। सिन्धिया के पास जो फौज थी उसी के बल पर उसने बाजीराव को अपने हाथ की

कठपुतली बना लिया। बाजीराव के चित्त में नाना फड़नवीस के विरुद्ध विद्वेषाग्नि भभकती रहने के कारण उसने नाना को कै़द कर लेने के लिए सिन्धिया को प्रेरित किया। इस काम के लिए बाजीराव ने दो करोड़ रुपये देने का वचन सिन्धिया को दिया। इस शर्त के अनुसार सिन्धिया ने नाना फड़नवीस को क़ैद कर लिया और बाजीराव से उसके वचनानुसार दो करोड़ रुपये माँगे। पैसा पास न होने से उसने सिन्धिया से पूना शहर लूट कर दो करोड़ रुपये वसूल करने को कहा। अतः सिन्धिया ने नगर के सेठ-साहूकारों के घर लूटकर अपना रुपया वसूल किया। लोगों का संरक्षण न कर धनियों को लूटना इत्यादि निंद्य कर्मों के विषय में आगे वर्णन किया जायगा। इसके बाद अधिक गड़बड़ फैलने पर नाना का छुटकारा हुआ और सिन्धिया वहाँ से भाग खड़ा हुआ ( सन् १७९९ )।

( २ ) नाना फड़नवीस की मृत्यु—इस घटना के बाद सिन्धिया और बाजीराव में परस्पर अनबन हो गई। अतः सिन्धिया ने नाना को क़ैद से छोड़ दिया। यद्यपि बाजीराव ने उसे फिर राज काज का काम पूर्ववत् सौंप दिया, तथापि वह नाना के साथ अविश्वास और कपट का ही व्यवहार करता। नाना यह सोचा करता था कि बाजीराव स्वयं अकेले राज्य-कार्य चला सकता है, किन्तु उसका यह अनुमान ग़लत निकला। अतः जितना उससे हो सका उसने उद्योग कर राज्य के बचाव करने का कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य किया। अन्त में १३ मार्च सन् १८०० को उसकी मृत्यु हुई। छुटपन से ही नाना ने शासन की उन्नति और अवनति देखी थी। उसका प्रबन्ध और देख भाल बड़े मार्के की होती थी। वह नियम से रहता और मेहनत करता था। उसकी

स्मरण-शक्ति अपूर्व थी। वह बड़ा मेधावी था। चारों ओर की खबरों का पता रखना उसके हाथ की बात थी। परन्तु स्वयं शूर और दृढचित्त का सरदार न होने से उससे स्थिर व्यवस्था न हो सकी। विभिन्न राज्यों में अपने राजदूत भेजकर उनके द्वारा उनके दरबार में अपना प्रभाव जमाये रक्खा। उसके रहते विदेशियों का प्रवेश मराठों के राज्य में न हो सका। "नाना फड़नवीस की मृत्यु होने से मराठों के राज्य में चतुरता और नीति की इतिश्री होगई।" यह कथन अंग्रेज़ नीतिज्ञों का है। परशुराम भाऊ पटवर्धन १८-९-१७९९ के दिन मरा और राज्य में कार्यकर्त्ता पुरुष अब कोई न रह गया।

(३) तैनाती फौज—नाना फड़नवीस की मृत्यु के बाद उसके पक्ष के लोगों को दुःख देने का कार्य बाजीराव ने प्रारम्भ किया। इधर सिन्धिया और होल्कर की परस्पर अनबन हो गई। यशवंतराव होलकर के भाई विठोजी को बाजीराव ने हाथी के पाँव से कुचलवाकर मार डाला। इस कार्य से यशवंतराव को बड़ा दुःख हुआ और उसने पूना पर आक्रमण कर दिया। बाजीराव ने अपनी फौज उसके विरुद्ध भेजी और स्वयं भागकर सिंहगढ़ में जा ठहरा। होलकर ने पूना पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने बाजीराव को सिंहगढ से बसई लाकर उसे अपने अधिकार में कर लिया। वहाँ अंग्रेजों से सन्धि कर पेशवाई वापस दिलाने के लिए बाजीराव ने अंग्रेज़ों से सहायता ली। पच्चीस वर्ष पहले रघुनाथराव की जो अवस्था हुई वही अवस्था कुछ कुछ बाजीराव की भी हुई। इन पच्चीस वर्षों में अंग्रेजी राज्य का फैलाव बहुत हो गया था ओर अंग्रेजों ने अपने कर्त्तव्य का ठीक ठीक निश्चय कर लिया था। इसलिए पहले

जिस प्रकार युद्ध में ध्येय बिगड़ गया, वैसा कहीं फिर न बिगड़े, इसकी सावधानी रखने का उन्होंने निश्चय किया।

पेशवा के दरबार में जैसी अव्यवस्था फैल रही थी, वैसी ही अव्यवस्था किसी न किसी अंश और रूप में सारे भारत के रजवाड़ों में फैल रही थी और बाजीराव के समान सहायता माँगनेवाले अनेक लोग अंग्रेजों के सामने खड़े रहते थे। अतः "हम तुमको सहायता के लिए फौजें देते हैं। उसके ख़र्च भर के लिए तुम अपने राज्य का कुछ अंश सदैव के लिए हमें दे दो। तुम अंग्रेजों की सार्वभौम सत्ता स्वीकार करो और तुम्हारे आपस के झगड़े खड़े होने पर एक दम लड़ाई इत्यादि न करके उसका निर्णय हम से लो, और जो निर्णय हम करें उसे तुम मानो।" इस प्रकार का अपना मतलब अंग्रेजों ने इस सन्धि द्वारा साध लिया। जिस राजा ने सहायता ली वह अंग्रेज़ों की सार्वभौम सत्ता के नीचे आ दबा। और यदि सहायता न ली तो दूसरा अन्य कोई उसका सहायक होने पर शत्रुओं-द्वारा घेरा जा कर उसका नाश होना अवश्यम्भावी था ही। इस प्रकार भारत के रजवाड़ों में तैनाती फौज रखने की जो पद्धति अंग्रेज़ों ने निकाली वह "तैनाती फौज की पद्धति" (Subsidiary Alliance) के नाम से प्रसिद्ध है। बाजीराव ने अन्य कोई उपाय अपने ध्येय के साधन का न देख ऊपर की लिखी हुई शर्तें स्वीकार करके अंग्रेजों की फौज अपनी सहायता के लिए ले ली। इस पद्धति के निकालने और उसके योग से भारत के राज्यों पर अधिकार करने में नीतिनिपुण गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली, बम्बई के कर्नल क्लोज़ और मध्य-भारत के कर्नल माल्कम विशेष प्रसिद्ध हैं। उनके बराबर का एक भी व्यक्ति इस समय महाराष्ट्र में न

था। भारतीय राज्यों पर अधिकार करने में अंग्रेज़ों को जो कुछ थोड़ी सी कठिनाई थी वह महाराष्ट्र के कारण थी। वह भी बाजीराव के ऊपर के कृत्य ने दूर कर दी। उसने २० लाख की आय का देश देकर ८ हजार अंग्रेजी फौज अपनी सहायता के लिए ली। इस फौज का सेनापति गवर्नर जनरल का भाई जनरल वेलेजली था। यही बाद को इङ्गलेण्ड जाकर ड्यूक आव वेलिंग्टन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाजीराव ने ३१ दिसम्बर सन् १८०२ को अंग्रेजों को प्रतिज्ञापत्र लिख कर दे दिया। इसको बसई की संधि कहते हैं। उसमें ये शर्तें थीं—(१) अंग्रेज अपनी दस हज़ार फौज बाजीराव के संरक्षण के लिए नियतरूप में देंगे, और उसके ख़र्च के लिए २६ लाख का अपना राज्य बाजी राव अंग्रेजों को देगा। (२) अंग्रेजों के यूरोपीय शत्रुओं को बाजीराव अपने देश में आश्रय न देगा। (३) अन्य रजवाड़ों के साथ बाजीराव का झगड़ा होने पर अंग्रेज़ उसको निर्णय करेंगे। (४) अंग्रेज़ों की परवानगी लिए बिना वह कोई युद्ध अथवा कोई संधि किसी राज्य के साथ न करेगा। बस इस सन्धि ने महाराष्ट्र-शक्ति का अंत कर दिया।

यशवतराव होलकर को बाजीराव का यह काम न पसन्द आया। यशवतराव की इच्छा पेशवा के राज्य को अपने अधीन करने की न थी। बाजीराव अंग्रेजी फौज को लेकर पूना आ रहा है, यह खबर सुनते ही होलकर ने पूना छोड़कर अपने राज्य की राह ली। जाने से पूर्व पूना शहर को मनमाने ढङ्ग से लूट कर वह बहुत धन अपने साथ ले गया। अंग्रेजी फौज ने पूना में प्रवेश कर बाजीराव को पेशवाई पर बैठाया। इस फौज की छावनी बाद को बहुत दिनों तक पूना के पूर्व घोड नदी के किनारे शिरूर में रही।

(४) अंग्रेज़-मराठो का दूसरा युद्ध—वाजीराव ने अँग्रेज़ों से तैनाती फौज की संधि की, यह वात अन्य मराठे सरदारों को विलकुल न रुची। वास्तव में छत्रपति की ओर से पेशवा सव राज्य का और उसकी शाखा का केवल कार्यकर्त्ता मात्र था। वह मालिक न था। इसलिए उसकी की हुई यह संधि अन्य लोगों को मान्य न हुई। गायकवाड़ ने चार मास पूर्व ऐसी संधि अंग्रेज़ों के साथ की थी। नागपुर के भोंसले इत्यादि कितने ही सरदार पहले से ही पेशवा का साथ न देते थे। अव सिंधिया और होलकर वाजीराव को विचलित देख उसकी संधि को उन्होंने नहीं स्वीकार किया। अंग्रेजों ने मराठे-सरदारो से कहा कि तुम्हारा सव का प्रधान पेशवा है। उसने हमारी इस संधि को स्वीकार कर ही लिया है, इसलिए तुम्हें भी अव इसे स्वीकार करना चाहिए और तुम्हें वाजीराव के या इतर राज्य में फौजें ले जाकर लड़ाई नहीं करना चाहिए। अपने राज्य में जाकर रहो। यह वात मराठे सरदारों को न रुची। उन्होंने कहा कि "हम पर हुकूमत करनेवाले तुम कैान हो?" लेकिन हुकूमत करनेवालों की शक्ति का पता उन्हें न था। अंग्रेजों ने मन में कहा कि अब तुम अपने अपने राज्य-सीमा से निकल कर आओगे तव तुमको दिखावेंगे कि यह हुक्म देनेवाला कौन है। ऐसा विचार कर अग्रेजों ने मराठे सरदारों के साथ एक साथ युद्धघोषणा की।

इस युद्ध में दो लड़ाइयाँ हुई। एक वरार में, दूसरी उत्तर में। दिल्ली शहर ओर मुग़ल वादशाह सिंधिया के अधिकार में थे। अत' दिल्ली पर अधिकार किये विना अंग्रेज़ों को भारत का स्वामित्व मिलनेवाला न था। सिंधिया को फ्रेंचों की सहायता मिलने से

फ्रेंचों को परास्त करने का ही अंग्रेजों का उद्देश था। उत्तर के युद्ध में जनरल लेक और दक्षिण के युद्ध में जनरल वेलेजली अंग्रेजी फौजों के मुख्य सेनापति थे। अगस्त सन् १८०३ में वेलेजली ने अहमदनगर के किले पर अधिकार कर लिया। इधर गुजरात में अंग्रेज़ी फौजों ने भडोंच शहर ले लिया। सितम्बर मास में असाई स्थान में बड़ी घमासान लड़ाई होने के बाद वेलेजली ने सिंधिया को परास्त किया। अन्य फौजों ने असीरगढ़ व बुरहानपुर भी सिंधिया से ले लिये और बगाल की फौजों ने भोंसले के कटक नगर पर अधिकार कर लिया। उत्तर में जनरल लेक ने अलीगढ और दिल्ली की सिंधिया की फौजों को हराकर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। अत वृद्ध मुगल बादशाह शाहआलम अंग्रेजों के अधीन हो गया। बाद को लासवाड़ी में फिर घमासान लड़ाई हुई और सिंधिया की फौजों पर लेक को विजय मिली। इधर बरार में अरगाँव में सिंधिया, और भोंसले की सम्मिलित फौजों को वेलेजली ने फिर हराया। पूरे चार महीने की लडाई के बाद अंत में सन् १८०३ के दिसम्बर मास में देवगाँव में अंग्रेज़ों और भोंसले की संधि हुई। इसकी शर्तें ये थीं—(१) वर्धा नदी के पश्चिम ओर का बरार प्रान्त व कटक प्रान्त भोंसला अंग्रेज़ों को दे। (२) निजाम के ऊपर जो हक है उसको भोंसला छोड़ दें। (३) अन्य रजवाड़ों के साथ झगड़ा खड़ा होने पर जो निर्णय अंग्रेज करें वह भोंसला स्वीकार करे और (४) अंग्रेजों का रेजिडेंट नागपुर में रहे। इसी प्रकार की संधि अर्जुनगाँव में सिंधिया के साथ अंग्रेजों ने की। वह यह थी—(१) गगा यमुना के बीच का भूभाग और दक्षिण के कुछ

भूभाग सिंधिया अंग्रेजों को दे। (२) दिल्ली के बादशाह, पेशवा, निजाम और गायकवाड़ पर से अपने हक सिंधिया छोड दे। (३) अंग्रेज़ों की सम्मति के विना किसी भी यूरपीय को अपने दरबार में न रक्खे और (४) अंग्रेजों से स्नेहभाव से रहनेवाले रजवाड़ों में उपद्रव न करे। इसी संधि से अंग्रेज़ों की सार्वभौम सत्ता का भारत में आरंभ हुआ। आज तक यहाँ पहले मुग़ल और बाद को मराठे प्रधान बने। उनके बाद अंग्रेजी राज्य की स्थापना भारत में हुई।

(५) होलकर के साथ युद्ध (सन् १८०४-१८०५)—सिंधिया और भोंसले दोनों ही के चुप हो बैठने पर अंग्रेज़ों ने होलकर का सामना किया। इस युद्ध को ऊपर के युद्ध की तीसरी लड़ाई कहते हैं। सिंधिया के साथ संधि हो जाने पर राजपूत राजा अंग्रेजी छत्रछाया में आ गये थे। लेकिन यशवंत राव होलकर अपने को स्वतंत्र समझकर राजपूताने में लूट मार करके कर वसूल करने लगा। इसे बन्द करने के लिए अंग्रेजों के पत्र लिखने पर होलकर ने अंग्रेजों को धमकी और फटकार का पत्र लिखा। वह अपने को स्वतंत्र समझता था। अतः उसके साथ युद्ध शुरू करके सेनापति लेक ने सन् १८०४ में होलकर के टोंक रामपुरा नामक स्थान पर अधिकार कर लिया। जनरल मान्सन सात हजार फौज लेकर मालवे से गुजरात जा रहा था। उसकी फौज पर हमला करके होलकर ने उसे हरा दिया और अंग्रेज़ी फौज की फौज काट डाली। बाद को दिल्ली पर होलकर ने धावा किया। लेकिन वहाँ उसकी हार हो गई। बाद को भरतपुर के जाट राजा ने होलकर का साथ दिया। उन दोनों को ही सन् १८०४ के नवम्बर मास में डीग नामक स्थान में अंग्रेजों ने परास्त किया।

शीघ्र ही फर्रुखाबाद में फिर हार जाने से होलकर वापस आया और लेक ने भरतपुर पर घेरा डाला ( १८०५ )। इसके बाद भरतपुर के राजा ने अंग्रेजों के साथ संधि की। इतने में ही गवर्नर जनरल वेलेजली स्वदेश को वापस चला गया और उसकी जगह पर लार्ड कार्नवालिस आया। मराठों के साथ चलते हुए युद्ध अंग्रेजों को नहीं पसंद आये। इसलिए कार्नवालिस ने होलकर के साथ एकदम संधि करके युद्ध बन्द किया। इस युद्ध में हार जाने के दुःख से यशवंतराव होलकर शिथिल हो गया और वहीं वह सन् १८११ में मर गया। यशवंतराव बड़ा पराक्रमी और शूर था।

# तेरहवाँ अध्याय

## महाराष्ट्र-शक्ति का अन्त

### सन् १८०८-१८१८

१—तीसरा मराठा-युद्ध   २—भोसले और होलकर के विरुद्ध लड़ाइयाँ
३—पिंडारियों से युद्ध   ४—महाराष्ट्र-शक्ति का अन्त
५—मराठा-शक्ति के डूबने के कारण

**( १ ) तीसरा मराठा-युद्ध (सन् १८१७ १८)**—सन् १८०८ में छत्रपति द्वितीय शाहू मरा और उसका लड़का प्रतापसिंह सतारा की गद्दी पर बैठा। इधर जैसा ऊपर कहा जा चुका है, मराठे सरदारों की शक्ति तोड़ने के लिए अंग्रेज तैयार थे। लेकिन यूरोप में अंग्रेजों के साथ नेपोलियन के नेतृत्व में फ्रेंचों का युद्ध छिड़ जाने से अंग्रेज़ लोग विपत्ति में फँस गये थे। इसी लिए तैनाती फौज की पद्धति का जल्दी प्रचार कर भारत में अंग्रेज़ों के सार्वभौमत्व स्थापित करने का वेलेज़ली द्वारा शुरु किया गया कार्य उस समय पूर्णरूप से सिद्ध न किया जा सका। यह काम गवर्नर जनरल हेस्टिंग्ज ने पूरा किया। पहले के युद्धों में मराठे सरदारों की हार हुई थी, तथापि अंग्रेजी सत्ता को उन्होंने सन्तुष्ट होकर स्वीकार न किया था। गुप्तरूप में वे लोग युद्ध की तैयारी करके अनुकूल अवसर के लिए ठहरे हुए थे। प्रत्यक्ष रूप में बाजीराव पेशवा अंग्रेजों से द्वेष रखता था।

वह स्वभाव से ही डरपोक और कपटी था। उसने अपनी इच्छा से अंग्रेजों से सहायता न ली थी। उसका भ्रम था कि राघोबा को जैसी सहायता अंग्रेज़ों ने की थी, उसी प्रकार वे मेरी भी सहायता करेंगे, अथवा पेशवाई के मिल जाने पर वे निकल जाँयगे। लेकिन वसई में लिखी हुई संधि ने उसका यह भ्रम दूर कर दिया। यद्यपि बाजीराव राज्य का कार्य-भार करने में बिलकुल अयोग्य था, तथापि उस समय जिस नीति से अंग्रेज़ लोग काम ले रहे थे उसके सामने चतुर नीतिज्ञ पुरुष भी न टिक सकता था। क्योंकि अपने राष्ट्र में सब ओर से इतनी दुर्बलता आ गई थी कि अंग्रेजों के प्रभाव के सामने उसका टिकना सम्भव न था। अधिक से अधिक इतना ही सम्भव था कि यदि चतुरता से काम लिया जाता तो १०।१५ वर्ष और भी चलता, लेकिन उसका पतन आगे पीछे अवश्यम्भावी था।

बाजीराव और अन्य रजवाड़ों के बीच जो झगड़े खड़े होते, उनका निर्णय करना अंग्रेजों ने प्रारंभ किया। इसमें गायकवाड़ और बाजीराव का वाद बहुत दिनों चला। उसका फैसला करने के लिए गंगाधर शास्त्री पटवर्धन अंग्रेजों की संरक्षकता में पूना आया (सन् १८१६)। उसके जीवन की जिम्मेदारी अंग्रेजों ने ले रक्खी थी। पूना से बाजीराव और गंगाधर शास्त्री पंढरपुर गये। एक दिन वहाँ गङ्गाधर शास्त्री का खून किया गया। त्रिंबकजी डेंगले नाम का एक व्यक्ति बाजीराव का बड़ा कृपा पात्र था। उसने बाजीराव के कहने पर यह हत्या की थी। अंग्रेजों को यह बात विदित होने पर उन्होंने त्रिंबकजी को अपनी अधीनता में करने के लिए बाजीराव से उसे माँगा। बाजीराव ने पहले तो उसका पता ही न दिया, लेकिन अन्त में उसने त्रिंबकजी को अंग्रेजों के हवाले कर दिया। अंग्रेजों ने उसे हवालात में बन्द कर दिया।

वह वहाँ से भाग निकला। इससे पूना के रेज़िडेंट एलफिन्स्टन साहब को बाजीराव को अभियुक्त से मिले रहने का सन्देह हुआ। "त्रिंबकजी को हमारे हवाले करो," यह कहकर एलफिन्स्टन ने सिंहगढ और पुरन्दर के क़िलों पर अधिकार कर लिया और गायकवाड़ के साथ बाजीराव का जो झगड़ा था उसका निपटारा बाजीराव के विरुद्ध किया। इसलिए बाजीराव ने युद्ध की तैयारी करके सिन्धिया, होलकर और भोंसले को भी गुप्त रीति से अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध करने को कहला भेजा। यह देख फिर मराठों के जमाव के इकट्ठा होने के पूर्व ही अंग्रेज़ों ने अति शीघ्र प्रत्येक को घेरकर जीतने का निश्चय किया। बाजीराव ने सन् १८१७ में खिड़की में रेज़ीडेंसी पर हमला किया। बापू गोखले पेशवा का सेनापति था। लड़ाई में बाजीराव की हार हो जाने से कर्नल स्मिथ ने पूना शहर पर अधिकार कर लिया। अत बाजीराव सतारा के छत्रपति को साथ लेकर वापस आया। १ जनवरी सन् १८१८ के दिन बापूजी गोखले और अंग्रेज़ों की कोरेगाँव में लड़ाई हुई। इस लड़ाई में गोखले की हार हुई। बाद को पढरपुर के पास आष्टी के पास और एक लड़ाई हुई। इसमें बापू गोखले मारा गया। अत बाजीराव के भागने पर उत्तर की ओर जाते समय नर्मदा के किनारे उसे अंग्रेज़ी फौजों ने घेर लिया। अन्य कोई उपाय न देख वह कर्नल माल्कम के अधीन हो गया। इसके बाद अंग्रेज़ों ने उसके राज्य को अंग्रेज़ी अमलदारी में मिला लिया और बाजीराव को ८ लाख रुपये की वार्षिक पेंशन देकर कानपुर के समीप बिठूर या ब्रह्मावर्त में ले जाकर रक्खा। उसी प्रकार सतारा के छत्रपति प्रतापसिंह को सतारा की गद्दी देकर उसको १४ लाख का राज्य दिया।

सारांश यह कि बाजीराव ने बसई की संधि को तोड़कर

अंग्रेजों के साथ जो युद्ध किया इससे उनकी अधीनता में रह कर जो छोटा सा राज्य उसे मिला था वह भी उससे छिन गया। अन्यथा जिस प्रकार सिंधिया और होलकर के राज्य दीख पड़ते हैं, उसी प्रकार एक छोटा सा राज्य पेशवा का भी आज कदाचित् दीख पड़ता।

अंग्रेजों ने त्रिंबक डेंगल को पकड़कर चुनार के किले में कैद कर दिया। वहीं उसकी मृत्यु हुई। पूना के अंग्रेजी राजदूत एलफिन्स्टन ही अंग्रेजों द्वारा जीते हुए प्रदेश का शासन करने के लिए नियुक्त किया गया। उसने पेशवा के दरबार में आनेवाले सरदारों को उनकी पहले से मिली हुई जागीर, वार्षिक वेतन और जिनको जो जो पेंशनें मिलती थीं वे सब ज्यों की त्यों कायम रक्खीं। इससे पेशवाई टूटने का दु:ख किसी को न खला और सम्मान के साथ रहने के लिए उनका प्रबन्ध हो गया। इनाम, देवस्थान, धर्मादा इत्यादि खर्च जिस तरह पेशवा के समय में दिये जाते थे, उसी प्रकार एलफिन्स्टन ने भी कायम रक्खा और देश में शान्ति तथा सुप्रबन्ध स्थापित किया। इसी से एलफिन्स्टन की कीर्त्ति का महाराष्ट्र लोग गान करते हैं।

**(२) भोंसले और होलकर के साथ युद्ध (सन् १८१७)**—बाजीराव को सहायता देने के लिए नागपुर के भोंसले और होलकर ने उद्योग किया था। होलकर के दरबार में बड़ा कुप्रबन्ध था। यशवंतराव का दत्तक पुत्र मल्हारराव छोटी उम्र का था और फौजवाले बड़े प्रबल हो गये थे। यह फौज बाजीराव की सहायता करने के लिए जिस समय महीदपुर हो कर जा रही थी, उसका सामना कर्नल माल्कम और हिस्लप से हो गया। इस लड़ाई में होलकर की फौज हार गई। इसके बाद होलकर

में मर गया। इसके कोई लड़का न होने के कारण इसका राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। तंजोर की जागीर भी इसी तरह अंग्रेजी अमलदारी में मिला ली गई।

दक्षिण के अन्य राज्य—शाहू छत्रपति के समय में ताराबाई ने कोल्हापुर में अपना अलग राज्य स्थापित किया था। वह आज भी वर्त्तमान है। सतारा के अष्टप्रधानों में प्रतिनिधि आमात्य और सचिव इत्यादि के वंशों में थोड़ी बहुत जागीर अब भी चली जाती है। पेशवाओं ने दक्षिण महाराष्ट्र में पटवर्धन की स्थापना की थी। उस घराने की कितनी ही शाखाएँ साँगली, मिरज, कुरुंदवाड़, जमखंडी इत्यादि स्थानों में हैं और उसके अधीन छोटे छोटे राज्य हैं। उसी तरह फलटन के निंबालकर, मुधाने के घोरपड़े, अक्कलकोट के भोसले, सावंतवाड़ी के सरदेसाई इत्यादि पहले के अनेक मराठे सरदार अपनी अपनी जागीरों में अंग्रेज-सरकार की छत्र छाया में राज्य करते हैं।

उत्तरी महाराष्ट्र-राज्य—नागपुर के भोसलों का राज्य बहुत लम्बा-चौड़ा था। वह सन् १८५३ में अंग्रेज़ी अलमदारी में मिला लिया गया। इसके अतिरिक्त मराठों के अन्य बड़े राज्य अर्थात् सिन्धिया, होलकर और गायकवाड़ के तथा धार और देवास में पँवारों के राज्य वर्त्तमान हैं। बाजीराव के पतन के बाद ये राज्य अंग्रेजों की शरण में आ गये। इसी प्रकार झाँसी, सागर, जालौन, गुलसराइ इत्यादि राज्य ब्राह्मणों की अलमदारी में थे, ये सब डलहौजी के शासन-काल में अंग्रेजी अलमदारी में मिला लिये गये।

गायकवाड़ों के मूल-पुरुष दामाजी का उदय सेनापति खंडेराव दाभाडे की अधीनता में काम करने से हुआ था। सन् १७३१ में

उमई की लड़ाई में सेनापति त्रिंबकराव दाभाडे मारा गया। अत दाभाडों का गुजरात का काम गायकवाड़ को दिया गया। इसी प्रकार अधिक उद्योग करके इन्होंने गुजरात में अधिक देश जीता। वसई की सुलह होने के पूर्व अँग्रेजों की तैनाती फौज को स्वीकार कर गायकवाड़ों ने अँग्रेजो का सार्वभौमत्व स्वीकार किया। गायकवाड़ों के घराने में पहले सयाजीराव ( सन् १८१९-४७ ), गणपतराव ( सन् १८४७-५६ ), खण्डेराव ( १८५६-७१ ) और मल्हारराव ( सन् १८७१-७५ ) ने क्रम से राज्य किया। वर्त्तमान सयाजीराव सन १८७५ में गद्दीनशीन हुए और अपने घराने की प्रतिष्ठा भले प्रकार से रक्षित किये हुए हैं।

गायकवाडों की तरह ही सिन्धिया के घराने में जयाजीराव और उसका लड़का माधवराव बड़ा प्रसिद्ध हुआ। जयाजीराव सिन्धिया, तुकोजीराव होलकर और खण्डेराव गायकवाड़ परस्पर समकालीन थे और अँग्रेजी अलमदारी में प्रधान समझे जाते थे। माधवराव सिन्धिया सन् १९२५ में मरा और उसका लड़का जार्ज जयाजीराव गद्दी पर है।

( ५ ) मराठा-शाही के अस्त होने के कारण—सन् १६६४ में शिवाजी ने मराठों का स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। वह लगभग १५० वर्ष रहकर अस्तप्राय हो गया। इस काल में राज्य-व्यवस्था में अनेक फेर फार हुए। प्रारंभ में शिवाजी का इस राज स्थापन में क्या उद्देश था, और इसमें किस प्रकार विकार उत्पन्न हुए, ये बातें ऊपर भली भाँति समझा दी गई हैं। शिवाजी जानता था कि राज्य प्रजा के पालन के लिए होता है, सुख भोग करने और लूटने के लिए नहीं। वह लोगों को सुख देने का एक साधन है। प्रजा का पालन पोषण करना ही राजाओं का मुख्य कर्त्तव्य है। उसने किसी स्वार्थ-साधन के लिए यह राज्य स्थापित नहीं किया

था। सभी के संकटों को दूर करने के लिए वह सदा तैयार रहता था। जब शिवाजी ऐसा उदार व्यक्ति बना तभी वह महाराष्ट्रों का राज्य स्थापित कर सका। संभाजी और राजाराम के शासन-काल में घोर संकट आ पड़ने पर मराठों ने जब शिवाजी द्वारा दिखाये गये स्वार्थ-त्याग के मार्ग का अनुसरण किया तभी उनके संकट दूर हो सके और महाराष्ट्रसत्ता की रक्षा हुई।

परन्तु शाहू के आगमन के बाद उपर्युक्त मार्ग का त्याग किया गया। (१) एकतंत्री शासन का प्रारंभ हुआ। मराठे सरदार सरंजामी पद्धति का अनुसरण कर भिन्न भिन्न क्षेत्रों में एक दूसरे से बिलकुल स्वतंत्र होकर अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने लगे। उनपर नियंत्रण रखना भी कठिन हो गया। इसी तरह सभी प्रमुख सरदारों का कार्य परम्परानुगत उनके वंशज ही करने गये, इसलिए प्रत्येक सरदार का अपना रास्ता अलग हो गया और साम्राज्य की रक्षा करने की अपेक्षा वे लोग अपने वतन, अपने राज्य, अपनी जागीरों की रक्षा विशेष रूप से करने लगे। इससे साम्राज्य की रक्षा करनेवाला कोई व्यक्ति न रह गया। महाराष्ट्र सरदारों पर नियंत्रण करने वाली केन्द्र-शक्ति राज्य के अधिक विस्तृत हो जाने के कारण अपना प्रभाव पूर्ववत् बनाये रखने में निर्बल हो गई। मराठे सरदारों ने देश भर में आक्रमण करने की धूम मचा दी। उनमें परस्पर साम्य न होने के कारण प्रत्येक सरदार यथेच्छाचार करने लगा। इससे देश की रैयत को बड़ा कष्ट हुआ। लूटपाट, मार-काट और अग्निकाण्डों की भरमार होने लगी। शिवाजी के समय की सुराज्य-कीर्ति लुप्त हो गई। मराठों के हमले शुरु हुए। इन हमलों ने राजपूताने इत्यादि प्रान्तों के लोगों को थर थर कँपा दिया, अर्थात् लोगों ने मराठों के इस प्रकार के अंधाधुन्ध शासन को बिलकुल नापसंद किया।

(२) मराठों के शासन में आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। पेशवाओं ने शिवाजी के समय के अपने जहाज़ी बेड़े की उन्नति न करके उल्टा अंग्रेज़ों की सहायता लेकर उसका नाश कर दिया। अत समुद्रतट का शासन अंग्रेजों के हाथ में चला गया। (३) युद्ध-कला और शास्त्र के ज्ञान में वे अंग्रज़ों की बराबरी बिलकुल न कर सकते थे। (४) पास पड़ोस के राज्यों में क्या उद्योग हो रहा है— इसका उन्होंने बिलकुल ही अध्ययन न किया। सारांश यह कि यूरपीयों की राज्य व्यवस्था और प्रबध मराठों से कहीं अधिक चढ बढ कर थे। इसीसे अंग्रेजों के प्रभाव के सामने मराठों को हार खानी पडी। (५) नारायणराव पेशवा के मारे जाने के बाद से राज्य में अनेक प्रकार का गडबड़ फैल गया। और दूसरे बाजीराव ने और भी अधिक अवस्था बिगाड़ दी। अपने ही लोगों द्वारा उसने पूना शहर लुटवाया। शासकों के सामने अनेक बार धन का अभाव पूरा करने का मौका आया है, लेकिन स्वयं अपनी प्रजा को लूटने का कुकृत्य करने से प्रजा नाराज हो गई। विदेशी लोगों का विश्वास मराठों पर से उठ गया और ऐसी लूट में स्वयं महाराष्ट्र के रहनेवाले लोग विरुद्ध हो गये। इसी लिए (६) जब न्याय प्रिय अंग्रेजों का शासन देश में शुरू हुआ तब सेठ-साहूकार रैयत सभी आनन्द का अनुभव करने लगे। उन्हें प्रतीत हुआ कि बड़ी विपत्ति से अंग्रेजों ने उनका छुटकारा किया है। एल्फिन्स्टन, माल्कम इत्यादि नीतिज्ञ शासकों के चातुर्य, नीति, लोकहित इत्यादि कार्यों से लोगों में एक प्रकार का संतोष उत्पन्न हो गया और अंग्रेज़ों के शासन को दृढ करने तथा उनके राज्य को बढ़ाने में लोगों ने तन-मन से उनकी सहायता की। सारांश यह कि स्वार्थ से व अनीति से नाश होता है। यह बात ऊपर दिये गये वृत्तांत से स्पष्ट है। मराठों का शासन

माण्डलिक स्वतन्त्र राज्य—

| | | |
|---|---|---|
| ९—बहमनी राज्य | १३४७ | १५ |
| १०—अहमदनगर की निजामशाही | १४८९ | १६३ |
| ११—बीजापुर की आदिलशाही | १४८९ | १६ |
| १२—गोलकुण्डा की कुतुबशाही | १५१२ | १६ |
| १३—जानपुर का शर्की वंश | १३९९ | १४ |
| १४—बंगाल के गौड़ सुल्तान | १३४० | १५ |
| १५—खानदेश के सुल्तान | १३८८ | १६० |
| १६—अहमदाबाद के सुल्तान | १४०१ | १५ |
| १७—काश्मीर के सुल्तान | १३३४ | १५ |
| १८—मालवा के सुल्तान गोरी | १३८७ | १४ |
| खिलजी | १४३६ | १५ |
| १९—विजयनगर के राय-संगम का वंश | १३३६ | १४९ |
| नरसिंहा का वंश | १४९० | १५६ |

# सर-देसाई रचित

# शालोपयोगी भारतवर्ष

## चतुर्थ भाग, ब्रिटिश शासन काल

अनुक्रमणिका

### पहला अध्याय

### यूरोपियों का भारत में प्रवेश



### दूसरा अध्याय

### कर्नाटक और बंगाल

प्रकाशक—
साहित्य-भवन लिमिटेड,
प्रयाग

मुद्रक—
के० पी० दर
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

# सर-देसाई रचित

# शालोपयोगी भारतवर्ष

## चतुर्थ भाग, ब्रिटिश शासन काल

अनुक्रमणिका

### पहला अध्याय

### यूरोपियों का भारत में प्रवेश



### दूसरा अध्याय

### कर्नाटक और बंगाल

## तीसरा अध्याय

### राज्य स्थापन का प्रारंभ



## चतुर्थ अध्याय

### वारेन हेस्टिंग्स

## पंचम अध्याय

### कार्नवालिस और सर जान शोर



## छठा अध्याय

### लार्ड वेलजली

## सातवाँ अध्याय

### बार्लो, मिंटो और हेस्टिंग्स



## आठवाँ अध्याय

### लार्ड अमहर्स्ट



## नवाँ अध्याय

### लार्ड विलियम बेंटिक

## दसवाँ अध्याय

### लार्ड आक्लैंड और एलिनबरो



## ग्यारहवाँ अध्याय

### लार्ड हार्डिंग और डलहौसी



## बारहवाँ अध्याय

### सन् सत्तावन का गदर

ने भारत में राज्य स्थापन की इच्छा नहीं की। पुर्त्तगीज़, अंग्रेज़ और फ्रेंच लोगों ने भारत में अपना राज्य फैलाने का भरसक प्रयत्न किया। इस काम में अंग्रेज़ों को पूरी सफलता मिली। भिन्न भिन्न यूरोपीय राष्ट्रों की भारत के समुद्र-तट पर जिस प्रकार तरक्की हुई उसका क्रम यह है —

सन् १५००-१६०० पुर्त्तगीज़-जाति
सन् १६००-१७०० डच जाति
सन् १७००-१७६० फ्रेंच-जाति।
सन् १७६० से अँग्रेज़-जाति की उन्नति।

( २ ) पुर्त्तगीज-जाति का परिचय—पुर्त्तगीज़ लोगों का पहला मुखिया वास्कोडिगामा और उसके साथी सन् १४९८ में मालाबार के किनारे पर उतरे। आरम्भ में उसका व्यवहार कालीकट, कोचीन और कुन्नूर के राज्यों के साथ हुआ। पुर्त्तगीज़ लोगों के भारत में आने से पहले लाल समुद्र और अरब-समुद्र मे मूर नाम की एक अफ्रीकन जाति जहाज़ चलाकर व्यापार का काम करती थी। यही अरब लोग मोपला नाम से उसी समय से मालाबार के समुद्रतट पर बसे हुए हैं। मूर लोगों के साथ पुर्त्तगीज़ों की अनेक बड़ी बड़ी समुद्री लड़ाइयाँ हुईं। उस समय कालीकट में ज़मोरिन या ज़म्बूरिन् राजा राज्य करता था। उसने पुर्त्तगीज़ों को अपने राज्य में कोठी बनाने की आज्ञा दे दी। बाद को उससे इन लोगों की अनबन हो गई और लड़ाई हुई। इस लड़ाई में ज़मोरिन के ६०० आदमी मारे गये, तो भी कालीकट को ख़ाली करके पुर्त्तगीज़ो को निकल जाना पड़ा। कोचिन के राजा त्रिमंपारा ओर ज़मारिन में पहले से खटपट थी, इसलिए जब ज़मोरिन ने पुर्त्तगीजों का निकाल दिया तब उनको उसने




वास्को डिगामा



अलबुकक

अपने यहाँ रहने की आज्ञा दी। गामा स्वदेश से एक बार फिर भारत में आया। उसका स्वभाव बड़ा क्रूर था। उसने बड़ी साव धानी के साथ अनेक राजाओं को अपनी ओर मिला लिया। सन् १५०५ में आल्मीडा नाम का पुर्त्तगीज सरदार यहाँ का गवर्नर बनकर पहले पहल आया। बाद को अल्बुकर्क नाम का एक दूसरा चतुर सरदार यहाँ आया और उसने सन् १५१० में गोवा के शहर को बीजापुर के राज्य से छीन लिया। यह शहर आज भी उन्हीं के अधिकार में है और उनका मुख्य शहर है। अल्बुक़र्क ने बीजापुर की आदिलशाही को अनेक युद्धों में हराया। धीरे धीरे पुर्त्तगीज लोगों का अधिकार अदन, मस्कत, ओर्मज, कोलम्बो, मलाका इत्यादि स्थानों पर भी हो गया। अल्बुकर्क सन् १५१५ में गोवा में मर गया। बसई और थाना को पुर्त्तगीजों ने सन् १५२९ में जीत लिया। बाद को सूरत, मगलोर और बम्बई भी उनके अधिकार में आ गये। सीलोन द्वीप पर उनका अधिकार सन् १५९६ में हुआ।

पुर्त्तगीज लोगों का राज्य बढ़ने लगा। उसी समय उन्होंने लोगों पर धार्मिक अत्याचार करना शुरू कर दिया और बहुसंख्यक लोगों को जबर्दस्ती ईसाई बना डाला। पुर्त्तगीज लोग अपना अधिकार समुद्र पर भी मानते थे। लेकिन इस अधिकार को अँग्रेजों और डच लोगों ने नहीं माना, और धीरे धीरे इन लोगों का भी प्रवेश इन समुद्रों में होने लगा। सन् १६०० के बाद पुर्त्तगीज लोगों की अवनति होने लगी। डच लोगों ने सन् १६०४ में आंबोयाना द्वीप पर अपना अधिकार कर लिया। सन् १६१२ में अंग्रेजों ने सूरत के पास समुद्र में पुर्त्तगीज लोगों को लड़ाई में हरा दिया और उनके साथ साथ गुजरात के सुल्तानों

राज्यों की आपस की लड़ाइयों में हाथ डालकर अपने राष्ट्र को महत्वशाली बनाने का प्रयत्न पहले पहल डुमास ने ही किया। कर्नाटक में दोस्तअली के समय में झगड़े शुरु हो गये। उस समय नवाब का लड़का, उसका दामाद चंदा साहब उसके कुटुम्बी तथा अन्य अनेक लोग पांडिचरी में आकर रहने लगे। इससे भी फ्रेंचों का महत्व बढा। सन् १७४१ में डुमास ने अपना पद-भार छोड़ अपने देश को वापस चला गया। उसके स्थान पर जोसफ फ्रांसिस डूप्ले नामक इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति भेजा गया। डूप्ले एक प्रसिद्ध व्यापारी का लड़का था। वह सन् १७४१ में पाडिचरी में फ्रेंचों का गवर्नर होकर आया। थोड़े दिनों में ही उसने बड़ी सम्पत्ति और नामवरी प्राप्त कर ली। भारत में फ्रेंच राष्ट्र का प्रभाव स्थापित करनेवाला यही सब में बड़ा व्यक्ति था।

परन्तु भारत में फ्रेंच-राष्ट्र की उन्नति के अनुकूल तत्कालीन परिस्थिति न थी। यूरोप में पुर्त्तगीजों और डचों के आपसी झगड़े बंद हो गये थे और उनमें एक प्रकार की संधि हो गई थी। अंग्रेज़ी राष्ट्र भी शान्ति के साथ अपनी अड़चनों को दूर कर उन्नति की ओर अग्रसर होने लगा था। परन्तु फ्रेंच-राष्ट्र की आन्तरिक अवस्था बिगड़ी हुई थी। इसलिए उसका ध्यान विदेश के अपने उपनिवेशों की रक्षा की ओर पूर्णरूप से आकृष्ट न हो सका। सामान्यत भारत में आये हुए फ्रेंच पदाधिकारी एक दूसरे की उन्नति न देख सकते थे और उनको अपने काम में स्वदेश से अधिक सहायता भी न मिल पाती थी। इन्हीं कारणों से भारत में फ्रेंच अपना साम्राज्य न जमा सके। इतना ही नहीं, यदि यहां उनका साम्राज्य होता तो शीघ्र ही नष्ट भी हो गया होता।

( ५ ) अंग्रेज-जाति—अंग्रेज लोग पहले पहल अपना



क्लाइव



डूप्ले



ईस्ट इंडिया

व्यापार बढ़ाने के लिए यहाँ आये। प्रारम्भ में उनका विचार एशिया-खण्ड में उत्तर के चीन-देश के साथ व्यापार करने का था। लेकिन उस देश में उन्हें सफलता न मिली। सोलहवीं सदी में सर फ्रांसिस ड्रेक नाम का एक अंग्रेज़ जहाजी पृथिवी प्रदक्षिणा करके वापस लौटा। उसी समय से अंग्रेज जहाजी समुद्र पर चारों ओर यात्रा करने लगे। पहले पुर्त्तगीज़ों और डचों के साथ उनके व्यापार के सम्बन्ध में प्रतिस्पर्धा चलती रही। समुद्र पर तो सभी का अधिकार है, उस पर जो चाहे घूमे फिरे, रानी एलिजवेथ ने इस तरह की आज्ञा का प्रचार अपने व्यापारियों में किया। पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के लिए ईस्ट इण्डिया नाम की एक कम्पनी स्थापित की गई। इस कम्पनी को ३१ दिसम्बर सन् १६०० में पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने की सनद रानी एलिजवेथ से मिली। पहले इस कम्पनी के व्यापारी जावा द्वीप में पहुँचे। वहाँ डच लोगों ने इन्हें बहुत कष्ट दिया, तथापि उस समय व्यापार में इनको अधिक लाभ होता था। इसलिए इंग्लैण्ड में और भी अधिक कम्पनियाँ खुलीं। इनमें से अनेक कम्पनियाँ बाद को टूट गईं और अनेक कम्पनियाँ उपर्युक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी में मिल गईं। इससे अन्त तक एक ही कम्पनी बनी रही। पृथिवी पर इस प्रकार की समृद्ध कम्पनी दूसरी नहीं हुई। सन् १६१३ में कप्तान हाकिन्स ईस्ट इंडिया कम्पनी की ओर से जहाँगीर बादशाह के दरबार में दूत बनकर आया। उसने देश में आनेवाले माल पर ३॥ रुपया फी सैकड़ा चुङ्गी देना स्वीकार किया। इसमें पश्चिमी किनारे पर सूरत, खम्भात (खम्भायत) इत्यादि स्थानों में कोठियाँ खोलकर व्यापार करने की बादशाह से आज्ञा मिल गई। यह अंग्रेजों के व्यापार की पहली [illegible] थी। सन् १६१

सर टामस रो नाम का एक बड़ा चतुर अंग्रेज राजदूत इंग्लैंड के राजा जेम्स की ओर से बादशाह जहाँगीर के दरबार मे आया। यह चाहता था कि अंग्रेज़ो को भारत में व्यापार करने की स्थायी आज्ञा मिल जाय। लेकिन उसे अधिक सफलता न मिल सकी। सन् १६२३ म अम्बोयाना मे डच लोगों ने एक अंग्रेज़ की हत्या बड़ी निर्दयता के साथ की। इससे पूर्वी द्वीपों से अंग्रेज़ो ने अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। सन् १६३२ में मछलीपट्टन में उन्होंने अपनी एक कोठी बनाई। सन् १६३४ में शाहजहाँ ने बंगाल मे कोठी बनाने की आज्ञा उन्हें दी। सन् १६३९ मे उन्होंने मद्रास का फोर्ट सेंट जार्ज किला बनाया, और वहीं मछलीपट्टन का कारबार व उठा लाये। सन् १६६२ मे पुर्तगाल के राजा ने इंग्लैंड के राजा को बम्बई का द्वीप अपनी लड़की के विवाह के दहेज में दे दिया। इंग्लैंड के राजा ने सन् १६६८ में ईस्ट इंडिया को यह द्वीप बेच दिया। उस समय यह द्वीप बिलकुल छोटा था। पहले पश्चिमी किनारे का व्यापारिक केन्द्र सूरत में था। किन्तु वहाँ मराठों के हमले बार बार होते रहने से वहाँ की कोठी तोड़कर अंग्रेज लोगों ने अपना सब कारबार सन् १६८७ में बम्बई में खोल दिया। उस समय इंग्लैंड का लोकमत एक ही कम्पनी के हाथ में सारा व्यापार देने के पक्ष में था। अत इसी के अनुसार इंग्लैंड के राजा ने कम्पनी को कुछ विशेष अधिकार दे दिये। इधर बादशाह औरङ्गजेब से कम्पनी का झगड़ा हो गया। इससे कम्पनी की सभी कोठियाँ उसने छीन लीं। लेकिन सन् १६९० में जुर्माना लेकर वे कोठियाँ बादशाह ने कम्पनी को वापस फिर कर दीं। इस प्रकार बम्बई और मद्रास में कम्पनी की कोठियाँ मजबूती से जम गईं। सन् १६९८

में उन्होंने कलकत्ते में फोर्ट विलियम नाम का किला बनाया। सन् १७१५ में बंगाल में मुगल सूबेदार मुर्शिदकुलीखाँ ने अंग्रेज व्यापारियों को कष्ट दिया। इससे इन्होंने बादशाह के पास पुकार करने के लिए अपने प्रतिनिधि भेजे। इनमें एक सर्जन हमिल्टन ने बादशाह फर्रुखसियर को रोग मुक्त किया। इससे प्रसन्न होकर उसने कम्पनी को ३८ स्थान दिये और सभी कर माफ कर दिये। उसी समय में कलकत्ता अंग्रेजों का एक प्रधान स्थान बन गया।

पश्चिमी किनारे पर चाचे और कुलांटे के आंग्रे लोगों के साथ अंगरेजों के सदा झगड़े हुआ करते थे। ये झगड़े सन् १७२९ में कान्होजी आंग्रे के मरने पर बहुत कम हो गये। बंगाल प्रान्त पर रघूजी भोसले और उसके दीवान भास्कर राव चढ़ाई करके अंग्रेजों को कष्ट देने लगे। उस समय वहाँ के सूबेदार अलीवर्दीखाँ ने अंग्रेजों की बहुत सहायता की। मराठों से अपना बचाव करने के लिए अंग्रेजों ने कलकत्ते में खाई खोदी थी। यह खाई आज भी "मराठा खदक" के नाम से प्रसिद्ध है। कम्पनी के व्यापारी बड़ी मेहनत करते थे। उन्होंने यहाँ के बारीक और महीन कपड़ा बुनने की कला सीखकर उसका प्रचार अपने देश में किया। उसी समय से इंग्लैंड में कपड़ा तैयार किया जाने लगा। इससे वहाँ का व्यापार बढ़ गया और भारत का व्यापार नष्ट हुआ।

(६) **ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भीतरी दशा**—इंग्लैंड में कम्पनी के स्थापित होते ही लोगों ने अपनी अपनी पूँजी उसमें लगा दी। कम्पनी में पाँच सौ पौण्ड अथवा अधिक

# दूसरा अध्याय

## कर्नाटक और बङ्गाल

ई० स० १७४४-१७६३

१—कालविभाग
२—फ्रेंचों के साथ पहला युद्ध
३—पहला कर्नाटक-युद्ध
४—राबर्ट क्लाइव और अर्काट का घेरा
५—फ्रेंचों के साथ दूसरा युद्ध
६—कलकत्ता की हार
७—प्लासी का युद्ध

( १ ) कालविभाग—१७४४ में ऑग्रेज़ों ने राज्य-स्थापन का काम अपने हाथ में लिया। यह कार्य सन् १८१८ में पेशवाई के अन्त होने पर पूरा हुआ। इस अवधि में ऑग्रेजों व फ्रेंचों का यूरोप में झगड़ा चल रहा था। इसलिए उस समय भारत में ऑग्रेजों के जो युद्ध हुए उनमें खुल्लमखुल्ला एवं छिपे छिपे बहुधा फ्रेंच लोगों ने ऑग्रेजों के विरुद्ध पक्ष का साथ दिया। यूरोप में सन्धि हो जाने से अथवा अन्य कारणों से जब वे प्रत्यक्षरूप में यहाँ न लड सकते थे, तो छिपे छिपे यहाँ के राजाओं की मदद कर परस्पर युद्ध करते थे। ऐसे ही युद्धों में कर्नाटक और बङ्गाल में किये गये युद्धों की गिनती की जाती है। ( २ ) फ्रेंचों के साथ पहला युद्ध ( सन् १७४४-४८ )—इसमें लावर्डोने और डूप्ले फ्रेंचों के प्रधान थे। ( ३ ) कर्नाटक में पहला युद्ध, सन् १७४९-५४—फ्रेंचों की ओर डूप्ले और ऑग्रेजों की ओर क्लाइव

(३) फ्रेंचों के साथ तीसरा अथवा कर्नाटक का दूसरा युद्ध सन् १७५६-६३—फ्रेंचों की ओर काउंट लाली और अँगरेजों की ओर क्लाइव, लारेन्स, वाट्सन और आयर्कूट इत्यादि मुख्य अफसर थे।

इस प्रकार केवल कर्नाटक में ही तीन युद्ध हुए। कोई कोई इतिहासकार इन तीनों युद्धों को पहला, दूसरा और तीसरा कर्नाटक-युद्ध के नाम से पुकारते हैं। पहला और तीसरा युद्ध खुल्लमखुल्ला अंग्रेजों और फ्रेंचों में हुआ। दूसरे युद्ध के समय यूरोप में अंग्रेज और फ्रेंच एक दूसरे के मित्र थे। इसी से वह युद्ध देशी राजाओं की आड़ लेकर परस्पर लड़ा गया। अंग्रेजों ने मद्रास के पास पूर्वी किनारे के प्रदेश का नाम कर्नाटक रक्खा है। इसी से इन युद्धों का नाम उस प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध है।

(२) फ्रेंचों के साथ पहला युद्ध, (सन १७४४-४८)—अंग्रेज और फ्रेंच यूरोप में एक दूसरे के विरुद्ध लड़ रहे थे। इसी से भारत में भी उनके उपनिवेश एक दूसरे के साथ वैर करने लगे। उस समय अंग्रेजों के पक्ष में कोई सेनापति भी न था। फ्रेंचों के पक्ष में डूप्ले और लाबर्डोने नाम के दो चतुर पुरुष थे। लाबर्डोने एक बड़ा साहसी व्यक्ति था। वह छुटपन में ही समुद्र यात्रा का आदी था। वह सन १७४० में अंग्रेजों का व्यापार नष्ट करने के लिए कुछ फ्रेंच जहाज अपने साथ लेकर भारत आया। उसी समय से उसने फ्रेंचों की सत्ता साहस के अनेक काम करके बढ़ा दी। सन १७४६ में लाबर्डोने ने अंग्रेजों का मद्रास शहर छीन लिया और वहाँ के अंग्रेज व्यापारियों को पकड़कर डूप्ले ने पांडिचेरी

# दूसरा अध्याय

## कर्नाटक और बङ्गाल

ई० स० १७४४-१७६३

१—कालविभाग २—फ्रेंचों के साथ पहला युद्ध
३—पहला कर्नाटक युद्ध ४—राबर्ट क्लाइव और अर्काट का घेरा
५—फ्रेंचों के साथ दूसरा युद्ध ६—कलकत्ता की हार
७—प्लासी का युद्ध

( १ ) कालविभाग—१७४४ में अँग्रेज़ों ने राज्य-स्थापन का काम अपने हाथ में लिया। यह कार्य सन् १८१८ में पेशवाई के अन्त होने पर पूरा हुआ। इस अवधि में अँग्रेजों व फ्रेंचों का यूरोप में झगड़ा चल रहा था। इसलिए उस समय भारत में अँग्रेजों के जो युद्ध हुए उनमें खुल्लमखुल्ला एवं छिपे छिपे बहुधा फ्रेंच लोगों ने अँग्रेज़ों के विरुद्ध पक्ष का साथ दिया। यूरोप में सन्धि हो जाने से अथवा अन्य कारणों से जब वे प्रत्यक्षरूप में यहाँ न लड़ सकते थे, तो छिपे छिपे यहाँ के राजाओं की मदद कर परस्पर युद्ध करते थे। ऐसे ही युद्धों में कर्नाटक और बङ्गाल में किये गये युद्धों की गिनती की जाती है। ( २ ) फ्रेंचों के साथ पहला युद्ध ( सन् १७४४-४८ )—इसमें लाबर्डोने और डूप्ले फ्रेंचों के प्रधान थे। ( ३ ) कर्नाटक में पहला युद्ध, सन् १७४९-५४—फ्रेंचों की ओर डूप्ले और अँग्रेजों की ओर क्लाइव

(३) फ्रेंचों के साथ तीसरा अथवा कर्नाटक का दूसरा युद्ध सन् १७५६-६३—फ्रेंचों की ओर काउंट लाली और अँगरेजों की ओर क्लाइव, लारेन्स, वाट्सन और आयर्कूट इत्यादि मुख्य अफसर थे।

इस प्रकार केवल कर्नाटक में ही तीन युद्ध हुए। कोई कोई इतिहासकार इन तीनों युद्धों को पहला, दूसरा और तीसरा कर्नाटक-युद्ध के नाम से पुकारते हैं। पहला और तीसरा युद्ध खुल्लमखुल्ला अंग्रेजों और फ्रेंचों में हुआ। दूसरे युद्ध के समय यूरोप में अंग्रेज़ और फ्रेंच एक दूसरे के मित्र थे। इसी से वह युद्ध देशी राजाओं की आड़ लेकर परस्पर लड़ा गया। अंग्रेज़ों ने मद्रास के पास पूर्वी किनारे के प्रदेश का नाम कर्नाटक रक्खा है। इसी से इन युद्धों का नाम उस प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध है।

(२) फ्रेंचों के साथ पहला युद्ध, (सन १७४४-४८)—अंग्रेज और फ्रेंच यूरोप में एक दूसरे के विरुद्ध लड़ रहे थे। इसी से भारत में भी उनके उपनिवेश एक दूसरे के साथ वैर करने लगे। उस समय अंग्रेजों के पक्ष में कोई सेनापति भी न था। फ्रेंचों के पक्ष में डूप्ले और लाबर्डोने नाम के दो चतुर पुरुष थे। लाबर्डोने एक बड़ा साहसी व्यक्ति था। वह छुटपन में ही समुद्र-यात्रा का आदी था। वह सन् १७४० में अंग्रेजों का व्यापार नष्ट करने के लिए कुछ फ्रेंच जहाज अपने साथ लेकर भारत आया। उसी समय में उसने फ्रेंचों की सत्ता साहस के अनेक काम करके बढ़ा दी। सन् १७४६ में लाबर्डोने ने अंग्रेजों का मद्रास शहर छीन लिया और वहाँ के अंग्रेज व्यापारियों को पकड़कर डूप्ले ने पांडिचेरी

में कैद कर दिया। बाद को उसने अंग्रेज़ों के एक दूसरे क़िले सेंट डेविड पर भी हमला किया। लेकिन इस हमले मे उसे सफलता न मिली, क्योंकि अंग्रेज़ों की कर्नाटक के नवाब ने भी सहायता की थी। बाद को अंग्रेज़ों को इंग्लैंड से सहायता मिली। उस समय उन्होंने पाडिचेरी पर धावा बोल दिया। लेकिन अंग्रेज़ों के हाथ में पाडिचेरी न आ सकी। जिस समय यहाँ ये युद्ध हो रहे थे, उसी समय यूरोप में अंग्रेज़ों और फ्रेंचों में एक्सलाशेपल की संधि हो गई। अतः यहाँ भी लड़ाई बन्द हो गई और एक दूसरे ने लड़ाई में जीते हुए देश, जो जिसके थे, फेर दिये (सन् १७४८)। बाद को लाबडोंने और डूप्ले में मनमुटाव हो गया। अत लाबडोंने फ्रांस वापस लौट गया। वहाँ उसे फ्रेंच-सरकार ने जेल में डाल दिया। बाद को वह जेल में ही मर गया। वह चतुर और वीर व्यक्ति था।

(३) कर्नाटक का पहला युद्ध, (सन् १७४९-५४)—सन् १७४८ में निज़ामुल्मुल्क की मृत्यु हो गई। उसके पाँच लड़के थे और मुज़फ़्फ़रजङ्ग नाम का एक लड़का उसकी लड़की का बेटा था। मृत निज़ाम की यह इच्छा थी कि उसके बाद राज-काज की देख-रेख मुज़फ़्फ़रजंग करे। बड़ा लड़का ग़ाज़ीउद्दीन दिल्ली में बादशाह के दरबार में रहता था। अत छोटे लड़के नासिरजङ्ग को निज़ामुल्मुल्क की गद्दी मिली।

कर्नाटक का शासन औरंगज़ेब के समय से ही ज़ुल्फ़िकार-खाँ के पास था। किन्तु उसके बाद क्रमश दाऊदखाँ पन्नी तथा सन् १७१० में सआदतउल्ला यहाँ का नवाब बनाया गया। उसने सन् १७३२ तक उस प्रान्त का शासन किया, और उसके

बाद उसके भतीजे दोस्तअली के हाथ में वहाँ का शासन आ गया। इसी समय निजाम ने कर्नाटक को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया। उसी समय मराठों ने कर्नाटक पर चढ़ाई की और दोस्तअली को मार डाला। उसके लड़के सफदरअली के साथ मराठों ने संधि की। बाद को सफदरअली के सम्बन्धी मुर्त्तजाअली ने सन् १७४२ में उसकी हत्या कर डाली। उस समय वहाँ कुप्रबन्ध देखकर निजाम ने सन् १७४३ म चढाई करके कर्नाटक-प्रान्त को अपने अधिकार में कर लिया और शासन करने के लिए अपने विश्वासी सरदार अनवरुद्दीन को वहाँ तैनात किया। बाद को १७४८ में निजाम की मृत्यु हुई और चदा साहब मराठों की कैद से छुटकारा पाकर कर्नाटक म वापस आया। चदा साहब चतुर और डूप्ले का निकट मित्र था। इसलिए इसे अपने प्रभाव में रख फ्रेंचों का साम्राज्य भारत में स्थापित करने का प्रयत्न डूप्ले ने शुरू किया, अर्थात् चदा साहब का पक्ष डूप्ले को लेते देख अंग्रेजों ने अनवरुद्दीन का पक्ष लिया। पहले से ही मुजफ्फरजंग का स्नेह चदा साहब के साथ था। अत: चंदा साहब ने यह विचार किया कि पहले कर्नाटक प्रान्त पर अपना अमल हो जाय, बाद को निज़ामशाही पर हमला हो। डूप्ले को भी यह बात ठीक जँची। इन तीनों मित्रों ने मिलकर पहले अनवरुद्दीन पर चढाई की। ३-८-१७४९ को अम्बूर में बड़ी घमासान लडाई हुई। अनवरुद्दीन इस लड़ाई में मारा गया। अत उसका लड़का मुहम्मदअली भागकर त्रिचनापल्ली में छिप रहा। मुजफ्फरजग ने अपने आपको निजाम प्रकाशित कर अर्काट की नवाबी चदा साहब को दी और वे दोनों पाण्डि-

चेरी गये। इतने में ही मुज़फ्फरजंग का घमंड तोड़ने के लिए नासिरजंग ने मराठों की सहायता लेकर दक्षिण में कर्नाटक पर सितम्बर सन् १७५० में चढ़ाई की और मुज़फ्फरजंग को अपने अधिकार में कर मुहम्मदअली को आर्काट की नवाबी दे दी। इसी बीच में निज़ाम की फ़ौजें बाग़ी हो गईं। उसे दबाने का प्रयत्न करते हुए वह गोली-द्वारा मारा गया (५-१२-१७५०)। अत मुजफ़्फरजंग को शक्ति मिल गई और वह फिर पांडिचेरी गया। वहाँ डूप्ले ने एक बड़ा दरबार किया और उसमें मुज़फ़्फरजंग को निज़ाम और चंदा साहब को नवाब कहकर प्रकाशित किया। इस मौके पर मुज़फ़्फरजंग ने कृष्णा-नदी के मुहाने के दक्षिण की ओर का भाग किनारा पट्टा फ़्रेंचों को और उनके सरदारों और सिपाहियों को बड़े बड़े इनाम दिये। बाद को बुसी नाम का एक फ़्रेंच अफसर साथ में भेजकर डूप्ले ने मुजफ़्फरजंग को औरंगाबाद जाने के लिए विदा किया। मार्ग में मुजफ़्फरजंग के पठानों ने बलवा किया। इसी में उसकी मृत्यु हुई (जनवरी सन् १७५१)। अत निजामुल्मुल्क के तीसरे लड़के सलाबतजंग को बुसी ने निज़ाम बनाया और उससे भी मुज़फ़्फरजंग द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं के पालन करने का वचन उसने लिया। इस प्रकार निज़ाम के दरबार में फ़्रेंचों का प्रभाव जमने से अंग्रेज़ों का पक्ष कमजोर होता हुआ प्रतीत होने लगा। चंदा साहब ने अनवरुद्दीन के लड़के मुहम्मदअली को कैद करने के लिए त्रिचनापल्ली पर घेरा डाला (मार्च सन् १७५१)। अंग्रेजों का सारा दारमदार सिर्फ महम्मदअली का ही बचाव करने में था। किसी तरह महम्मदअली का बचाव कर उसे फिर कर्नाटक



मेजर लारेंस और मुहम्मद अली

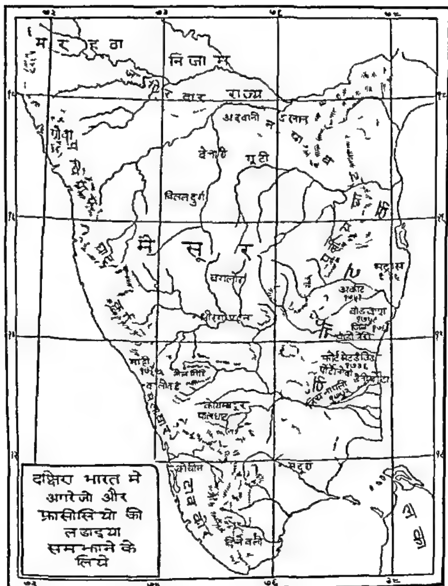
का नवाब बनाने का विचार अंग्रेजों ने किया। क्योंकि उन्होंने देखा कि उसके विना वे अपना बचाव नहीं कर सकते।

(४) राबर्ट क्लाइव और अर्काट का घेरा (सन् १७५१)—ऐसी आफत आ पड़ने पर अंग्रेजों के यहाँ रहनेवाले एक छोटे से आदमी ने उनकी बात बना दी। इतना ही क्यों, बल्कि कर्नाटक में उसी की चतुराई ने फ्रेंचों की धाक नष्ट कर दी और बाद को उसी ने अंग्रेज़ों की शक्ति भारत में स्थापित की। जिस समय मद्रास में राबर्ट क्लाइव आया, वह युवक था। माल के बोरे गिनने के काम पर तैनात था। उसने महम्मद-अली को छुटकारा दिलाने का एक उपाय सोचा और उस उपाय के द्वारा मुहम्मदअली को उसी ने तुरन्त छुड़ा लिया। अर्काट चन्दा साहब की राजधानी थी। उसने सोचा कि यदि अर्काट पर हमला कर दिया जाय और उस पर अपना अधिकार हो जाय तो उसे फिर से वापस लेने के लिए चन्दा साहब त्रिचनापल्ली का घेरा उठाकर अर्काट आवेगा। और इस प्रकार महम्मदअली को इस घेरे से छुटकारा पाने का मौका मिल जायगा। इसी विचार के अनुसार (११ ९-१७५१) दो सौ अंग्रेज सिपाही और तीन सौ हिन्दुस्तानी सिपाहियों को साथ लेकर क्लाइव ने अर्काट पर चढ़ाई कर दी। अत चन्दा साहब का लड़का रजा साहब त्रिचनापल्ली से लौटकर अर्काट का बचाव करने के लिए आया। क्लाइव ने किले पर अधिकार कर लिया था। उसे लेने के लिए रजा साहब ने उस पर घेरा डाला। उस समय क्लाइव ने ४ अक्टूबर से २५ नवम्बर तक बड़ी वीरता से अपना बचाव किया। रजा साहब का कोई उपाय उस पर न चला। इधर मेजर लॉरेंस विलायत से एक बड़ी फौज अपने साथ लेकर

आया और मुरारराव घोरपड़े ने भी मुहम्मदअली की सहायता की। इस प्रकार सम्मिलित फ़ौजों ने कावेरी-पाक और श्रीरंगम्-द्वीप की लड़ाइयों में २३-२-१७५२ को चन्दा साहब और उसके साथी फ्रेंचों को हरा दिया। इस लड़ाई में चन्दा साहब तंजोर के राजा के अधीन हुआ। उसने उसे मार डाला। बाद का सन् १७५२ में बाहूर की दूसरी लड़ाई बड़ी घमासान हुई। इसमें भी फ्रेंचों की करारी हार हुई। इसके बाद दो वर्षों तक अंग्रेज़ और फ्रेंचों में परस्पर छोटे-बड़े हमले होते रहे। इनमें वे एक दूसरे को हराते रहे। इधर बिना आज्ञा के युद्ध छेड़ने का अपराध लगाकर फ्रेंच-सरकार ने डूप्ले को विलायत वापस बुला लिया और युद्ध एकदम बंद कर दिया।

डूप्ले का उद्देश असफल हुआ। उस पर कर्ज़ भी अधिक लद गया था। इसके अतिरिक्त फ्रेंच-सरकार ने भी उसे कोई मदद न दी। इससे उसके बुढापे के दिन बड़े कष्ट और दरिद्रता से बीते। अन्त में वह कष्ट-विह्वल हो उठा और सन् १७६४ के नवम्बर मास की १०वीं तारीख़ को उसकी मृत्यु हुई। बुसी ने ही स्थिर रह कर निजाम के दरबार में बड़ी नीति के साथ अपना प्रभाव जमा रक्खा। इधर महम्मदअली को कर्नाटक की नवाबी मिली और उस पर अंग्रेज़ों का प्रभाव जम गया।

(५) फ्रेंचों के साथ दूसरा युद्ध, (सन् १७५६-६३)—उपर्युक्त युद्ध तो बंद हो गया, तथापि अंग्रेजों और फ्रेंचों की प्रतिस्पर्धा का अन्त न हुआ। सन् १७५४ में क्लाइव इंग्लेंड वापस गया। इसके जाने के बाद सन् १७५६ में यूरोप में अंग्रेज़ों और फ्रेंचों का युद्ध शुरू हो गया। भारत में भी फ्रेंच लोग जब तक थे तब


म र ह ट ा
नि जा म
राज्य
मैसूर
बंगलोर
श्रीरंगपट्टन
चितलदुर्ग
गूटी
मद्रास
अर्काट
कोयम्बटूर
पालघाट
मदुरा
कोचीन
त्रिचनापली
दक्षिण भारत मे
अगरेजो और
फ्रासीसियो की
लडाइया
समझाने के
लिये

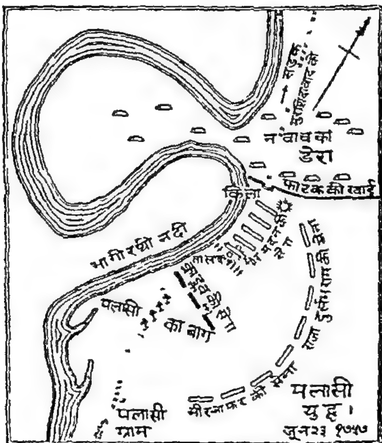
तक युद्ध का बंद होना सम्भव न था। यह बात क्लाइव ने इंग्लैंड में कम्पनी के मालिकों को अच्छी तरह समझा दी और फ़्रेंचों का प्रभाव भारत में एक दम नष्ट करने के लिए अपने साथ एक बड़ी फौज लेकर वह सन् १७५६ में भारत आया। वह इंग्लैंड में फोर्ट सेंट डेविड का गवर्नर तैनात कर दिया गया था। इसी तरह सन् १७५८ में काउंट लाली नाम का एक वीर फ़्रेंच अफसर भी अपने साथ एक बड़ा जहाज़ी बेड़ा लेकर भारत आया। यह अफसर बड़ा जल्दबाज़ था। बुसी को उसने निज़ाम के दरबार से वापस बुला लिया। बुसी के चले आने से निज़ाम के दरबार में फ़्रेंचों का प्रभाव नष्ट हो गया। अंग्रेजों की शक्ति एक दम तोड़ देने के लिए लाली ने अंग्रेज़ों के किले सेंट डेविड पर एकदम हमला किया और उस पर अधिकार कर लिया। लेकिन युद्ध को चलाते रहने के लिए उसके पास धन न था। अपने उद्धत व्यवहार से उसने अपने साथियों को भी नाराज कर लिया। अत अंग्रेज़ों ने काउंट लाली को बुरी तरह से हराकर उसकी शक्ति बिलकुल तोड़ दी। निज़ाम सलाबतजंग ने जब उससे सहायता माँगी उस समय भी लाली ने कोई सहायता निज़ाम को न दी। अत फ़्रेंचों से हताश होकर सलाबतजंग ने अंग्रेज़ों से सहायता माँगी। अंग्रेज तो यह चाहते ही थे। उस समय निज़ाम का उत्तरी-सरकार-प्रान्त फ़्रेंचों के अधिकार में था। वहाँ से कर्नल फोर्ड ने फ़्रेंचों को निकाल बाहर किया और अंग्रेज़ों का अधिकार उस पर जमाया। बाद को अंग्रेज़ सेनापति कर्नल कूट ने वान्दिवाश-नामक स्थान में लाली को बिलकुल हरा दिया (-१६१-१७६०) और अंग्रेज़ों ने पांडिचेरी पर घेरा डालकर वह किला भी अपने अधीन कर

लिया। इस प्रकार फ्रेंचो की सर्वत्र हार हो जाने से लाली को फ्रेंच-सरकार ने वापस बुला लिया। जब लाली फ़ास पहुँचा तब उसकी जाँच की गई। इस जाँच में वह अपराधी ठहरा और उसे मृत्यु-दंड की आज्ञा दी गई। यह आज्ञा विदित होते ही उसने नक़्शे खींचने के कम्पास को अपने पेट में भोंक कर आत्म-हत्या कर ली (९ मई १७६६)।

बाद को अंग्रेजो और फ्रेंचों में संधि हुई। इस सधि के अनुसार फ्रेंचों को केवल पाडिचेरी ही वापस मिला और कर्नाटक में अंग्रेजी सत्ता की धाक जम गई।

**(६) कलकत्ते का पतन, (सन १७५६)**—सन् १७०२ में मुर्शिदकुलीख़ाँ नाम के एक योग्य सरदार को औरंगज़ेब ने बंगाल का सूबेदार तैनात किया। वह सन् १७२५ में मर गया। उसके बाद उसके दामाद शुजाउद्दीन ने सन् १७४० तक बगाल का शासन किया। बाद को अलीवर्दीख़ाँ बङ्गाल की सूबेदारी की मसनद पर बैठा। इसी के शासन-काल में नागपुर के रघूजी भोसले ने बंगाल पर चढाई की थी और बगाल पर कर बैठा दिया था। अलीवर्दीख़ाँ चतुर था। उसकी अंग्रेज़ों के भी साथ मित्रता थी। इससे उनका व्यापार ख़ूब चलता था। अलीवर्दीख़ाँ सन् १७५६ मे ८० वर्ष का होकर मरा। उसके बाद उसका नाती सिराजुद्दौला बंगाल का सूबेदार बना। यह नवाब शक्तिशाली था। वह यह न सह सका कि अंग्रेज लोग उसके राज्य में अत्याचार करें। (१) किसनदास नाम का एक धनी व्यापारी बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद छोड़कर कलकत्ते में अंग्रेज़ों के पास जाकर रहने लगा। उसे वापस भेजने के लिए माँग पेश की गई। (२) कलकत्ते के किले पर जो नई दीवारें अंग्रेज उस समय बना रहे

थे उनको गिरा देने के लिए आग सूबेदारी में कोई विदेशी व्यक्ति युद्ध की तैयारी न करे—इस प्रकार की आज्ञाएँ सिराजुद्दौला ने लिखकर अंग्रेजों के पास भेजीं ( सन् १७५६ )। कलकत्ते के गवर्नर ड्रेक साहब ने किसनदास के मामले में कोई जवाब न देकर दीवार बनाने के सम्बन्ध में यह लिख भेजा कि हमने कोई नई बात नहीं की है। जो पुरानी दिवारें थीं, केवल उन्हीं की मरम्मत की है। इस मामले में बड़ी लिखा पढ़ी के बाद शांति से झगड़ा मिटता न देख सिराजुद्दौला ने नाराज होकर एक बड़ी फौज लेकर कलकत्ते के अंग्रेजों पर चढ़ाई की। उस समय अनेक अंग्रेज छिप-लुक कर हुगली-नदी में खड़े जहाज़ों पर बैठ कर भाग गये। बाद को सिराजुद्दौला ने क़िले पर अधिकार कर लिया। वहाँ अंग्रेजों के खज़ाने में अधिक धन न मिला। यह देखकर उसे बड़ा दुख हुआ। लड़ाई में १४६ अंग्रेज कैद किये गये थे। संध्या के समय ये लोग शराब पीकर नशे में एक दूसरे से दगा करने लगे। इस लिए रात भर इनको एक कोठरी में बंद रखने की आवश्यकता पड़ी। माणिकचंद नाम के एक आदमी को ये अंग्रेज कैदी सौंपे गये थे। उसने इन कैदियों को जेल की एक २० फुटवाली चौरस कोठरी में बंदकर दिया। इस कोठरी में एक छोटा झरोखा छोड़ कर हवा के आने का अन्य कोई मार्ग न था। जून महीने की कड़ी गर्मी पड़ रही थी। इन कैदियों को कोई पानी देनेवाला तक न था और रात्रि के समय किसी ने इनकी सूबेदार तक खबर भी न की। सवेरे दरवाज़ा खोलने पर देखा तो केवल २३ आदमी अधमरे मिले। यह घटना इतिहास में "कलकत्ते की काल कोठरी" के नाम से प्रसिद्ध है। वास्तव में यह दुर्घटना हुई या नहीं, इस सम्बन्ध में अभी मतभेद है। जिन कैदियों को नवाब ने


मुर्शिदाबाद की सड़क
नवाब का डेरा
फारक की खाई
किला
भागीरथी नदी
अंग्रेजों की सेना
पलासी का बाग
राजा दुर्लभराम की सेना
मीरजाफर की सेना
पलासी ग्राम
पलासी युद्ध।
जून २३ १७५७

थे उनको गिरा देने के लिए और सूबेदारी में कोई विदेशी व्यक्ति युद्ध की तैयारी न करे—इस प्रकार की आज्ञाएँ सिराजुद्दौला ने लिखकर अंग्रेजों के पास भेजीं ( सन् १७५६ )। कलकत्ते के गवर्नर ड्रेक साहब ने किसनदास के मामले में कोई जवाब न देकर दीवार बनाने के सम्बन्ध में यह लिख भेजा कि हमने कोई नई बात नहीं की है। जो पुरानी दिवारें थीं, केवल उन्हीं की मरम्मत की है। इस मामले में बड़ी लिखा पढ़ी के बाद शांति से झगड़ा मिटता न देख सिराजुद्दौला ने नाराज होकर एक बड़ी फौज लेकर कलकत्ते के अंग्रेजों पर चढ़ाई की। उस समय अनेक अंग्रेज छिप-लुक कर हुगली-नदी में खड़े जहाजों पर बैठ कर भाग गये। बाद को सिराजुद्दौला ने किले पर अधिकार कर लिया। वहाँ अंग्रेजों के खजाने में अधिक धन न मिला। यह देखकर उसे बड़ा दुख हुआ। लड़ाई में १४६ अंग्रेज कैद किये गये थे। सध्या के समय ये लोग शराब पीकर नशे में एक दूसरे से दगा करने लगे। इस लिए रात भर इनको एक कोठरी में बंद रखने की आवश्यकता पड़ी। माणिकचंद नाम के एक आदमी को ये अंग्रेज कैदी सौंपे गये थे। उसने इन कैदियों को जेल की एक २० फुटवाली चौरस कोठरी में बंदकर दिया। इस कोठरी में एक छोटा झरोखा छोड़ कर हवा के आने का अन्य कोई मार्ग न था। जून महीने की कड़ी गर्मी पड़ रही थी। इन कैदियों को कोई पानी देनेवाला तक न था और रात्रि के समय किसी ने इनकी सुधि तक खबर भी न की। सवेरे दरवाजा खोलने पर देखा तो केवल २३ आदमी अधमरे मिले। यह घटना इतिहास में "कलकत्ते की काल कोठरी" के नाम से प्रसिद्ध है। वास्तव में यह दुर्घटना हुई या नहीं, इस सम्बन्ध में अभी मतभेद है। जिन कैदियों को नवाब ने

मुर्शिदाबाद भेज दिया और अंग्रेज़ों की सभी कोठियों पर उसने अधिकार कर लिया। जून के अन्त तक एक भी कोठी अंग्रेजों के पास बंगाल में न रह गई।

( ७ )प्लासी की लड़ाई, (सन् १७५७)—कलकत्ते की यह ख़बर मद्रास पहुँची। उस समय क्लाइव यूरोप से वापस आ गया था। वह विजय दुर्ग पर अपना अधिकार कर मद्रास आ गया था। कुछ सेना साथ लेकर स्थल मार्ग द्वारा कलकत्ते की ओर चला और कुछ फौज साथ लेकर वाट्सन् जलमार्ग द्वारा कलकत्ता गया। पहले उन लोगों ने सिराजुद्दौला के आदमियों को भगाकर अपनी सब कोठियाँ वापस ले लीं, बाद को शीघ्र ही अंग्रेजों ने उसके साथ संधि की ( सन् १७५७ फ़रवरी )। उसमें क़िले की मरम्मत करा लेने की आज्ञा और कम्पनी का नुक़सान भर देने की स्वीकृति नवाब ने दी। इधर अंग्रेज़ों और फ्रेंचों का परस्पर युद्ध शुरू हो जाने से फ्रेंचों को निर्बल करने के लिए अंग्रेज़ों ने फ्रेंचों के चंद्रनगर पर धावा किया और उसे फ्रेंचों से छीन लिया और बंगाल में फ्रेंचों की कमर तोड़ देने के लिए अंग्रेज़ लोग सिराजुद्दौला से सहायता माँगने लगे। अपने देश में विदेशी लड़ें यह बात नवाब को अच्छी न लगी। इसलिए उसने अँगरेज़ों के साथ युद्ध करना निश्चित किया। और इस युद्ध में साथ देने के लिए उसने फ्रेंच लोगों को भी बुलाया, लेकिन वे लोग समय पर नवाब की सहायता के लिए न आ सके। सिराजुद्दौला अपनी प्रजा का भी अप्रिय बन चुका था। अलीवर्दी ख़ाँ की बहन, मीरजाफ़रअलीख़ाँ को ब्याही थी। अत. वही सेनापति का काम करता था। उससे सिराजुद्दौला की खटपट रहती थी। अत: उसको अपनी ओर मिलाकर सिराजु

दौला को नवाबी से उतारने का विचार क्लाइव ने किया। यह बात ठहरी कि क्लाइव लड़ाई के लिए तैयार हो, और ठीक लड़ाई के वक्त पर मीर जाफर नवाब का साथ छोड़ अँग्रेजों में जा मिले। लड़ाई की तैयारी होने पर १३ जून १७५७ को सब अँग्रेजी फौजें साथ लेकर मुर्शिदाबाद पर चढ़ाई करने के लिए क्लाइव चला। यह खबर पाते ही सिराजुद्दौला घबरा गया और अपनी सारी सेना इकट्ठी कर मुर्शिदाबाद से दक्षिण ८० मील दूर प्लासी नामक गाँव के पास, एक मैदान में, अँग्रेजों की सेना को रोकने के लिए वह आ गया। क्लाइव के साथ १ हजार यूरोपीय सैनिक थे और २१०० देशी सिपाही थे, तथापि मीरजाफर की बात पर भरोसा रखकर उसने नवाब की बहुत बड़ी फौज से लड़ाई छेड़ दी।

जगत् सेठ और उमीचन्द नाम के दो साहूकारों का दबदबा मुर्शिदाबाद में बहुत था। मीरजाफर का यह षड्यन्त्र उन्हें विदित था। इस षड्यन्त्र को गुप्त रखने के लिए उमीचन्द ने क्लाइव से एक बड़ी रकम माँगी। उसे यह रकम न मिलने पर यह भेद नवाब पर प्रकट कर देने की धमकी दी। इस भय से क्लाइव ने रकम न देने का निश्चय करके भी उसे उक्त रकम देने की प्रतिज्ञा की। किन्तु बाद को कोई रकम उसे न दी। सिराजुद्दौला के साथ ५०,००० पैदल, १८००० घुड़सवार और ५० तोपें थीं। ३० जून को नवाबी फौजों ने अंग्रेज़ी फौजों पर हमला किया। लड़ाई के शुरू होते ही मीरजाफर अपनी एक बड़ी फौज लेकर नवाब का पक्ष छोड़ अंग्रेजों से जा मिला। इससे नवाब की फौज घबराकर हमला करते ही करते भाग खड़ी हुई। इसके साथ ही नवाब को भी मुर्शिदाबाद की ओर भागना पड़ा। लेकिन वहाँ

उसे कोई व्यक्ति स्थान न देता था। अतः जिस समय वह फकीर का भेष धर कर अपने नौकरों के साथ भाग रहा था, मीर जाफर के लड़के मीरन ने उसे पकड़कर मार डाला।

लड़ाई के बद होने पर क्लाइव ने मुर्शिदाबाद में आकर मीर जाफ़र को बंगाल का सूबेदार बनाया। इसके बाद पुरस्कार बँटना शुरू हुआ। इस मामले में अकेले क्लाइव ने ही अपनी मेहनत के बदले ३० लाख रुपया उससे लिया। अन्य अंग्रेज़ो ने अपनी अपनी योग्यता के अनुसार नवाब से रुपये पुरस्कार में लिये। इसके सिवा मीर जाफर को कम्पनी को एक करोड़ रुपये देने थे। इतनी बड़ी रक़म खजाने में न थी। इसलिए सारा सामान तथा जवाहरात देकर यह रक़म पूरी की गई। और कुछ माफी मिलने पर भी मीरजाफ़र को ५ लाख रुपये देने बाक़ी रह गये। हुगली नदी के किनारे का दस लाख की आमदनीवाला प्रान्त मीर जाफर ने कम्पनी को दिया और उसके बदले में कम्पनी ने ९० हजार रुपये साल सूबेदार को देने का वचन दिया। पुरस्कार बाँटने के लिए दरबार किया गया था। उस समय क्लाइव ने उमीचंद से कहा कि "तुम्हें कुछ भी न मिलेगा"। इससे उमीचंद का दिमाग फिर गया और थोड़े ही दिनों में उसकी मृत्यु भी हो गई। इस तरह बंगाल प्रान्त का सूबेदार अंग्रेजों के आतंक में आ गया और उस प्रान्त पर भी अंग्रेजों की पूरी पूरी धाक जम गई। अंग्रेज़ फ्रेंच के सप्तवर्षीय युद्ध में मद्रास और बंगाल पर अंग्रेजों की सत्ता मज़बूती के साथ जम गई।

प्लासी में यद्यपि युद्ध बहुत बड़ा नहीं हुआ, तथापि इस युद्ध की गिनती इतिहास के स्वरूप को बदलनेवाले क्रान्तिकारक युद्धों में की जाती है। भारत में ब्रिटिश सत्ता का प्रभाव इसी लड़ाई के बाद से पड़ने लगा। इसके आगे सौ वर्षों

में ही अर्थात् १७५७ १८५७ तक में सारे भारत पर ब्रिटिश पताका फहराने लगी। प्लासी की विजय ने बंगाल प्रान्त को अंग्रेजों के अधीन कर दिया। आगे के चार-पाँच वर्षों में ही भारत का पूर्वी समुद्र तट पूर्ण रूप से अंग्रेजों के कब्ज़े में आ गया। पूर्वी भारत पर आक्रमण करनेवाले पश्चिमोत्तर की पहाड़ी घाटियों से होकर आया करते थे। परन्तु अंगरेज़ी सत्ता का प्रवेश जलमार्ग द्वारा जहाजी बेड़ों की सहायता से हुआ था। पहले समुद्र से विदेशियों के देश में आने का कोई उपाय न था। किन्तु अंग्रेजों के प्रवेश से यह समुद्र राजमार्ग बन गया। यद्यपि भारत की राजधानी दिल्ली को लेने में उन्हें ५० वर्ष और अधिक लगे, तथापि उसका महत्त्व आगे वैसा न रहा। केवल राजधानी के महत्त्व ने अनेक वर्षों तक प्रजा का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रक्खा था। ऐसा होने से समुद्र मार्ग से आने-जाने वालों की ओर किसी का ध्यान न जाने से अंग्रेज लोग निर्विघ्नता से अपना उद्देश सफल कर रहे थे। पूर्वी किनारे पर निष्कंटक अमल हो जाने के बाद अंग्रेज़ भारत के पश्चिमी तट पर अपना अधिकार करने के लिए अत्यंत उतावले हो गये। नारायणराव पेशवा की हत्या हो जाने के बाद ही राघोबा को अपने हाथ में कर अंग्रेज़ों ने मराठों से युद्ध करना शुरू किया। लेकिन नाना फडनवीस और महादजी सिंधिया ने अंग्रेजों के मंसूबे बड़ी निपुणता के साथ तोड़ दिये। आगे सन् १८१८ में पेशवाई का नाश होते ही पश्चिमी तट पर भी अंग्रेज़ों को पूर्ण अधिकार मिल गया। उनकी सत्ता का घेरा देश के सभी ओर फैल गया। सारांश यह कि भारत में ब्रिटिश सत्ता का विकास प्लासी की लड़ाई के बाद से ही समझा जाता है।

---

# तीसरा अध्याय

## राज्य-स्थापन का प्रारम्भ

१—मीरजाफर और क्लाइव
२—मीर कासिम
३—मीरकासिम के साथ युद्ध
४—क्लाइव की व्यवस्था—
५—दुहरे शासन का परिणाम
(अ) कम्पनी के नौकरों की
६—रेग्यूलेटिङ्ग एक्ट
(आ) बङ्गाल का शासन
७—क्लाइव का अंत और उसकी योग्यता
८—ई० इ० कम्पनी

(१) **मीरजाफर और क्लाइव**—मीरजाफर बङ्गाल प्रान्त का शासन करने के योग्य बिलकुल नहीं था। उसने अपने सगे सम्बन्धियों को ऊँची ऊँची नौकरियाँ देकर लोगों को नाराज कर लिया। हुगली नदी के तट पर चिन्सुरा में डच लोगों का उपनिवेश था। जावा द्वीप से डच लोग अपनी फौज भेजकर नवाब की सहायता कर सकते थे। इस भय को दूर करने के लिए क्लाइव ने चिन्सुरा पर अधिकार करके वहाँ के डच लोगों की शक्ति को नहीं सा कर दिया। यह बात मीरजाफर को न रुची। दिल्ली के बादशाह शाहआलम ने अवध के नवाब वज़ीर शुजा उद्दौला की सहायता लेकर बङ्गाल प्रान्त पर अपनी सत्ता जमाने के लिए सन् १७५९ में पटना पर पहली चढ़ाई की। उस समय पटना में रामनारायण नाम का एक शासक मीरजाफर की ओर से शासन कर रहा था। उसने शहर की रक्षा की। क्लाइव ने भी

उसके पास सहायता भेजी। उस समय क्लाइव ने मीरजाफर से बादशाह को कुछ धन दिलवा दिया। इसके बदले में बादशाह ने क्लाइव को ११ हजार का मनसब और अमीर की उपाधि दी। इस समय भारत के भिन्न भिन्न स्थानों में हलचल मच रही थी। क्लाइव की इच्छा थी कि बङ्गाल में कम्पनी अपना राज्य स्थापित करे और इस प्रयत्न के लिए वह सन् १७६० में दूसरी बार स्वदेश गया। लेकिन भारत में राज्य स्थापन करने का उसका विचार उस समय अंग्रेजी सरकार को नहीं रुचा।

(२) मीरकासिम, (सन् १७६१)—क्लाइव के बाद वेन्सिटार्ट बङ्गाल का गवर्नर हुआ। मीर जाफर की शासन-सम्बन्धी शिकायतें सुनकर वह स्वयं मुर्शिदाबाद गया। वहाँ उसने भली भाँति जाँच करके मीरजाफर को गद्दी से उतार दिया और मीर कासिम नामक उसके दामाद को बङ्गाल का नवाब बनाया। मीरजाफर पर अंग्रेजों का अत्यधिक कर्ज बढ़ गया था। यह सब मीरकासिम ने दे डाला और वर्दवान, चटगाँव और मेदनापुर कुल ५० लाख की आमदनी का राज्य कम्पनी को दिया। मीरजाफर कलकत्ते में जाकर रहने लगा।

इसी बीच में बादशाह शाहआलम और अवध के वज़ीर नवाब शुजाउद्दौला ने बंगाल पर दूसरी चढ़ाई की (सन् १७६१)। उस समय कासिम ने अंग्रेज़ों की सहायता से बादशाह को परास्त किया। कारनक नाम का एक अंग्रेज फौज का सेनापति था। उसने बादशाह को पटना में लाकर उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। एक बड़ा दरबार किया गया। इस दरबार में मीरकासिम ने बादशाह को नजर दी और बादशाह ने उसे नवाबी की पोशाक दी। बादशाह यह चाहता था कि अंग्रेज़ लोग मुझे

दिल्ली ले जाकर वहाँ तख़्त पर बिठावे। लेकिन अंग्रेज़ों ने उसकी यह बात न मानी। इसीसे बादशाह उदास होकर नवाब वज़ीर के साथ इलाहाबाद वापस गया (सन् १७६१)।

**( ३ ) मीरकासिम के साथ युद्ध, (सन् १७६३-६४)**—मीरकासिम और अंग्रेज़ों के बीच बहुत दिनों मेल-जोल न बना रह सका। क्योंकि (१) अंग्रेज़ों की अधीनता उसे रुचिकर न थी। गुप्तरीति से वह अंग्रेज़ों के साथ युद्ध करने की तैयारी करने लगा। उसकी राजधानी मुर्शिदाबाद कलकत्ते से बिलकुल पास थी। इस कारण वहाँ से अधिक दूर भागीरथी के तट पर मुंगेर को उसने अपनी राजधानी बनाया। इसी तरह उसने अनाड़ी सिपाहियों को नौकरी से अलग कर नई भर्ती के सिपाहियों को क़वायद सिखाकर तैयार किया और बन्दूक तथा तोपें तैयार करने का एक कारख़ाना भी खोला। (२) दूसरा कारण चुङ्गी से सम्बन्ध रखता है। बङ्गाल-प्रान्त में नदियों-द्वारा व्यापारिक माल भेजा जाता था। इसलिए जगह जगह पर चुङ्गी के नाके बने थे। फर्रुखसियर बादशाह के समय में केवल इंग्लैंड से लाये गये माल पर कम्पनी की चुङ्गी माफ़ कर दी गई थी। बाद को कम्पनी के नौकर अपना निजी व्यापार बढ़ाकर नमक, तम्बाकू, सुपाड़ी, तेल, शक्कर, चावल, सोंठ इत्यादि देशी माल भी बिना चुङ्गी दिये ले जाने लगे। यह देशी व्यापार कम्पनी का न था, तथापि अंग्रेज़ व्यापारियों को कम्पनी की ओर से माफ़ी के परवाने दिये जाने लगे। इससे देशी व्यापारियों का व्यापार एकदम चौपट हो गया, क्योंकि अंग्रेज़ों के माल पर चुङ्गी न लगने से वे चाहे जिस माल को चाहे जहाँ से लाकर सस्ती से सस्ती दर में बेच लेते थे। इससे नवाब की

चुङ्गी की आमदनी कम हो गई। उसने अंग्रेजों को बहुत कुछ समझाया, परन्तु अंग्रेज़ों ने उसकी एक न सुनी। अत निरुपाय होकर उसने अपने राज्य म सभी स्थानों पर चुङ्गी लेना एकदम बन्द कर दिया। इसस अन्य व्यापारियों को जो कठिनता थी वह दूर हो गई और उनका व्यापार भी चल निकला। लेकिन अंग्रेज, व्यापारियों को इससे होनेवाला लाभ नष्ट हो गया। अत कलकत्ते की कौंसिल ने यह प्रकट किया कि नवाब को कर बद करने का कोई अधिकार ही नहीं है। इस बात को लेकर दोनो पक्षों में झगड़ा बढते बढते लड़ाई की नौबत आ गई। पटना में अंग्रेजों की कोठी का मुखिया उस समय एलिस था। यही बगाल के सूबेदार का रेज़ीडेंट भी था। उसने पटना शहर और किले पर घेरा डाला। उस समय कलकत्ते से हथियारो से भरी हुई कई नावे पटना जा रही थीं। उन सब को मीरकासिम ने मुंगेर में जब्त कर लिया और अंग्रेजो से कहला भेजा कि एलिस को हमें सौंपो तो ये नावें तुम्हें वापिस की जॉयगी। यह बात अंग्रेज़ों ने न सुनी। यह बात जानकर मीरकासिम ने सभी अंग्रेजों को पकड़ने की आज्ञा दी। उस समय अनेक लोग उसके वश में आ गये। इधर कलकत्ते की कौंसिल ने एक प्रस्ताव द्वारा मीर कासिम को पदच्युत किया और उसकी जगह पर बूढे मीरजाफर को मुर्शिदाबाद में ले जाकर सूबेदार बनाया ( जून सन् १७६३ )। अंग्रेजों के आते ही मीरकासिम अपने सब कैदियों को साथ लेकर दूसरे स्थान पर चला गया। बाद को घोरिया नामक स्थान में बडी घमासान लड़ाई हुई। इसमें मीरकासिम हार गया। अक्टूबर में मुगेर शहर अंग्रेजों ने ले लिया। इससे मीरकासिम

बड़ा ही क्रुद्ध हुआ और पटना में वाल्टर रेनाल्ट उर्फ़ समरू* नाम के एक यूरोपीय को आज्ञा देकर उससे लगभग १५० अंग्रेज़ क़ैदियों को मरवा डाला। इस हत्याकाण्ड में एलिस भी मारा गया। बाद को अंग्रेज़ों ने पटना शहर पर भी अधिकार कर लिया। अत क़ासिम ने भाग कर अवध के नवाब वज़ीर और बादशाह को अपने साथ लेकर बंगाल प्रान्त को अंग्रेज़ों से मुक्त करने के लिए बंगाल पर चढ़ाई की। लेकिन पटना की लड़ाई में मीरक़ासिम की फिर हार हुई और पटना शहर भी उसे न मिला। इसलिए बरसात में उनकी फ़ौज भागीरथी के किनारे बक्सर में छावनी बनाकर ठहर गई। इसी समय मेजर मुनरो ने बक्सर पर हमला किया और २३-१० १७६४ को मीर क़ासिम और उसके साथियों की फौज को हरा दिया। इस हार से बंगाल प्रान्त को फिर से अपने अधिकार में लाने

* यह एक जर्मन था और फौजी नौकरी से अपना निर्वाह करता था। भारत में जिस समय बड़ा गड़बड़ फैल रहा था, उस समय वह मीर क़ासिम, नवलसिंह जाट इत्यादि के यहाँ नौकरी में था। जिस समय वह मीरक़ासिम के यहाँ था, उसने एक मुसलमान की सुन्दर लड़की के साथ अपना विवाह किया। यही स्त्री आगे चलकर बेगम समरू के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुई। वह ईसाइन बन गई थी और सन् १७७८ में पति के मरने पर उसी की फ़ौजी वृत्ति पर दिल्ली बादशाह की नौकरी में रहती थी। बादशाह ने उसे मेरठ के समीप सर्धना की जागीर दी थी। सन् १८०३ में अंग्रेजों ने जिस समय दिल्ली पर अपना अधिकार किया उस समय उस बेगम ने उनसे अपना बचाव किया। वह सन् १८३६ में मरी। इसके बाद उसकी जागीर अंग्रेज़ी राज्य में मिल गई।

की आशा मुसलमानो में न रह गई। बंगाल अब सब तरह से अंग्रेजों के अधिकार में आ गया।

(४) क्लाइव की व्यवस्था (१७६५-६७)—गवर्नर वेन्सिटार्ट का कार्यकाल समाप्त हो जाने और अन्य कोई योग्य व्यक्ति न मिलने के कारण कम्पनी के डाइरेक्टरों ने क्लाइव को वेन्सिटार्ट की जगह पर तैनात करके भेजा। उस समय क्लाइव ४० वर्ष का था। उसकी इच्छा थी कि बंगाल प्रान्त पर अपनी सत्ता कायम करके उसका उचित प्रबन्ध करे। लेकिन कम्पनी के डाइरेक्टरों ने उसे इस काम का अधिकार न दिया। कंपनी के नौकरों में घूसखोरी, भेंट इत्यादि लेना, मौज करना और उद्दंडता का व्यवहार करना इत्यादि दुर्गुणों का प्रवेश हो चुका था। क्लाइव ने भारत में आने पर यह दुरवस्था सुधारने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन उस समय उसे अपने काम में विशेष सफलता न मिली। क्लाइव ने दो मुख्य सुधार किये। एक कम्पनी और अंग्रेज नौकरों से सम्बन्ध रखनेवाला और दूसरा बंगाल का शासन-सम्बन्धी सुधार।

(अ) कम्पनी के नौकरों के सम्बन्ध में क्लाइव ने तीन कड़े नियम बनाये—(१) कम्पनी के नौकर अपना निजी व्यापार न करें। (२) फौजी और अन्य नौकरों को लड़ाई के समय का भत्ता अर्थात् अधिक वेतन न दिया जाय। (३) कम्पनी का नौकर नज़राना, घूस इत्यादि बिलकुल न ले। इस मामले में तत्कालीन सभी नौकरों के अत्यन्त पतित और नीति-भ्रष्ट हो जाने से सारी व्यवस्था बिगड़ गई थी। इस व्यवस्था को सुधारने का ही प्रयत्न क्लाइव ने किया था। धन हड़पने की आदत जिन नौकरों को पड़ गई थी उन्हें ये बातें अच्छी न लगीं। आतङ्क जमाने के लिए

अनेक नौकरों ने अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया। क्लाइव ने इनके इस्तीफ़े मंजूर किये और विद्रोहियों को कलकत्ते भेज दिया। फौजों में अंग्रेज सिपाहियों ने बगावत की। इनकी बगावत को क्लाइव ने देशी सिपाहियों की मदद से शांत किया। मीर क़ासिम के नाराज होने का एक मात्र कारण कम्पनी के नौकरों की यह धन हड़पने की आदत ही थी।

(आ) बङ्गाल का शासन—इस प्रान्त का मालिक बादशाह और उसकी ओर से सूबे की रक्षा करनेवाला सूबेदार था। इनमें सूबेदार और बादशाह को हराकर अंग्रेज़ों ने यह प्रान्त लिया था। लेकिन शासन की बागडोर को खुल्लमखुल्ला अपने हाथ में रखने की इच्छा कम्पनी के डाइरेक्टरों की न थी। इसलिए अपना प्रभुत्व क़ायम रखकर वहाँ की आमदनी अविच्छिन्न रूप से लेने के लिए बादशाह, सूबेदार और उनका सहायक अवध का नवाब वजीर—इन तीनों के साथ अलग अलग संधि कर एक ही साँकल में इन तीनों को बाँधने और फिर कभी एक दूसरे से न मिलने देने के लिए उक्त संधि में निम्न लिखित शर्तें रक्खी गई थीं—

(१) बङ्गाल के सूबेदार के साथ की हुई संधि—मीर जाफर बुड्ढा होकर मर चुका था। उसके स्थान पर कम्पनी ने उसके लड़के निज़ामुद्दौला को बैठाया था। उसका कार्य भार सँभालने के लिए महम्मद रज़ाख़ाँ को मुर्शिदाबाद में और राजा सिताबराय को पटने में तैनात किया। इन दोनों को मालगुज़ारी और शासन सम्बन्धी सभी काम सौंपे गये। सूबेदार को ख़र्च के लिए ५० लाख रुपया सालाना दिया गया और बाकी की मालिक कम्पनी बनी। इसमें से ५० लाख रुपये ख़र्च करके प्रान्त की रक्षा के लिए फ़ौज रखने का प्रबन्ध हुआ। इस प्रकार चार करोड़ की आम-

दनी का बङ्गाल प्रान्त अँग्रेजों को मिला। इसमें से दो करोड़ की बचत क्लाइव ने कम्पनी के लिए रक्खी।

( २ ) अवध के नवाब वजीर के साथ क्लाइव ने इलाहाबाद जाकर यह निश्चय किया कि ( अ ) कम्पनी के विरुद्ध अकारण लड़ाई छेड़ने के लिए ५० लाख रुपये दण्ड के रूप में वजीर कम्पनी को दे। ( आ ) कड़ा और इलाहाबाद के सूबे वह बादशाह को खर्च के लिए दे। ( इ ) अवध प्रान्त में कम्पनी के व्यापार पर अंग्रेजों से चुङ्गी न ली जाय। ( ई ) काशी का राजा बलवन्तसिंह, जो अब तक अवध के नवाब वजीर का मातहत था और जिसने उसके विरुद्ध अँग्रेजों को मदद दी थी, नवाब वजीर की मातहती में न समझा जाय। इस तरह यह वजीर भी बादशाह से अलग होकर कम्पनी की सत्ता के अधीन हुआ। इस विषय में बाद को उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। लेकिन उसके पास इस गलती के सुधारने का कोई उपाय न था।

( ३ ) बादशाह के साथ सन्धि और दुहरा शासन (डी डबल गवर्नमेण्ट)—( अ ) पहले बङ्गाल-प्रान्त से बादशाह को एक करोड़ रुपया मिलता था। उसके बदले में २६ लाख रुपया कम्पनी ने बादशाह को प्रति वर्ष देना स्वीकार किया और कड़ा व इलाहाबाद के प्रान्त उसे दिये गये। इतनी ही आमदनी से बादशाह अपना खर्च चलावे। ( आ ) बंगाल के सम्पूर्ण प्रान्त की दीवानी अर्थात् मालगुजारी वसूल करने का अधिकार बादशाह अंग्रेजों को दे। निजाम का उत्तरी सरकार प्रान्त भी अंग्रेजों ने उस समय जीत लिया था। वह भी अंग्रेजों के कब्जे में रहे। ( ई ) इसके बाद किसी राजा के साथ कम्पनी झगड़ा न करे ( १०-८ १७६५ )।

इन सब सन्धियों के अनुसार जो व्यवस्था बंगाल के शासन

के लिए निश्चित की गई उसका नाम इतिहास में क्लाइव की दुहरी राज्य-व्यवस्था है। मुगलों के शासन-काल में प्रत्येक सूबे पर सूबेदार की मातहती में दो कार्यकर्त्ता रहते थे, एक निजाम और दूसरा दीवान। दीवान के पास मालगुजारी वसूल करने का काम था और न्याय-दण्ड इत्यादि का काम निजाम के हाथ में रहता था। उपर्युक्त सन्धि में बादशाह ने बंगाल प्रान्त की सिर्फ दीवानी ही अंग्रेजों को सौंपी थी। अर्थात् अंग्रेजों को प्रति वर्ष बंगाल से ४ करोड़ रुपये वसूल करने का अधिकार दिया गया था। कर वसूल करनेवाले पर ही प्रजा की रक्षा की जिम्मेदारी रहती है। लेकिन रक्षा का काम अंग्रेजों पर न रह कर देशी पदाधिकारियों को सौंपा गया, अर्थात् बंगाल-प्रान्त पर बादशाह और कम्पनी दोनों का अमल शुरू हुआ। इसी व्यवस्था को "दुहरी व्यवस्था" कहते हैं। कम्पनी के डाइरेक्टरों ने क्लाइव को लिखकर निजामी का काम लेने से साफ मना कर दिया था। सभी बातें बादशाह का बड़प्पन रखकर करनी थीं। एक ओर बादशाह और दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार और कम्पनी इन दोनों को थोड़ा-बहुत प्रसन्न रखकर कम्पनी का लाभ क्लाइव ने किया। ये सब काम करके क्लाइव सन् १७६७ में स्वदेश को लौट गया और अव्यवस्था का भार अपने उत्तराधिकारियों पर डाल गया।

सन् १७५७ के बाद केवल सात वर्ष में सिराजुद्दौला, मीर जाफर, मीर कासिम—इस प्रकार बंगाल में तीन सूबेदार हो गये। लेकिन जो अपना काम करने के योग्य था उसके साथ कम्पनी की नहीं पटी। वजीर, बादशाह, जाट, गाजीउद्दीन, सिंधिया, होलकर इत्यादि के समीप पहुँचकर क़ासिम बाद को तरह

तरह से समझा-बुझाकर बंगाल प्रान्त को कम्पनी के चंगुल से छुड़ाने का प्रयत्न करता रहा, लेकिन अंग्रेजों के साथ इन सभी की सन्धि होने के कारण मीर कासिम को कोई सहायता न मिली। अन्त में वह मर गया।

(५) दुहरे शासन का परिणाम—क्लाइव की व्यवस्था में ईस्ट इंडिया कम्पनी का अधिकार बादशाह के साथ सम्बन्ध हो जाने के कारण दक्षिण के निजाम तथा अन्य सूबेदारों के समान तथा कुछ अंशों में इससे भी बढ़कर हो गया था। (१) क्लाइव ने न्याय की अदालतें बंगाल प्रान्त में कीं अवश्य, लेकिन उन पर अधिकार कम्पनी का न स्थापित होकर सूबेदार का था। मालगुजारी एक को मिले और न्याय दूसरा करे—ऐसी व्यवस्था कब फल सकती थी? इससे प्रजा का कष्ट बढ़ने लगा। पहले के शासनों में, प्रजा की पुकार सूबेदार सुनते थे। इससे न्याय के लिए स्थान था। वह बात अब नष्ट हो चुकी थी। अत प्रजा दरिद्र हो गई। कम्पनी के कर्मचारी केवल मालगुजारी ही वसूल करने पर ध्यान देते थे। (२) शीघ्र ही बङ्गाल प्रान्त में जोर का अकाल पड़ा। कर का वसूल होना भी बन्द हुआ। महम्मद रजाखाँ और सिताबराय कम्पनी के नौकरों को खुश रखने के अतिरिक्त कोई काम न करते थे। इनके विरुद्ध अनेक शिकायतें कम्पनी तक पहुँचीं। लेकिन उनकी जाँच करने के लिए जो आदमी भेजे गये उन्होंने उनके काम की बड़ी तारीफ की। कम्पनी के नौकरों के निजी व्यापार के बढ़ने से कम्पनी का व्यापार नष्ट हुआ। मालगुजारी की भी आमदनी रुकी और व्यापार की भी आमदनी बन्द हुई। इससे इङ्गलैण्ड में कम्पनी के डाइरेक्टर बेहद नाराज हुए। (३) इधर १७७० में बङ्गाल में बड़ा भयङ्कर अकाल पड़ा। इस अकाल ने

पक्ष में किसी का समर्थन न होने से पार्लामेंट में यह प्रस्ताव पास हुआ कि "क्लाइव ने स्वदेश की अत्यन्त स्तुत्य और महत्व की सेवा की है।" इस प्रकार अपनी ढलती उमर में पॉच छ वर्ष बराबर परिश्रम कर अपने राष्ट्र से कहीं अधिक बड़ी जन संख्या का नवीन राज्य स्वदेश को देनेवाला यह वीर व्यक्ति सन् १७७४ में मर गया। वह चतुर, चालक, धीर और न्याया न्याय की परवा न कर अपना काम करनेवाला आदमी था। भारत की स्थिति को पहचान कर उसने यह निर्दिष्ट कर दिया था कि यहॉ अंग्रेजों का राज्य स्थापित हो जायगा। प्रारम्भ में लोगों ने उसकी इस कल्पना का आदर न किया। लेकिन उसकी मृत्यु के बाद राष्ट्र की उन्नति देखकर वे उसका बहुत सम्मान करने लगे। राज्य-स्थापन के कार्य मे अपने नौकरों का अभिमान करने का गुण अंग्रेजो में देखा जाता है। क्लाइव और हेस्टिंग्ज का अन्त और डूप्ले और लाली का अन्त, इन दोनों का भेद ध्यान में रखने से अंग्रेज और फ्रेंच का राष्ट्र-भेद विदित हो जायगा।

(८) ईस्ट इण्डिया कम्पनी, (सन् १७४८-७३)—सन् १७८४ से कम्पनी के व्यवहार की अधिक विकट और झगडे की अवस्था रही। इसके बाद सन् १८५८ में कम्पनी का जिस समय अंत हुआ उस समय तक का कम्पनी का कार्य बड़े महत्व का है। व्यापार का कार्य ढीला करके उसने शासन का कार्य खूब बढाया। अत व्यापार नष्ट हो गया, लेकिन कम्पनी के राज्य की वृद्धि हुई। कम्पनी के कामों की आलोचना विलायत में होने से कम्पनी का काम पार्लामेंट ने अपने हाथ में ले लिया और जो सनद स्थायी रुप मे उसे दी गई थी उसकी व्यापकता का समय निर्दिष्ट कर दिया गया। यह भी निश्चय हुआ कि समय

लार्डक्लाइव के
पश्चात
ब्रिटिश भारत।

अफगानिस्तान
सिंधनद
मुगल
साम्राज्य
राजपूत
होलकर
गायकवार
नर्मदा
अवध
गंगानद
पटना
प्रयाग
काशी
बिहार
बंगाल
कलकत्ता
महाराष्ट्र
भोंसले
उड़ीसा
सूरत
बम्बई
गोदावरी
पूना
निजाम
हैदराबाद
उ. सरकार
मछलीपट्टन
मैसूर
कर्नाटक
मद्रास
तिलेचरी
त्रावनकोर

की आवश्यकता को देखकर सनद की शर्त्तें, उसका काल समाप्त होने पर, नई सनद में घटा बढ़ा दी जाँय। प्रत्येक सनद का कार्य काल २० वर्ष निश्चित रक्खा गया। इसलिए कम्पनी के शासन-काल में सन् १७७३, १७९३, १८१३ और १८५३ बड़े मार्के के वर्ष हैं। इनमें से पहले १० वर्षों तक कम्पनी के कारबार का हर तीन वर्ष बाद विवरण प्रकाशित किया जाने लगा। सन् १७७१ से १७९४ तक वादविवाद भी खूब होते रहे। अंग्रेजी शासन का प्रारम्भ १७७३ से समझा जाता है। क्योंकि उसी वर्ष से गवर्नर जनरल की तैनाती हुई, कम्पनी के अधिकार में कमी होने लगी और धीरे धीरे उसके व्यापार और एकाधिकार में कमी होती गई। सन् १८१३ में पार्लामेंट में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि जो राज्य कम्पनी ने जीता है उस पर कम्पनी और इंग्लण्ड के राजा का समान अधिकार समझा जाय। सन् १८३३ में फिर यह निश्चय किया गया कि जीते हुए प्रदेशों पर स्वामित्व का अधिकार राजा का ही समझा जाय, कम्पनी केवल प्रबन्ध करनेवाले ट्रस्टी के रूप में रहे। सन् १८५३ में तो भारत में शासन-सम्बन्धी कार्यों पर नौकरों की तैनाती का अधिकार भी कम्पनी से ले लिया गया। अन्त में सन् १८५८ में कम्पनी का ही अन्त होगया।

---

# चतुर्थ अध्याय

## वारेन हेस्टिंग्स

### ई० स० १७७४-१७८५

१—वारेन हेस्टिंग्स
( १ ) पूर्व परिचय
( २ ) कौंसिल के झगड़े
( ३ ) नंदकुमार का मामला

३—हेस्टिंग्स के युद्ध
( १ ) हैदरअली की उन्नति
( २ ) मैसूर से पहला युद्ध
( ३ ) मैसूर से दूसरा युद्ध
( ४ ) हैदर की मृत्यु

२—धन इकट्ठा करने के उपाय।
( १ ) सूबेदार की पेंशन में कमी
( २ ) बादशाह की रकम में कमी
( ३ ) कड़ा और इलाहाबाद की बिक्री
( ४ ) रुहेलों के साथ युद्ध
( ५ ) चेतसिंह का मामला
( ६ ) अवध की बेगम

४—हेस्टिंग्स की योग्यता

५—उसकी जाँच और निर्णय

## १—वारेन हेस्टिंग्स

( १ ) पूर्व परिचय ( १७७४-८५ )—यह सन् १७३२ में उत्पन्न हुआ। इसके माँ बाप गरीब थे। थोड़ा सा पढ लिख कर आगे पढने लिखने का कोई प्रबन्ध न होने से सन् १७५० में इसने ईस्ट इंडिया कम्पनी में लेखक की नौकरी स्वीकार कर ली। हिसाब किताब में चतुर समझ क्लाइव ने उसे मीर जाफर के दरबार में ब्रिटिश दूत का पद दिया। सन्

१७६१ में वह कलकत्ता कौंसिल का सदस्य बना और थोड़ा बहुत धन इकट्ठा करने के बाद सन् १७६४ में स्वदेश चला गया। सारांश यह कि हेस्टिंग्स क्लाइव की शिक्षा प्राप्त कर चुका था। अपने पास का कमाया धन चार पाँच वर्षों मे खर्च हो जाने के बाद वह फिर मद्रास-कौंसिल मे नौकरी स्वीकार करके सन् १७६९ में भारत आया। यहाँ हिसाब और व्यापार की व्यवस्था करता था। दूसरे वर्ष उसे कलकत्ता कौंसिल में पद मिला। बाद को सन् १७७२ में वह बंगाल का गवर्नर बना और रेग्यूलेटिङ्ग एक्ट के अनुसार सन १७७४ मे वह गवर्नर जनरल बना।

( २ ) कौंसिल के झगडे—कौंसिल में जिन चार नवीन सदस्यों को तैनाती हुई थी उनमे बार्वेल भारत में बहुत पहले से रहता था। इससे उसे यहाँ की परिस्थिति का ज्ञान अच्छी तरह से था और वह हेस्टिंग्स के विचारों से सहमत भी रहता था। अन्य तीन सदस्य बिलकुल नये थे। अत उन्हें गवर्नर जनरल का प्रत्येक कार्य अन्याय से भरा हुआ प्रतीत होता था। इसलिए ये तीनों सदस्य अधिकतर गवर्नर जनरल के विचारों के विरुद्ध अपना मत देने लगे। उन तीन सदस्यों में सर फ़िलिप फ्रांसिस बडा अनुभवी, चतुर और विद्वान व्यक्ति था, लेकिन उसके विचार हेस्टिंग्स के सम्बन्ध में अच्छे न थे। वह सदैव गवर्नर जनरल के विरुद्ध अपना मत देता था। अन्य दो सदस्य उसके विचारों से अपनी सम्मति ही प्रकाश किया करते थे। इंग्लैंड छोड कर भारत में आने पर यहाँ कम्पनी के नौकर पहले पहल अत्याचार करते हैं—ऐसा उनमें विश्वास जम जाने से कौंसिल में झगडे शुरू हुए और सदैव गवर्नर जनरल के विचारों के विरुद्ध कौंसिल में बहुमत होने लगा। इस कारण हेस्टिंग्स कुछ दिनों

नक नाम मात्र का गवर्नर जनरल रहा । उसके द्वारा की गई बातों को कौंसिल ने उलट दिया । ये बातें बाहर के लोगों के कानों तक पहुँचने से लोगों ने गवर्नर जनरल के विरुद्ध अर्ज़ियाँ देनी शुरु की । इसी में नन्दकुमार का मामला आ खड़ा हुआ वह इस प्रकार है—

( ३ ) नन्दकुमार का मामला—नदकुमार नाम का एक प्रभावशाली ब्राह्मण उस समय राज-सम्बन्धी मामलों में बहुत प्रसिद्ध था । सूबेदार की वज़ीरी का पद महम्मद रज़ाखाँ को मिला था । उसे प्राप्त करने की इच्छा नदकुमार को थी । लेकिन क्लाइव ने यह काम उसे न दिया । उस समय से रजाखाँ की अव्यवस्था दिखाने का काम उसने प्रारंभ कर दिया । बाद को डाइरेक्टरों का हुक्म मिलने पर महम्मद रजाखाँ और सिताबराय को हेस्टिंग्स ने कलकत्ते में कैद किया और नदकुमार की मदद से उनकी जाँच की । उसमें दोनों ही निर्दोष साबित होने पर उनकी रिहाई हुई, तथापि वजीर का पद तोडकर हेस्टिंग्स ने उस जगह पर एक अंग्रेज अफसर को तैनात किया और नदकुमार के लड़के गुरुदास को खजाने का काम सौंपा । लेकिन इतने से नंदकुमार को संतोष न हुआ । उसने समझा कि काम पडने पर हेस्टिंग्स ने मुझे अपनी ओर कर लिया और अपना काम निकल जाने पर मुझे कुछ न दिया । इससे वह अत्यत खिन्न हुआ और उसने कौंसिल में होने वाले गड़बड़ को देख हेस्टिंग्स पर घूस लेने का दोष लगाया । उस मामले का निर्णय तीन सभासदों ने किया और उन्होंने हेस्टिंग्स से घूस की रकम वापस कर देने का हुक्म दिया । इससे हेस्टिंग्स नदकुमार पर अत्यंत क्रुद्ध हुआ ।

सुप्रीम कोर्ट के नये बड़े न्यायाधीश इम्पे की इजलास में नदकुमार पर ६ वर्ष पूर्व जाली दस्तावेज तैयार करने की अर्जी हेस्टिग्स ने दिलवा दी। उसका इपे ने निर्णय किया और नदकुमार को फाँसी की सजा दी (सन् १७७५)। इस प्रकार हेस्टिंग्स का बदला इपे ने नदकुमार से चुका लिया। यह सजा अवश्य ही बड़ी सख्त थी, परन्तु इससे हेस्टिंग्स की धाक जम गई। मान्सन सन् १७७६ में और क्लेवरिङ १७७७ मे मर गया। अत हेस्टिग्स का का काम अव बेरोक टोक चल निकला। फ्रासिस से उसका मनमुटाव बढता रहा। अन्त में दोनो को घूँसेबाजी हुई ( १७-८-१७८० )। इसके बाद फ्रासिस स्वदेश को लौट गया।

## २—हेस्टिंगस के धन एकत्र करने के कृत्य

हेस्टिग्स को धन एकत्र करने में बड़ी कठिनता का सामना करना पडता था। नई राज्य-व्यवस्था को चलाने में धन की अधिक आवश्यकता पड़ने लगी। इग्लेड को एक निश्चित रक़म भेजनी पडती थी। इसके बाद उसे अनेक युद्धों का ख़र्च भी झेलना पड़ता था। इन सब कामों में खर्च करने के लिए धन इकट्ठा करने का भार हेस्टिंग्स पर पडा। इसको पूरा करने के लिए उसने कई निन्दित कार्य किये। उनका वर्णन यहाँ दिया जाता है—

(१) सूबेदार की पेशन मे कमी—क्लाइव ने बगाल प्रान्त की व्यवस्था करने के लिए जो रक़म प्रति वर्ष देना स्वीकृत किया था वह साठ लाख थी। उसे उसने ४५ लाख कर दी और आगे कमी न कम करने का वचन दिया ( सन् १७६६ )। वेन्सिटार्ट ने सन् १७६० मे उसे और भी कम करके ३५ लाख

की फ़ौज को दो स्थानों में हराया और कर्नाटक से त्रिचनापल्ली, मदुरा, तिनेवल्ली इत्यादि स्थानों को उजाड़ता हुआ वह एकदम सीधा मद्रास के समीप पहुँच गया। उस समय अंग्रेज़ों को उसके साथ संधि करनी पड़ी। इस संधि का नाम मद्रास की संधि है ( सन् १७६९ )। उसमें निम्नलिखित शर्तें थीं।

१—युद्ध में जो स्थान एक दूसरे ने एक दूसरे से छीने हैं वे वापस किये जायँ।

२—एक दूसरे शत्रु को भगाने के लिए एक दूसरे को परस्पर मदद दें।

अँग्रेज़ों को इस सन्धि से हानि हुई। क्योंकि युद्ध का सभी ख़र्च उन्हीं को देना पड़ा और हैदर का महत्त्व बहुत बढ़ गया।

दूसरा मैसूर युद्ध ( सन् १७८०-८४ )—कारण—( १ ) सन् १७७१ में मराठों ने हैदरअली पर हमला किया था। उस समय उपर्युक्त सन्धि के अनुसार हैदर ने अँग्रेज़ों से मदद माँगी। अँग्रेज़ों ने हैदर की कोई मदद न कर उल्टा मराठों का पक्ष लिया। इससे हैदर अँग्रेजों से रुष्ट हो गया। ( २ ) सन १७७८ में अँग्रेज-फ्रेंच युद्ध हुआ था। इस युद्ध में अँग्रेजों ने फ्रेंचों से माही छीन लिया। माही-द्वारा हैदर अपनी युद्ध की सामग्री विदेशों से मँगाता था। यह स्थान अँग्रेज़ों के क़ब्ज़े में आ जाने से हैदर का यह मार्ग बन्द हो गया, इसलिए उसे अँग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठाना पड़ा। ( ३ ) मराठों में अनेक झगड़े शुरू होने से इधर १० वर्ष की शान्ति हैदर को मिली। इतने समय में उसने अपनी शक्ति फिर बढ़ा ली। उसे [illegible] ने दक्षिण की सूबेदारी दी। मराठों के साथ [illegible] का [illegible] नाना फडनवीस ने हैदर को [illegible] १७८० में नाना

ने अँग्रेज़ों के विरुद्ध एक बड़ी जबर्दस्त चाल खेलकर हैदरअली के साथ गुप्त सन्धि की, जिसमें किसी तरह आपस में मिलकर वे अँग्रेजों की शक्ति तोड़ सकें। इस क्रम के अनुसार हैदरअली ने अचानक मद्रास पर धावा किया।

पहली लड़ाई (सन १७८०-८१)—हैदरअली सब देश को उजाड़ता हुआ एक बड़ी फौज लेकर मद्रास पर चढ दौड़ा। उस समय गतूर प्रान्त में कर्नल बेली और जनरल सर विक्टर मनरो अपनी अपनी सेनाओं के साथ एक दूसरे से अलग रहकर उसका सामना करने चले। लेकिन इन दोनों की फौजों के एक दूसरे से मिलने से पहले ही हैदर और उसका लड़का टीपू कर्नल बेली की सेना पर टूट पड़े और उसको नष्ट कर दिया। बेली कैद किया गया। लेकिन मनरो मद्रास भाग गया। हेस्टिंग्स को ये समाचार मिलने ही उसने सर आयर कूट के साथ कुछ फौज जल की राह से मद्रास भेजी। कूट ने पोर्टोनोवो की लड़ाई में और उसके थोड़े दिनों बाद दूसरे स्थान पर हैदर की फौजों को हरा दिया (सन् १७८१)।

(४) हैदर की मृत्यु और उसकी योग्यता (सन् १७८२)—हैदर को फ्रेंच लोगों ने सहायता दी और वह मालाबार की ओर झुका। इसी बीच में इस ८० वर्ष के बूढे और पराक्रमी पुरुष की मृत्यु (७ दि-१७८२) हो गई। उसका लड़का टीपू उसके पास मृत्यु के समय न था। इसलिए उसके आने तक उसके दीवान पूर्णय्या ने उसके मरने की खबर दो दिन तक बिल्कुल गुप्त रक्खी और युद्ध बराबर जारी रक्खा। हैदर बड़ा साहसी था। बाल्यकाल में ही उसे अनेक सकटों के सहने

के सामने हाजिर हुआ। लोगों का चित्त बड़ा उद्विग्न और सतप्त हो रहा था। लोगों का इतना उग्र स्वरूप पहले किसी ने न देखा था। बर्क, शेरिडन इत्यादि व्याख्यानदाताओं ने हेस्टिंग्स के अन्यायों का वर्णन करने के लिए जो व्याख्यान दिये थे वे इतने सुन्दर और रोचक हैं कि अंग्रेजी साहित्य में वे आज भी आदर्श दृष्टि से देखे जाते हैं। अवध की बेगमों पर किये गये अत्याचारों का वर्णन जिस समय शेरिडन ने ५ घंटे तक किया उस समय सुननेवालों का चित्त इतना उद्विग्न हो उठा कि सभा के अध्यक्ष को विचार करने का मौका न मिलने से और अशान्ति फैलने के भय से उस दिन की बैठक स्थगित करनी पड़ी। यह जाँच का काम सात वर्ष तक चला और लोग भी थक गये। हेस्टिंग्स की सारी कमाई इसमें स्वाहा हो गई, तथापि न्यायासन के सामने वह निर्दोष ही छूटा। इस उदाहरण से ब्रिटिश न्याय और ब्रिटिश जाति के स्वजनाभिमान के गुण प्रकट होते हैं। हेस्टिंग्स इसके बाद २४ वर्ष तक जीवित रहा। उसके अन्यायों को लोग भूल गये। भारत में ब्रिटिश राज्य की इमारत जैसे जैसे, ऊपर उठती गई, वैसे ही वैसे क्लाइव, हेस्टिंग्स इत्यादि के उद्योगों की प्रशंसा होने लगी। मरने से पाँच वर्ष पहले एक मामले में गवाही देने के लिए जिस समय हेस्टिंग्स एक बार पार्लामेंट में गया था उस समय सारी सभा ने खड़े होकर उसका सम्मान किया। उस समय उसकी आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। वह सन् १८१८ में मरा। उस समय उसकी उम्र ८६ वर्ष की थी।

---

के सामने हाजिर हुआ। लोगों का चित्त बड़ा उद्विग्न और सतप्त हो रहा था। लोगो का इतना उग्र स्वरूप पहले किसी ने न देखा था। वर्क, शेरिडन इत्यादि व्याख्यानदाताओं ने हेस्टिंग्स के अन्यायों का वर्णन करने के लिए जो व्याख्यान दिये थे वे इतने सुन्दर और रोचक हैं कि अंग्रेजी साहित्य में वे आज भी आदर्श दृष्टि से देखे जाते हैं। अवध की बेगमो पर किये गये अत्याचारों का वर्णन जिस समय शेरिडन ने ५ घंटे तक किया उस समय सुननेवालो का चित्त इतना उद्विग्न हो उठा कि सभा के अध्यक्ष को विचार करने का मौका न मिलने से और अशान्ति फैलने के भय से उस दिन की बैठक स्थगित करनी पड़ी। यह जाँच का काम सात वर्ष तक चला और लोग भी थक गये। हेस्टिंग्स की सारी कमाई इसमें स्वाहा हो गई, तथापि न्यायासन के सामने वह निर्दोष ही छूटा। इस उदाहरण से ब्रिटिश न्याय और ब्रिटिश जाति के स्वजनाभिमान के गुण प्रकट होते हैं। हेस्टिंग्स इसके बाद २१ वर्ष तक जीवित रहा। उसके अन्यायो को लोग भूल गये। भारत में ब्रिटिश राज्य की इमारत जैसे जैसे, ऊपर उठती गई, वैसे ही वैसे क्लाइव, हेस्टिंग्स इत्यादि के उद्योगों की प्रशंसा होने लगी। मरने से पाँच वर्ष पहले एक मामले में गवाही देने के लिए जिस समय हेस्टिंग्स एक बार पार्लामेंट में गया था उस समय सारी सभा ने खड़े होकर उसका सम्मान किया। उस समय उसकी आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। वह सन् १८१८ में मरा। उस समय उसकी उम्र ८६ वर्ष की थी।

---

# पंचम अध्याय

## कार्नवालिस और सर जान शोर

ई० स० १७८५-१७९८।



(१) फाक्स और पिट के बिल, (सन् १७८३ ८४)—इस समय भारत के इतिहास से पार्लामेंट के वादविवाद का बड़ा सम्बन्ध है। जब एक गवर्नर जनरल का शासन समाप्त हो जाता था तब उस समय पार्लामेंट में उसके शासन की कुछ न कुछ चर्चा अवश्य होती थी। उस समय भारत की राज्य-व्यवस्था का इंग्लैंड के राज्य पर अधिक प्रभाव पड़ सकता था। इसलिए भारत की बातों पर अंग्रेज़ी पार्लामेंट बहुत ध्यान देती थी। वारेन हेस्टिंग्स के शासन के विरुद्ध भारी आन्दोलन होने के कारण भारत के शासन के काम की जाँच करने के लिए बर्क और डंडास के प्रयत्न से सन् १७८३ के पहले दो सभाएँ बनीं। इन दोनों ने भारत की अवस्था का वर्णन किया। कम्पनी ने भी इसी समय कर्ज़ की माँग उपस्थित की। तब फ़ाक्स ने भारत की शासन व्यवस्था की त्रुटियों को दिखाकर उसमें सुधार करने का एक मसविदा

तैयार किया और पार्लमेंट में उसे पेश किया (सन् १७८३)। यह फाक्स उस समय इङ्गलैंड का प्रधान मंत्री था। इसलिए इस मसविदे का नाम "फाक्स का बिल" पड़ा। उसमें निम्न लिखित बातें थीं—

(१) चार वर्ष तक कम्पनी को नवीन आज्ञापत्र न दिया जाय। भारत का सब काम काज पार्लमेंट-द्वारा नियुक्त सात कमिश्नरों द्वारा कराया जाय, और उसपर इङ्गलैंड के राजा तक का कोई अधिकार न रहे। (२) इङ्गलैंड में "बोर्ड आव् कंट्रोल" नाम की एक समिति खोली जाय। इसी के द्वारा युद्ध और सन्धि करने का काम हो। (३) कम्पनी का कोर्ट आव् प्रोप्रायटर्स अपने नौ एसिस्टेंट कमिश्नर नामजद करे। ये कमिश्नर कम्पनी के सारे काम काज की देख भाल करें।

उपर्युक्त मसविदे का ध्येय यह था कि कम्पनी के हाथ से सब काम ले लिया जाय। लेकिन पार्लमेंट में यह स्वीकृत न हुआ। क्योंकि राजा, ईस्ट इंडिया कम्पनी और भारत के व्यापार में धन लगानेवाले रईसों के स्वार्थ को इस मसविदे से हानि पहुँचती थी, इसलिए वे सब उक्त मसविदे का विरोध करने लगे। केवल जन-साधारण ने उस मसविदे को पसद किया था। फाक्स का मसविदा कानून न बन सका। अत फाक्स को अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा। फाक्स के हटने पर पिट नाम का एक बड़ा चतुर नवयुवक इङ्गलैंड का प्रधान मत्री बना। जो बातें लोगों को नापसद थीं उन बातों को उसने फाक्स के मसविदे से निकाल दिया। लेकिन फाक्स के मतलब को उसने ज्यों का त्यों बना रहने दिया। इससे वह मसविदा पार्लमेण्ट की मजूरी से कानून बन गया। यह नया मस

विदा ' पिट का इण्डिया-बिल'' के नाम से पुकारा जाता है ( सन १७८४ )। उसमें निम्नलिखित बातें थीं—

( १ ) फ्रान्स ने अपने मसविदे में जिस बोर्ड आव कण्ट्रोल की माँग उपस्थित की है उसे पार्लमेंट नियत करे और उसके द्वारा सन्धि या युद्ध किये जायँ। ( २ ) इस सभा के प्रस्तावों का पालन भारत में कराने के लिए कम्पनी के मालिक अपने तीन सदस्य चुने। ये लोग एक गुप्त कमेटी बनावें। ( ३ ) कम्पनी कायम रहे। लेकिन उसके द्वारा काम काज न हो। ( ४ ) भारत में अधिक देश जीतने का काम बन्द किया जाय ( ५ ) अपना काम समाप्त कर कम्पनी का जो नौकर अधिक धन लेकर आवे उसकी तलाशी ली जाय और उस धन की प्राप्ति का भेद उससे पूछा जाय। इस मसविदे को भिन्न भिन्न पक्षों के लोगों ने पसंद किया। कम्पनी का बाहरी डीलडौल ज्यों का त्यों बना रहा। सभी नियम कार्य में परिणत किये गये। चौथे नियम में राज्य वृद्धि का निषेध किया गया था। केवल यही नियम काग़ज़ पर लिखा ही रह गया।

( २ ) लार्ड कार्नवालिस ( सन् १७८६-९३ )—वारेन हेस्टिंग्स ने इस्तीफा देते समय अपना सारा काम-काज कलकत्ते की कौंसिल के एक बड़े सभासद मेकफर्सन को सौंप दिया था। मेकफर्सन ने २० मास तक स्थानापन्न होकर काम किया। बाद को लार्ड कार्नवालिस इग्लैंड से गवर्नर जनरल का काम करने के के लिए आया। लार्ड कार्नवालिस पहले अमरीका के युद्धों में सम्मिलित हुआ था। वह निस्पृही, निष्पक्षपाती और सरल स्वभाव का पुरुष था। उसकी ईमानदारी और निर्लोभी स्वभाव पर सम्पूर्ण अंग्रेजी राष्ट्र को विश्वास था। इग्लैंड से विदा होते समय

उससे कह दिया गया था कि न तो देशी रजवाड़ों के कार्यों में हस्तक्षेप करना और न अधिक देश जीतने का ही प्रयत्न करना। उसने सात वर्ष तक शासन किया। उसके शासन में दो मार्के की बातें हैं। (१) तीसरा मैसूर-युद्ध और (२) शासन सुधार।

**(३) तीसरा मैसूर-युद्ध** (सन् १७९०-९२)—मंगलोर की सन्धि के बाद टीपू सुलतान ने कनारा के देश पर चढ़ाई करके अपनी शक्ति अधिक बढ़ा ली थी। उस समय उसके साथ युद्ध करने के निम्नलिखित कारण थे—

(१) कर्नाटक में बालाघाट नाम का प्रान्त उस समय टीपू के अधिकार में था। अंग्रेजों ने उसे लेकर निजाम को देने का विचार किया। यह बात टीपू को अच्छी न लगी। (२) त्रावनकोर और कोचीन राज्यों के मामले के सम्बन्ध में टीपू और अंग्रेजों में असन्तोष उत्पन्न हुआ। ये दोनों राज्य मालाबार में एक दूसरे से मिले जुले थे। पहले ये दोनों राज्य चेर या केरल के राज्य में थे। वर्तमान त्रावनकोर और कोचीन के राजे इसी केरल राज वंश के वंशधर हैं। इन राज्यों पर कुछ समय तक पुर्त्तगीज और डच लोगों ने अपना अधिकार जमा लिया था। त्रावनकोर राज्य को सन १७२९ में महाराजा मार्तण्ड वर्मा ने स्वतन्त्र किया। लेकिन कोचीन-राज्य को सन् १७५८ में हैदर ने जीतकर अपने अधीन कर लिया। हैदर त्रावनकोर को भी अपने अधीन करना चाहता था लेकिन अंग्रेजों ने त्रावनकोर के राजा को अपने पक्ष में मिलाकर टीपू के विरुद्ध बाद को होनेवाले युद्ध में उससे सहायता ली। इसलिए टीपू इस राज्य से नाराज था। इसी समय जब कि कोचीन का राजा टीपू के अधीन था, डच लोगों ने कोचीन राज्य के दो शहर

करङ्गनूर और आयकोर खरीद लिये और वहाँ अपनी क़िलेबन्दी की। इसी कारण कोचीन के राजा ने त्रावनकोर के विरुद्ध युद्ध छेडा और उसकी सहायता करने के लिये टीपू भी त्रावनकोर पर चढ दौड़ा। सन् १७८९ में २९ दिसम्बर को उसने त्रावनकोर राज्य में प्रवेश किया। स्थान स्थान को जलाता, लूटपाट मचाता और लोगों को कैद करता हुआ वह देश को चौपट करने लगा। इसलिए अंग्रेज़ों ने भी अपने मित्र त्रावनकोर राज्य की मदद के लिए टीपू के विरुद्ध हथियार उठाये। भारतीय माण्डलिक राजाओं को उनके संरक्षकों से छुड़ाकर अपने में मिलाने के अंग्रेजों के उद्योग का ख़ुलासा इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है।

तीन शक्तियों का मेल (सन् १७९०)—सन् १७८९ में टीपू ने त्रावनकोर पर हमला किया। अतः गवर्नर जनरल ने युद्ध की तैयारी करके मराठों और निज़ाम के साथ सन्धि की (जून सन् १७९०)। इस सन्धि में यह बात निश्चित की गई कि सब मिलकर टीपू से युद्ध करें, और जो कुछ लाभ इस युद्ध के अन्त में हो उसे आपस में बराबर बराबर बाँट लें। बिना किसी की मदद लिए टीपू को जीतना अंग्रेजों के विचार में शक्य न था। इसीलिए उन्होंने मराठों और निज़ाम को भी टीपू के विरुद्ध खड़ा किया। (१) लड़ाई (सन् १७९०)—जनरल मेडोज सेना लेकर मद्रास की ओर से मैसूर-राज्य में घुसा। लेकिन टीपू ने उसे परास्त कर दिया। उसकी एक टोली को तो टीपू ने बिलकुल ही तहस-नहस कर दिया। इतने में ही बम्बई और बङ्गाल की सेनाएँ भी आ गई। (२) लड़ाई (सन् १७९१)—गवर्नर जनरल स्वयं युद्ध में आया। उसने मङ्गलोर पर

अधिकार कर लिया और श्रीरङ्गपट्टन पर चढाई की। निजाम की १०,००० सेना ने उत्तर-मैसूर में अच्छा काम किया। मराठों की फौज परशुराम भाऊ पटवर्धन व हरिपत फड़के के साथ धारवाड़ पर चढाई करने लगी। टीपू के उस मजबूत किले को लेने में मराठों को बडी देर लगी। इधर कार्नवालिस के साथ आरिकेर में टीपू का बड़ा घनघोर युद्ध हुआ। इस लडाई में टीपू की हार हुई ज़रूर, लेकिन उससे कुछ अधिक लाभ कार्नवालिस को न हुआ, क्योंकि उसकी सेना में अन्न की कमी पड गई और रोग फैल गया। इधर मराठा-फौज को न आता देख कार्नवालिस मद्रास को लौटने लगा। ऐसे कठिन अवसर पर मराठों की फोज आ पहुँची। उस समय के आनन्द को प्रकट करने के लिए गवर्नर जनरल ने तोपें दगवाईं। मराठों ने अपनी सारी सामग्री अंग्रेजों को दे दी। नाना फड़नवीस ने यह युद्ध शुरू किया था। अत महाराष्ट्र-इतिहास में इस युद्ध का महत्त्व विशेष है। ( ३ ) लड़ाई ( सन् १७९२ ) तीनों मित्रों ने अपनी फौजों की व्यवस्था करके श्रीरगपट्टन पर घेरा डाल दिया। उन्होंने टीपू के राज्य को ध्वस कर दिया। इनके साथ युद्ध न कर सकने पर टीपू ने संधि की बातचीत शुरू की। अत श्रीरगपट्टन में दोनों पक्षों के बीच जो सधि हुई उसकी शर्तें निम्न लिखित हैं —

( १ ) टीपू अपने राज्य का आधा भाग तीनों राज्यों को दे। ( २ ) युद्ध में जो धन लगा है उसे पूरा करने के लिए टीपू तीन करोड़ रुपये दे। और ( ३ ) अपने दो लड़कों को जमानत के रूप में अंग्रेजों को दे। इस प्रकार संधि की शर्तों के अनुसार काम करने पर युद्ध बन्द किया गया।

(४) कार्नवालिस का शासन-सुधार—(१) पदाधिकारी लोगों का घूँस लेना, सरकारी धन को खा जाना इत्यादि बातें बंद करने के लिए कार्नवालिस ने कठोर नियम बनाये, साथ ही कर्मचारियों की वेतन-वृद्धि हुई। (२) पहले ज़िलों में कलक्टर ही तहसील वसूल का काम करते थे, साथ ही अदालत में न्याय का भी काम करते थे। इससे जो अन्याय होता था उसे बंद करने के लिए उसने कलक्टरों से न्याय का काम न लेकर नये न्यायाधीश प्रत्येक ज़िले में नियत किये। बंगाल प्रान्त में उसने अपील करने की चार अदालतें स्थापित कीं। (३) एलिजा इम्पे के फौजदारी क़ानून में कुछ सुधार कर उसे बंगाल में जारी किया। यह कानून "कार्नवालिस का कोड" कहकर पुकारा जाता है। (४) इस्तमरारी बंदोबस्त के लिए कार्नवालिस का नाम इतिहास में विशेष प्रसिद्ध है। अकबर के समय से ही बंगाल में ज़मींदारी की प्रथा प्रचलित थी। इसलिए सरकार अपनी मालगुज़ारी बड़े बड़े जमींदारों की मार्फत वसूल करती थी। इस प्रथा से जन-संख्या और खेती में तो अवश्य अच्छी उन्नति होती थी, लेकिन उसी परिमाण में सरकारी मालगुजारी न बढ़ पाती थी, क्योंकि फिर उसमें कोई हेर-फेर न होता था। ये ज़मींदार वंश परम्परा के अनुसार राजा कह कर पुकारे जाते थे। सन् १७८६ में डाइरेक्टरों ने इस मामले के सम्बन्ध में कुछ आज्ञाएँ भेजी थीं। उनके अनुसार इस मामले का स्थायी निर्णय करने के इरादे से कार्नवालिस ने निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृति के लिए इंग्लैंड भेजा—

(१) जमींदार जमीन के स्थायी स्वामी हैं। उनकी ज़मीन उनके पास सदैव रहेगी। (२) सरकार एक बार सदा के लिए

मालगुजारी स्थिर कर देगी। वह निश्चित मालगुजारी जमींदार बराबर देते रहें। इसमें सरकार आगे कभी फेर फार न करे। यह प्रस्ताव इंग्लेंड में स्वीकृत हुआ और भारत में सन् १७९३ की २२ मार्च को प्रजा म प्रकाशित किया गया। परिणाम—इस कानून से लाभ हानि क्या हुई ? इस सम्बन्ध में लोगों का बड़ा मत भेद है। यदि कहा जाय कि एक प्रकार से भारत का कल्याण हुआ तो इसमें कोई हानि नहीं। इस्तमरारी बन्दोबस्त से जमींदार लोग धनी हुए। वे लोग जमीन के सदा के लिए मालिक बन गये। सरकार का काम केवल उनकी रक्षा करना रह गया। इस सिद्धान्त को मान लेने पर लोगों को अपने श्रम का पूरा पूरा फल मिलने लगा। लेकिन किसानों पर अन्याय हुआ और सरकार की आमदनी की वृद्धि मारी गई। किसानों पर ज़मींदारों का अत्याचार रोकने के लिए सन् १८५९ में और १८८२ में बङ्गाल टेनेंसी एक्ट और बङ्गाल लड एक्ट बने।

(५) सर जान शोर (सन १७९३-९८)—कौंसिल के सभासद सर जान शोर को अपना पदाधिकार सौंप कर कार्नवालिस स्वदेश लौट गया और सर जान शोर की तैनाती उस पद पर स्वीकृत हुई। अन्य राज्यों के झगड़ों में न पड़ और लड़ाई न लड़कर शान्ति के साथ शासन का काम चलाने के लिए उससे कहा गया था। इस आज्ञा का उसने अक्षरशः पालन किया। मराठे और निजाम के साथ कार्नवालिस ने स्थायी सन्धियाँ की थीं। सन् १७९५ में मराठों ने खड़ी की लड़ाई में निजाम के साथ युद्ध कर उसकी बड़ी हानि की। उस युद्ध में निजाम ने अंग्रेजों से सहायता माँगी, लेकिन सर जान शोर ने उसे सहायता देना न स्वीकार किया। अत उसी समय से

निज़ाम का मन अंग्रेज़ों की ओर से मैला हो गया और उसने फ़्रेंचों से मित्रता करने की कोशिश की। इस दोष का भागी सर जान शोर बनाया जाता है। उसने पक्का विचार कर लिया था कि जब तक कम्पनी के राज्य को कोई हानि नहीं पहुँचती तब तक अन्य किसी के मामले में वह हाथ न डालेगा। उसके शासन काल में दो घटनाएँ मार्के की हुईं उनमें एक बङ्गाल के सैन्य में असन्तोष है। भारत में फौजें अँग्रेज़ों की थीं। उन पर स्वामित्व दो पक्षों का था। कुछ पलटनें कम्पनी की थीं और कुछ ब्रिटिश सरकार की थीं। कम्पनी की पलटनें कम करके ब्रिटिश सरकार की फौजें अंग्रेज़पदाधिकारी बढ़ाना चाहते थे। इसके अतिरिक्त फौजी सिपाहियों का वेतन भी कम था। इसलिए वेतन बढ़वाने के लिए इन फ़ौजी नौकरों ने अपनी माँग पेश की। वह पूरी न हुई। इससे उन्होंने बाग़ी हो जाने की धमकी दी। गवर्नर जनरल ने अबरक्रम्बी की मदद से यह बग़ावत रोकी। दूसरी है अवध के नवाब वजीर का मामला—अवध के नवाब वज़ीर आसफुद्दोला ने अंग्रेज़ों की सहायक सेना अपने यहाँ रक्खी थी। इस सेना के ख़र्च के लिए उसे ७५ लाख रुपये सालाना देने पड़ते थे। इसलिए इसको हटाने या इसे बहुत कम कर देने के लिए नवाब वज़ीर आग्रह कर रहा था। कार्नवालिस ने राज्य का सुप्रबन्ध करने के लिए इस रक़म में २५ लाख रुपये घटा दिये। लेकिन नवाब दुर्व्यसनी था। उसकी मृत्यु सन् १७९७ में हुई। बाद को उसका दासी-पुत्र वजीरअली अंग्रेज़ों-द्वारा गद्दी पर बैठाया गया। वह दुष्ट निकला। इसलिए उसे पदच्युत करके मृत नवाब के भाई सआदत अली के साथ नई संधि करके अंग्रेज़ों ने उसे गद्दी पर बिठाया। इस संधि के अनुसार सआदत अली ने सहायक सेना

का फिर ७६ लाख रुपया खर्च देना स्वीकार किया और उस सेना के रहने के लिए इलाहाबाद का क़िला भी दिया ( सन् १७९८ )। इस नई व्यवस्था से वजीरअली को बड़ा दु ख हुआ। बाद को उसने बग़ावत करके बडा गड़बड किया।

( ६ ) पार्लामेंट मे वाद-विवाद ( १७९३ )—वारेन हेस्टिंग्स के समय में कौंसिल और गवर्नर जनरल के बीच अनेक मत भेद हुए थे ओर उनके कारण झगडे भी उठ खड़े हुए। इन झगडों को फिर कभी न होने देने के लिए कौंसिल की राय के विरुद्ध अपने निजी उत्तरदायित्व पर काम करने का अधिकार गवर्नर जनरल को देने के लिए पार्लामेंट में एक क़ानून बना (सन् १७८५)। जब गवर्नर जनरल शासन के कारबार का जिम्मेदार है तब उसे वैसा करने का पूर्ण अधिकार मिलना चाहिए। इस नीति के माने जाने पर ही कार्नवालिस ने गवर्नर जनरल का पद स्वीकार किया था। इसी प्रकार सन् १७९३ में कम्पनी को जिस समय आज्ञा-पत्र दिया गया उस समय बड़े कड़ाके की बहस पार्लामेंट में हुई थी और कम्पनी का व्यापार पर जो एकाधिकार था वह इस बार छिन गया। प्रत्येक व्यक्ति को ८ हज़ार केंडी तक व्यापार करने का अधिकार मिला। भारत में ईसाई मत और शिक्षा का प्रचार करने की आज्ञा अनेक लोगों ने माँगी थी, लेकिन पार्लामेंट ने आज्ञा न दी। क्योंकि ऐसे कार्यों से भारत में लोगों के चित्त के दु खित होने की आशका थी। सन् १७९८ में सर जान शोर का कार्यकाल समाप्त हुआ और वह स्वदेश वापस गया। वहाँ उसे लार्ड टेन्मथ की उपाधि मिली।

# छठा अध्याय

## लार्ड वेलेज़ली

ई० स० १७९८-१८०५

१—वेलेज़ली के समय म भारत की अवस्था   २—वेलेज़ली की नीति
३—चौथा मैसूर-युद्ध   ४—सहायक सेना का प्रचार
५—राज्यों की जब्ती   ६—विदेशी राजनीति
७—विदाई और योग्यता

(१) वेलेजली के समय की परिस्थिति (सन् १७८९)—फ्रांस-देश मे बड़ी विकराल राज्य-क्रान्ति हो जाने से सभी बातो में बड़ा हेर-फेर हो गया था। नेपोलियन बोनापार्ट फ्राँस का बादशाह बन गया था और उसने सारे यूरोप के राज्यों को जीतना शुरू किया था। वह अँग्रेज़ों से भी द्वेष रखता था। वह यह भी समझता था कि भारत में अँग्रेजों की प्रधानता नष्ट किये बिना उनका महत्त्व नहीं नष्ट हो सकता। पिछले ५० वर्षों में अँग्रेज़ों ने फ्रेंच लोगो को भारत में हरा दिया था। यह बात नेपोलियन के मन में खटक रही थी। अत ऐसे समय में जो भारतीय राज्य उस समय तक भी थोड़े बहुत टिके हुए थे—उनके साथ नेपोलियन ने सन्धि की। टीपू सुल्तान तथा अँग्रेज़ों में परस्पर बड़ा द्वेष था। टीपू खुल्लमखुल्ला नेपोलियन की सहा

पना लेकर अपनी हार का बदला अँग्रेजों से लेना चाहता था। निजाम को भी जब अँग्रेजों ने छोड दिया तब उसने १४ हजार फ्रेंच सिपाही अपनी फौज में रक्खे थे। मराठों का पेशवा जिस समय कमजोर और चचल हो रहा था उस समय महादजी ने भी अपनी फौज को यूरोपीय ढग से युद्ध की शिक्षा देने के लिए फ्रेंच अफसर नियुक्त किये थे। दिल्ली का सारा राज काज उस समय सेंधिया के हाथ में था। पेरोन नाम का फ्रेंच सिपाही सेंधिया की फौजो का प्रधान सेनापति था। उसी प्रकार यह अफवाह भी फैल रही थी कि टीपू का मेल अफगानिस्तान के अमीर जमानशाह से है और टीपू उसे भारत पर आक्रमण करने के लिए बुला रहा है। इधर कलकत्ते का खजाना खाली था। इससे फौजे असन्तुष्ट थीं। ऐसे कठिन समय में जिस पुरुष ने भारत मे अँग्रेजों की गिरती हुई दशा को सँभाल कर उसे फिर से उठाया और सारे शत्रुओ को परास्त कर अपने राष्ट्र का प्रभाव भारत में स्थापित किया उसकी नीति, धैर्य, चातुर्य और दृढसकल्प की प्रशसा सभी अँग्रेज करते हैं। भारत में रजवाडों के परस्पर व्यवहार अनिश्चित रहने से अँग्रेज़ राजपुरुषों को समय के अनुसार उनके साथ व्यवहार करना पडता था। इस नीति को नष्ट कर सभी रजवाडों को अपने वश में करके भारत का सार्वभौम एक प्रबल आधार पर स्थापित करने का निश्चय कर वेल्जली ने उसको अमल में लाना शुरू किया। इसीलिए 'भारत में अंग्रेजों के सार्वभौम राज्य का स्थापक" के नाम से वेलेज़ली इतिहास म प्रसिद्ध है। इसके शासन में दो बात स्पष्ट दीख पडती हैं, पहली तो भारतीय रजवाडों के शासन से सम्बन्ध रखने वाली बातें, दूसरी भारत से बाहर के राज्यों के साथ नीति स्थिर करनेवाली बातें। इन दोनों का खुलासा यहाँ पर किया जायगा।

(२) वेलेज़ली की शासन-नीति—(१) जो राजा स्नेह के साथ अपने वश में लाये जाने योग्य थे उनके साथ मित्रता की सधियाँ करके वेलेजली ने उनसे अपना हेलमेल बढा लिया। जिन राज्यों के बाद को प्रबल होने की आशंका हुई उन्हें वश में लाने का प्रबन्ध किया गया और जो बिलकुल ही गये बीते थे उनके राज्य को उसने अपने शासन में कर लिया। निज़ाम, गायकवाड़, अवध के नवाब वज़ीर की गिनती पहली श्रेणी में की गई। टीपू, सेंधिया, होल्कर इत्यादि दूसरी श्रेणी में समझे गये। तंजोर के राजा इत्यादि तृतीय श्रेणी में रक्खे गये। परन्तु वेलेजली ने इन सब के साथ निश्चित कार्रवाई एकदम नहीं शुरू की। एक एक का प्रबन्ध उसने अलग अलग किया। (२) परिस्थिति को समझ कर उसने अपने निश्चय के अनुसार काम करने में ज़रा भी ढील ढाल न की। (३) अपने मातहत अफ़सरों की योग्यता समझ कर और उनमें पूर्ण विश्वास रख समयानुसार कार्य करने का अधिकार उसने उन्हें दिया था। इस तरह उससे प्रोत्साहन पा कर अनेक अंग्रेजों का उदय हुआ। कर्नल क्लोज, माल्कम, हेनरी, आर्थर वेलेजली, मनरो, लेक इत्यादि बड़े राजनीति दक्ष और सयमी निकले। (४) वेलेजली की सहायक सेना की पद्धति ने ही भारत में अंग्रेज़ों का राज्य स्थापित किया। भारतीय लोग यूरोपीय फौजी शिक्षा पाने से बड़े उपयोगी हो सकते हैं, यह बात डूप्ले ने सिद्ध करके दिखा दी थी। मुग़ल साम्राज्य के नष्ट हो जाने पर भारत में अनेक छोटे छोटे नये राज्य बन गये थे। इनको अपनी रक्षा के लिए फौज की बड़ी आवश्य कता थी। इनका मेलजोल भी अंग्रेजों से हो गया था। अत ये लोग अंग्रेजों से फौजें माँगा करते थे। इसीसे क्लाइव के समय से

ही कम्पनी ने कुछ देशी सिपाहियों की पल्टनों को यूरोपीय फौजी शिक्षा देकर तैयार कर लिया था। ये फौजें भाड़े पर दी जाती थीं। बाद को देशी राजाओं से धन लेकर अपनी कवायद सीखी हुई फौजें उनके पास रखने का क्रम वारेन हेस्टिंग्स ने शुरू किया। लेकिन इस मामले में जिन जिन शर्तों का मानना दोनों पक्षों के लिए आवश्यक था उन शर्तों को स्थायी रूप से निश्चित कर उनका प्रचार सभी देशी रजवाड़ों में करने का काम वेलेजली ने किया और लार्ड हेस्टिंग्स ने उसे समाप्त किया। वे शर्तें ये हैं—

१—इन फौजों को रखनेवाले अंग्रेज़ों को सार्वभौम समझें और अपने को उनका माण्डलिक राजा मानें।

२—वे लोग किसी से मनमाने ढङ्ग से न तो युद्ध करें और न सन्धि करें। उनके आपसी झगड़े का जो फैसला अंग्रेज करें वही वे मानें।

३—अंग्रेजों के यूरोपीय शत्रुओं को कोई देशी राजा अपने राज्य में नौकर न रक्खे और न उनके साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध ही रक्खे।

४—सहायक सेना का वेतन समय पर बाँटने के लिए, उसके ख़र्च को पूरा करने के लिए, उतनी ही आमदनी का भूभाग देशी राजे अपने राज्य में से अंग्रेजों को दें।

५—अंग्रेजों को जरूरत पड़ने पर जहाँ और जिस समय वे चाहें सहायक सेना उनको दी जाय।

६—इस प्रकार इस सहायक सेना की पद्धति को वेलेजली ने जारी किया। अंग्रेजी में इस पद्धति को **सब्सीडियरी सिस्टम** ( subsidiary system ) कहते हैं। इसकी सहा

यता से अंग्रेजों का खर्च भी अधिक न हुआ और एक बड़ी भारी फ़ौज इन्होंने तैयार कर ली। इस फौज के सब अफसर अंग्रेज थे और उनको वेतन भी सीधा अंग्रेजी सरकार से मिलता था। अंग्रेजी राज्य की स्थापना भारत में इसी पद्धति के आधार पर हुई है, अत यह पद्धति बड़े मार्के की है।

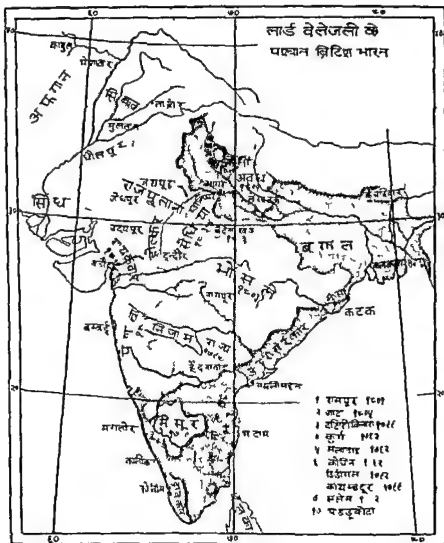
(३) चौथा मैसूर-युद्ध (सन् १७९९)—वेलजली के शासन में दो बड़े युद्ध हुए। पहला टीपू के साथ और दूसरा मराठों के साथ। मराठों के साथ जो युद्ध वेलेजली ने किया उसका वर्णन तृतीय भाग के बारहवें अध्याय में दिया जा चुका है। यहाँ केवल टीपू के साथ किये गये युद्ध का हाल दिया जाता है।

(अ) युद्ध का कारण और तैयारी—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारत में फ़्रेंचों का शासन उखड़ चला था। उस समय टीपू को नष्ट कर फ़्रेंचों का मूलोच्छेद करने की तैयारी गवर्नर जनरल ने बड़ी अच्छी तरह की। उसने अन्य रजवाड़ों को भी अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न किया। इसमें पहले निजाम के पास जो फ़्रेंच फौज थी उसे अलग करवाकर गवर्नर जनरल ने अपनी सहायक सेना निजाम के यहाँ नियुक्त कर दी। इस काम में निजाम के दीवान मशीरुल्मुल्क से अंग्रेजों को अच्छी मदद मिली। इस तरह टीपू के पक्ष से निज़ाम के निकल आने पर टीपू का पक्ष हलका हो गया। सधिया और भोंसले के पास भी फ़्रेंच फौज थी। वे लोग अंग्रेज़ों के पक्ष में न मिले। केवल पेशवा ने सहायता देने का वचन अंग्रेजों को दिया। अफगानिस्तान के जमानशाह से टीपू ने सन्धि की थी। इसके अनुसार वह भी युद्ध शुरू होते ही पंजाब पर धावा करने वाला था। फ़्रेंच-सेना टीपू की मदद करने

के लिए मारिशस के द्वीप से मङ्गलोर आ पहुँची। उस समय गवर्नर जनरल खुद मद्रास जा पहुँचा। युद्ध की तैयारी होती देख टीपू ने प्रकट में अंग्रेजों के साथ मित्रता दिखाकर और भी अधिक सेना आने की आशा में वह उस समय चुप रहा। वलेजली ने यह मौका ठीक समझ कर टीपू से सहायक सेना की पद्धति स्वीकार करने के लिए कहला भेजा। उसे टीपू ने न स्वीकार किया। अतः टीपू का जवाब मिलते ही गवर्नर जनरल ने उसके विरुद्ध युद्ध घोषणा की और जनरल हेरिस को २० हजार सेना का सेनापति बना उसे २०० तोपें देकर मैसूर पर चढ़ाई करने को भेज दिया।

(आ) संग्राम टीपू की मृत्यु—इस युद्ध में बड़ी लड़ाइयाँ नहीं हुईं। टीपू ने अब की बार यह पक्का इरादा कर लिया था कि या तो मैं जीतूँगा या लड़ाई में मरूँगा। युद्ध भी अधिक दिनों तक न चला। पहले स्टुअर्ट के साथ जो फौज बम्बई से आ रही थी उस पर टीपू ने हमला किया। लेकिन उसका हमला असफल हो गया। इसके बाद उसने मद्रास की सेना पर हमला किया (सन् १७९९)। इस लड़ाई में गवर्नर जनरल के भाई आर्थर वेलेजली ने बड़ी वीरता दिखाई। यहाँ भी टीपू को वापस लौटना पड़ा। इतने समय में हेरिस ने बड़ी युक्ति से अपनी फौज एकदम श्रीरङ्गपट्टन के सामने ला खड़ी की। इससे टीपू बिल्कुल डर गया। ३ अप्रैल को हेरिस ने किले को घेर लिया। ३ मई को अंग्रेजों के पास की सामग्री चुक गई। इसलिए एकदम हमला कर देने के अलावा उनके पास कोई दूसरा उपाय न रह गया। ऐसे मौके पर जनरल बेयर्ड ने लड़ाई का बिगुल

तीन मास में वेलेजली ने जीतकर अंग्रेज़ों का सार्वभौम भारत पर जमा दिया। यह उसकी बड़ी हिम्मत का काम समझा जाता है। इस युद्ध का वर्णन महाराष्ट्र-काल के इतिहास में दिया जा चुका है। लेकिन उस समय वेलेजली के कार्य को इंग्लेंडवालों ने न पसंद किया। पहले टीपू के राज्य को जीतने पर उसे धन्यवाद अवश्य मिला था, लेकिन बाद को अनेक ज़बर्दस्ती के काम करने और अन्याय करने के बारे में डाइरेक्टरों ने उसकी निन्दा की। यह उसके लिए असह्य थी। इसलिए उसने सन् १८०२ में अपने पद से इस्तीफा दे दिया। लेकिन वह मंजूर नहीं हुआ। सन् १८०३ में एक वर्ष और अधिक अपने पद पर स्थिर रहने की आज्ञा उसे मिली। बाद को वह मराठों के झगड़ों में पड़ गया। इससे इंग्लेंड में बड़ी खलबली मच गई। इंग्लेंड के लोग उस समय नेपोलियन के युद्धों से हैरान हो रहे थे। वेलेजली के शासन-कार्य से सङ्कटों के बढ़ने की आशंका की गई। अत अंग्रेज़-सरकार ने उसे सन १८०५ में विलायत बुला लिया और पहले का वृद्ध, और शान्तिप्रिय अनुभवी राजनीतिज्ञ **कार्नवालिस** गवर्नर जनरल बनाकर भारत को फिर भेजा गया। वेलेज़ली के लौट जाने पर कोर्ट आव् प्रोप्रायटर्स की सभा ने १९५ के विरुद्ध ९२ सदस्यों की सम्मति से उसके अन्यायों की निन्दा का प्रस्ताव मंजूर किया। बाद को ३० वर्ष बीतने पर ब्रिटिश साम्राज्य की भारी उन्नति होती देख वेलेजली के कार्यों के गूढ तत्त्व खुले और उन्होंने अपने पहले प्रस्ताव को रद्द करके "अँग्रेज़ी राष्ट्र का प्रभाव रखकर उसने लाभ पहुँचाया" इस प्रकार का दूसरा प्रस्ताव स्वीकृत किया। उसे दो लाख रुपये पुरस्कार दिये गये और "इण्डिया हाउस" नामक भारत के


लार्ड वेलेजली के
पश्चात ब्रिटिश भारत
अफगान
काबुल
पेशावर
लाहौर
मुलतान
सिंध
जयपुर
जोधपुर
राजपूताना
उदयपुर
इंदौर
अवध
बंगाल
नागपुर
कटक
बम्बई
निजाम राज्य
मैसूर
मंगलोर
रामपुर
कुर्ग
कोचिन
कोयम्बटूर

प्रधान के विलायती कार्यालय में उसकी पाषाण मूर्त्ति स्थापित की गई।

वेलेज़ली ने अन्य स्मरणीय कार्य किये हैं। उसने व्यापार पर से बंधन हटाने का उद्योग किया। भारत में जो यूरोपीय काम-काज करने आते थे उनके लड़कों के लिए उसने एक विद्यापीठ भी कलकत्ते में खोला था। लेकिन उसमें अधिक ख़र्च समझ कर डाइरेक्टरों ने उसे बन्द कर दिया। और विलायत में ही हेलीबरी नामक स्थान में एक पाठशाला खोलकर भारत में काम करनेवाले अंग्रेजों के लड़कों को पढ़ाने की व्यवस्था की। वेलेजली ने न्याय की व्यवस्था का भी थोड़ा बहुत सुधार किया था।

---

# सातवाँ अध्याय

## बार्लो, मिंटो और हेस्टिंग्स

### सन् १८०५-१८२२

१—सर जार्ज बार्लो　　२—लार्ड मिण्टो, रणजीतसिंह
३—पार्लामेंट में बहस　　४—लार्ड हेस्टिंग्स
५—नैपाल-युद्ध

(१) सर जार्ज बार्लो, (सन् १८०५-६)—कार्नवालिस सन् १८०५ के जुलाई मास में भारत आ पहुँचा और देश में शान्ति क़ायम करने के इरादे से उत्तर की यात्रा के लिए निकला। लेकिन गाज़ीपुर पहुँच कर ५ अक्टोबर को उसकी मृत्यु हो गई। तब सर जार्ज बार्लो उसकी जगह पर गवर्नर जनरल बना। इसने शान्ति के साथ शासन करना स्थिर किया और भिन्न भिन्न स्थानों पर जो युद्ध हो रहे थे उन्हें एक दम बन्द कर सन्धि स्थापित की। इन बातों का हाल महाराष्ट्र इतिहास में दिया जा चुका है। इसके समय में वेलोर का दङ्गा हुआ था (१० जुलाई १८०६)। टीपू का परिवार उस समय वेलोर में ही था। उसकी देख रेख के लिए १५०० हिन्दुस्तानी और कुछ अंग्रेज़ सिपाही रहते थे। मद्रास के सैनिकों को नई पोशाक पहनने और टोपी देने की आज्ञा दी गई थी। उनसे यह भी कहा गया था कि



रणजीत सिंह

माथे पर तिलक-चन्दन मत लगाओ और डाढ़ी चढ़ाओ। इन आज्ञाओं से सिपाही बहुत दुःखी हुए। एक दिन बड़े सवेरे जब कि सब अफसर लोग सो रहे थे, वेलोर के सिपाही गोलियाँ चला कर दङ्गा करने लगे और उन्होंने मैसूर के झंडे को क़िले पर खड़ा कर दिया। जब इस दङ्गे की ख़बर अर्काट पहुँची तब वहाँ से सेना लेकर कर्नल जिलेस्पी वेलोर आया और सिपाहियों का दङ्गा शान्त कर दिया। उसने टीपू के परिवार को कलकत्ते भेज दिया। मद्रास के गवर्नर लार्ड विलियम बेंटिक की इस बारे में बड़ी निन्दा हुई और उसको पदच्युत कर उसकी जगह सर जार्ज बार्लो मद्रास का गवर्नर नियुक्त हुआ। इंग्लेंड में बोर्ड आव कण्ट्रोल का अध्यक्ष लार्ड मिण्टो भारत का गवर्नर जनरल बन कर कलकत्ते आया (जुलाई सन् १८०७)।

(२) लार्ड मिण्टो (सन् १८०७ १३)—शान्ति से शासन करने की आज्ञा उसे विलायत में मिली थी। इस आज्ञा का पालन उसने किया। भारत में अँग्रेज़ों की सार्वभौम सत्ता स्थापित हो चुकी थी। अब शासकों का ध्यान राज्य-सीमा पर पश्चिमोत्तर के राज्यों की ओर गया। उसका जो विशिष्ट उपक्रम लार्ड मिण्टो ने किया उसका वर्णन नीचे दिया जाता है।

रणजीतसिंह के साथ सन्धि—पञ्जाब में सिक्ख लोग स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहे थे। उनका पूर्व परिचय मुगल-कालीन इतिहास में दिया जा चुका है। अफ़ग़ानिस्तान के अहमद-शाह अब्दाली ने पंजाब प्रान्त पर अपना अधिकार कर लिया था। लेकिन उसके मरने पर अफगान लोगों में परस्पर झगड़े शुरू हुए। इन झगड़ों में सिक्खों ने अपना प्रान्त अफगानों के पंजे से छुटा लिया। पंजाब में पहले सिक्खों के अनेक छोटे छोटे राज्य थे। उनमें आपस

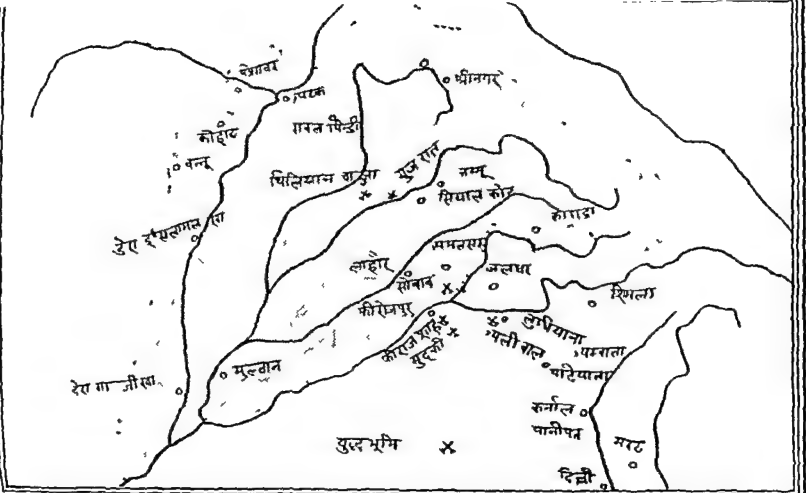
में सदैव झगड़े हुआ करते थे। इसी काल में चेतसिंह नाम का एक राजा हुआ। उसने इन छोटे छोटे राज्यों को एक करने का प्रयत्न किया। उसके लड़के महासिंह ने भी बड़ी सफलता के साथ यह काम किया। उसने सभी सिक्ख राजाओं को इकट्ठा करके एक मंडल रचा। अन्त में महासिंह के लड़के रणजीतसिंह ने बड़ी वीरता और सावधानी से सब सिक्खों का संगठन कर स्वयं उनका प्रधान नेता बन गया। लेकिन जो सिक्ख राज्य सतलज के इस पार थे उनके राजाओं ने रणजीतसिंह को अपना सरदार नहीं स्वीकार किया। पूर्व में यमुना-नदी के किनारे तक रणजीत सिंह अपना राज्य बढ़ाना चाहता था। इसी समय सतलज और यमुना के बीच में नाभा और पटियाला में परस्पर झगड़ा हो गया। इस झगड़े का निपटारा करने के लिए रणजीतसिं सतलज पार करके आया और सरहिन्द-प्रान्त से उसने कर वसूल किया। तब उस प्रान्त के राज्यों ने अंग्रेज़ों से मदद माँगी। मुख्य प्रश्न यह था कि रणजीतसिंह की राज्य-सीमा सतलज नदी बने या यमुना नदी तक उसका राज्य माना जाय। ऐसे मामले में गवर्नर जनरल ने अपनी उदासीनता को एक किनारे रख दिया और मेटकाफ नामक चतुर अंग्रेज़ को रणजीतसिंह के पास बातचीत करने के लिए भेजा। साथ में मौके पर काम आने के लिए कुछ फ़ौज भी उसे दी गई। किसी ऐक्य को भङ्ग करना तथा उसमें से किसी एक को अपनी ओर मिलाये रहना अथवा कम से कम निश्चित राज्य-सीमा पर किसी बलवान् राजा को बीच में डाल रखने की नीति सदैव अंग्रेज़ों को सिद्ध रही है। रणजीतसिंह के समीप पहुँचने में मेटकाफ को अनेक अड़चनों का सामना करना पड़ा। इन सब कठिनाइयों को पार कर उसने

१ अप्रैल सन् १८०९ को रणजीतसिंह से अमृतसर में भेंट की
ार उससे संधि कर ली। इस संधि के अनुसार यह निश्चय
आ कि सतलज-नदी को रणजीतसिंह न पार करे। अंग्रेज़ों ने
ापनी एक फौजी छवानी लुधियाना में बनाई। रणजीतसिंह
इस संधि का पूर्णतया पालन किया।

अंग्रेज शासकों की दृष्टि सरहद की ओर लगी हुई थी।
सके अन्य प्रमाण भी हैं। माउंट स्टुअर्ट एल्फिन्स्टन को अफगा
नेस्तान में तथा सर जान माल्काम को ईरान में राजदूत बना
कर लार्ड मिंटो ने भेजा। लेकिन इनसे कुछ अधिक लाभ न
हुआ।

भारत में इस समय शान्ति थी। अत लार्ड मिंटो ने पुर्तगीज,
डच इत्यादि लोगों के साथ कई समुद्री लड़ाइयाँ लड़ीं। ट्रावन्कोर-
राज्य में कुछ झगडा हो जाने से वहाँ का शासन कुछ दिनों के
लिए अंग्रेज़ों ने अपने हाथ में ले लिया। मद्रास की यूरो
पीय फौजें असन्तुष्ट होकर बागी हो गई थीं। इनको वहाँ
के गवर्नर बार्लो ने देशी सिपाहियों की सहायता से शान्त किया।

(३) पार्लमेंट में बहस—सन् १८१३ में कम्पनी के
पिछले आज्ञा पत्र की अवधि समाप्त हो गई। तब नया आज्ञा पत्र
जारी करते समय पार्लमेंट में बडी बहस हुई। उस समय अर्थ
शास्त्र पर नये ग्रन्थ लिखे जा रहे थे तथा उनकी चर्चा भी सर्वत्र
हो रही थी। इससे वहाँ का लोकमत व्यापार के बन्धनों को
एक दम तोड देने के पक्ष में था। अत वहाँ के लोगों का आग्रह
था कि व्यापार का जो सब अधिकार कम्पनी को दिया गया है,
बेलकुल तोड दिया जाय। इस व्यापार में सब को एक समान
... चाहिए। उस समय इंग्लैंड का प्रधान मंत्री लार्ड




रणजीतसिंह का राज्य और सिक्खों की लड़ाइयां समझाने के वास्ते

२५ अप्रैल सन् १८०९ को रणजीतसिंह से अमृतसर में भेंट की और उससे संधि कर ली। इस संधि के अनुसार यह निश्चय हुआ कि सतलज-नदी को रणजीतसिंह न पार करे। अंग्रेजो ने अपनी एक फौजी छवानी लुधियाना में बनाई। रणजीतसिंह ने इस संधि का पूर्णतया पालन किया।

अंग्रेज़ शासकों की दृष्टि सरहद की ओर लगी हुई थी। इसके अन्य प्रमाण भी हैं। माउंट स्टुअर्ट एल्फिन्स्टन को अफगानिस्तान में तथा सर जान माल्काम को ईरान में राजदूत बनाकर लार्ड मिंटो ने भेजा। लेकिन इनसे कुछ अधिक लाभ न हुआ।

भारत में इस समय शान्ति थी। अत लार्ड मिंटो ने पुर्तगीज, डच इत्यादि लोगों के साथ कई समुद्री लड़ाइयाँ लड़ीं। त्रावन्कोर-राज्य में कुछ झगडा हो जाने से वहाँ का शासन कुछ दिनों के लिए अंग्रेज़ों ने अपने हाथ में ले लिया। मद्रास की यूरोपीय फोजें असन्तुष्ट होकर बागी हो गई थीं। इनको वहाँ के गवर्नर बार्लो ने देशी सिपाहियों की सहायता से शान्त किया।

(३) पार्लामेंट मे बहस—सन् १८१३ में कम्पनी के पिछले आज्ञा पत्र की अवधि समाप्त हो गई। तब नया आज्ञा पत्र जारी करते समय पार्लामेंट में बड़ी बहस हुई। उस समय अर्थशास्त्र पर नये ग्रन्थ लिखे जा रहे थे तथा उनकी चर्चा भी सर्वत्र हो रही थी। इससे वहाँ का लोकमत व्यापार के बन्धनों को एक दम तोड देने के पक्ष में था। अत वहाँ के लोगों का आग्रह था कि व्यापार का जो सब अधिकार कम्पनी को दिया गया है, बिलकुल तोड़ दिया जाय। इस व्यापार में सब को एक समान अधिकार मिलना चाहिए। उस समय इग्लैंड का प्रधान मन्त्री लार्ड

कॅसलगीग कम्पनी के विरुद्ध था। कम्पनी का यह कहना था कि भारत में जीता हुआ देश कम्पनी का है। वहाँ वह जैसी व्यापार की परिपाटी चाहे वसी वह चालू कर सकती है और कम्पनी की सहायता के विना भारत का काम काज ठीक ठीक चलना भी कठिन है। लेकिन कम्पनी के इस कथन का सप्रमाण खंडन वहाँ की प्रधान मडली ने अक्षरशः कर दिया। इस तरह चार मास तक वहस हो चुकने के वाद नीचे लिखी वातों पर अगले वीस वर्षों के लिए कम्पनी को नवीन आज्ञा पत्र दिया गया—

( १ ) कम्पनी द्वारा जीते हुए राज्य का स्वामित्व राजा और कम्पनी का एक समान समझा जाय। ( २ ) कम्पनी के आज्ञा पत्र की अवधि अगले वीस वर्ष तक वढ़ा कर नौकर-चाकरों की नियुक्ति का काम उसके हाथ में दिया जाय। ( ३ ) भारत में चाहे जो व्यक्ति व्यापार कर सकता है, परन्तु चीन से व्यपार करने का अधिकार एक मात्र कम्पनी को है।

सन् १८१३ में भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करने क प्रस्ताव मजूर हुआ और कलकत्ते को धर्म पीठ में एक विशप की नियुक्ति हुई। सन् १८१३ में लार्ड मिण्टो का कार्य-काल समा हुआ और उसके स्थान में लार्ड हेस्टिग्स का तैनाती हुई। ला मिण्टो का शासन हर तरह से प्रशसनीय समझा जाता है।

( ४ ) लार्ड हेस्टिग्स, ( सन् १८१४-२२ )—यह गवर्न जनरल वड़ा अनुभवी और वृद्ध समझा जाता था। जिस सम यह इंग्लैंड में था, राज्य-वृद्धि के लोभ से भारतीय राजाओं अंग्रेजों के शस्त्र उठाने के काम का वह वहुत विरोध करता थ वेल्ज़ली के कृत्यों को अन्याय-पूर्ण वता कर इसने उसकी नि की थी और जिस समय यह विलायत से भारत के लिए वि

हुआ, उस समय इसकी इच्छा शान्ति के साथ भारत में शासन करने की थी। किन्तु यहाँ आने पर इसका निश्चय बिलकुल बदल गया। यहाँ तक कि इसकी भी गिनती उन्हीं लोगों में होने लगी जिनका विरोध वह पहले किया करता था। प्रजा के हित के लिए इस गवर्नर जनरल ने दो काम किये—(१) भारतीय प्रजा को सुशिक्षित बनाने के लिए इसने एतद्देशीय शिक्षा की पाठशालाएँ खोलीं। और (२) छापेखाने तथा समाचार-पत्रों को प्रोत्साहन देकर चाहे जिस विषय को प्रकाशित करने की आज्ञा दी।

(५) नैपाल-युद्ध (सन् १८१४ १६)—लार्ड हेस्टिंग्स के शासनकाल में युद्ध अधिक हुए हैं। पिंडारियों और मराठों के साथ युद्ध करके उसने लार्ड वेलेज़ली का अधूरा काम भी पूरा कर दिया। इन युद्धों का हाल महाराष्ट्र-इतिहास में दिया जा चुका है। इन युद्धों के अलावा उसने एक दूसरा युद्ध नैपाल के साथ भी किया। (अ) नैपाल का पूर्व वृत्तान्त—भारत के उत्तर हिमालय के दक्षिणी ढाल पर नैपाल नाम का एक उपजाऊ प्रान्त है। आठवीं सदी में भारत में वैदिक धर्म का फिर से प्रचार हुआ। इसलिए बौद्धधर्म को उत्तर और दक्षिण की ओर हटना पड़ा। उस समय गंगा यमुना के किनारे के मठों को छोड़ बौद्ध हिमालय पर्वत के प्राकृतिक शोभा से भरे स्थानों में जा बसे। तिब्बत में लासा उनका मुख्य धर्म स्थान बना। नैपाल के दक्षिण में हिमालय के नीचे एक बड़ा लम्बा-चौड़ा वन है। उसके आगे एक मैदान है, जिसमें दलदली भूमि है। इस मैदान को तराई कहते हैं। नैपाल में मुसलमानों की बस्ती नहीं है। वहाँ पहले छोटे छोटे राज्य थे। उनका नाश होकर वहाँ

तीन प्रबल राज्य बने। उनमें काठमांडू का राजा ही प्रधान था। उसी को ईस्ट इंडिया कम्पनी नैपाल का नेवार राजा कह कर पुकारती थी। ये नेवार लोग खेती और व्यापार से अपना जीवन बिताते थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी का व्यापार नैपाल के साथ अच्छा होता था। कम्पनी के व्यापारी तिब्बत से बंगाल में सोना लाते थे। काश्मीर में गारखे नाम के लड़ाके लोग रहते थे। उन्होंने सन् १७६७ में नैपाल पर द्रव्य और राज्य के लोभ से चढाई की। उन्होंने काठमाडू के राजा को हरा दिया। इस राजा ने अंग्रेज़ों से मदद माँगी। अंग्रेज़ों ने कुछ फ़ौज भी भेजी। लेकिन बरसात के दिन थे, इसलिए जो फ़ौज वहाँ गई वह तराई में भटक गई तथा सिपाही भी बीमार पड़ गये। उनमें बहुतों को रोग ने मार डाला। इसलिए इस फ़ौज को वापस लौटना पड़ा। पृथुनारायण गोरखों का सरदार था। इसे "महाराज" कह कर लोग पुकारते थे और इसके सरदार भारदार कहलाते थे। इन भारदारों की सहायता से पृथु-नारायण ने नेवारों को जीत लिया और नेवार-राजा और इसके सरदारों को भी मार डाला। उनकी सम्पत्ति जप्त करके अपने भारदारों में पृथुनारायण ने बाँट दी। इसके बाद उसने सन् १७६७ से स्वयं काठमांडू में राज्य करना शुरू किया। राज्य के शासन के काम में राजा को मदद करने के लिए इन भारदारों की एक सभा रहती थी। नैपाल की स्थायी फौज बारह हज़ार थी। वह प्रति वर्ष बदल जाती थी। प्रति तीन वर्ष बाद वही लोग फिर सैनिक बनाये जाते थे। इस तरह १२ हजार को वेतन मिलता, पर ३६ हजार सैनिक राज्य की रक्षा

के लिए सदा तैयार रहते थे। जिस प्रकार भारत में दशहरे का उत्सव बड़े ठाठ से होता है, उसी प्रकार वहाँ पजानी का मेला होता है। इसी अवसर पर नई फौज की तैनाती और सरकार के सब पुराने नौकर बदल कर नये तैनात किये जाते। सारांश यह कि प्रत्यक्ष महाराज को छोड़ कर प्रति वर्ष सब कुछ बदल दिया जाता था। इस शासन पद्धति को ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि सरदारों की सम्मति से शासन चलाने की यह प्रथा पूर्व देशों में से इसी एक देश में मिलती है।

सन् १७७१ में पृथुनारायण की मृत्यु हुई। तब उसका लड़का रणबहादुर केवल एक वर्ष का शिशु था। उसको लोगों ने गद्दी पर बैठा कर उसके चाचा को उसका संरक्षक तैनात किया। इस चाचा के मन में राज्य हड़पने की इच्छा पैदा हुई। इसलिए इसने रणबहादुर को अनेक बुरी बुरी बातें सिखाई। इस समय गोरखों की फौजें काश्मीर, भूटान, शिकम और तिब्बत इत्यादि देशों को जीतने में लगी थीं। इन लोगों ने लासा का पवित्र देवालय लूट लिया। इस बात पर नाराज होकर चीन के बादशाह ने ७० हजार फौज नेपाल पर भेजी, उस समय घबरा कर गोरखों ने अंग्रेज़ों से मदद माँगी। लेकिन उस समय गोरखों और अँग्रेज़ों में व्यापारिक प्रतिस्पर्धा चल रही थी, इसलिए अँग्रेज़ों ने उन्हें कोई मदद न दी। चीन की फौज ने गोरखों को हरा दिया और प्रति वर्ष कर देने का वादा नेपाल के राजा से लेकर वह चीनी फौज अपने देश को वापस चली गई। बाद को रणबहादुर ने बड़े होकर अपने चाचा को कैद किया और सब राज-काज अपने हाथ में ले लिया (सन् १७९५)। यह रणबहादुर बड़ा क्रूर

पुरुष था। उसको दामोदर पांडे नाम के एक सरदार की सहायता से नैपाल के लोगों ने काशी भेज कर देश निकाले का दण्ड दिया।

काशी में रणबहादुर का लार्ड वेलेज़ली ने बहुत सत्कार किया और उसके खर्च के लिए भी बहुत सा धन दिया। उसके पास एक चतुर अँग्रेज़ नौकर रख दिया। यही अँग्रेज़ दूत बन कर काठमांडू के दरबार में रणबहादुर की ओर से बात-चीत करने को गया। इस अँग्रेज-दूत ने नैपाल-दरबार के सामने यह माँग पेश की कि जो धन अंग्रेज़ सरकार ने रणबहादुर को दिया है वह अंग्रेजों को वापस मिले और रणबहादुर को अच्छी पेंशन दी जाय। लेकिन इससे कुछ लाभ न हुआ। बाद को रणबहादुर नैपाल वापस गया। वहाँ उसकी हत्या हो गई।

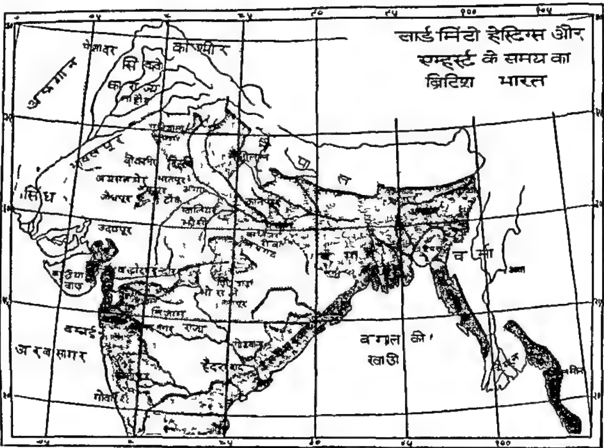
(आ) युद्ध के कारण—गोरखे लोग अपनी राज्य-सीमा दक्षिण की ओर बढाने लगे। उन्हें इस काम से रोकने के लिए बार्लो और मिण्टो ने बड़े प्रयत्न किये। लेकिन गोरखों ने एक न मानी। पिछले २० वर्षों में गोरखों ने लगभग दो सौ गाँव ब्रिटिश राज्य सीमा से ले लिये। यह बात जब हेस्टिंग्स को विदित हुई तब उसने पहले फौज भेज कर भुटवल शहर ले लिया। यह खबर जब काठमांडू पहुँची तब दरबार में यह विचार होने लगा कि अंग्रेज़ों से मेल करना चाहिए या लड़ाई करना ठीक है। अंत में लड़ने का निश्चय हुआ और युद्ध की तैयारी गोरखों ने कर दी। उन्होंने पहले फौज भेज कर भुटवल पर अधिकार कर लिया। वहाँ के अंग्रेज़ अफ़सर और पुलिस और १८ लोगों को जान से मार डाला। हेस्टिंग्स ने यह समाचार

पाते ही युद्ध घोषणा कर दी। गोरखों का सामना करने के लिए सतलज नदी की घाटी से कर्नल जिलेस्पी को भुटवल की राह से, वुड को पश्चिम की ओर से शिमला की राह से, प्रधान सेनापति आक्टरलोनी को और जरनल मार्ले को काठमाडू पर भेजा इस प्रकार उसने चारों तरफ से नेपाल पर चढ़ाई की।

( इ ) पहली लड़ाई (सन् १८१४ १५)—जनरल जिलेस्पी कलुंग किले पर हमला करते समय गोली से मारा गया और उसके ७०० सिपाही घायल हुए ( ३१ १० १८१४ )। दिल्ली से मदद लाकर कर्नल मॉबे ने किला लेने का प्रयत्न किया। लेकिन उसके साथ के भी ६०० ७०० लोग मारे गये और उसे वापस आना पड़ा। उसकी जगह पर जनरल मार्टिंडेल तैनात हुआ और उसने जयठक स्थान लेने की कोशिश की। लेकिन वह भी सफल न हुआ। जनरल वुड की सेना की भी यही दशा हुई। जनरल मार्ले तो और भी अधिक कमज़ोर हो गया। काठमांडू पर हमला करने के लिए वह जिस समय मौका देख रहा था, उसी समय गोरखों ने उसकी सारी फौज काट डाली और उसकी तोपें वग़ैरह सब सामान छीन लिया। उसकी मदद के लिए दूसरी फौज आई। उसका भी कोई उपयोग न हुआ। अन्त में १० फरवरी सन् १८१६ के दिन वह छिप कर दानापुर को भाग आया। केवल आक्टरलोनी की टुकड़ी को थोड़ी-बहुत सफलता मिली। उसने सन् १८१५ की १८ वीं अप्रेल को गोरखों का एक बड़ा मजबूत किला छीन लिया। इस किले का नाम मालौन है। तब उनका वीर सेनापति अमरसिंह काठमाडू गया।

डेविड आक्टरलोनी उस समय उस प्रान्त में अँग्रेज़ों की ओर से एजेंट था। भरतपुर के दंगे में भारत भर में गड़बड़ फैलेगी, इस भय से अपना रोब जमाने के लिये उसने बलवंतसिंह की ओर से वहाँ फ़ौज भेजी। लेकिन गवर्नर जनरल ने भरतपुर के मामले में हाथ डालना ठीक न समझ फौज वापस बुलाने का हुकुम भेज दिया। यह अपमान आक्टरलोनी के लिए असह हुआ और उसने अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया। उसी दुःख से दो मास बाद उसकी मृत्यु हो गई। बाद को दुर्जनसाल का झगड़ा अधिक बढते देख गवर्नर जनरल ने अपनी भूल मान कर भरतपुर पर काम्बरमियर के साथ फ़ौज भेजी। बहुत समय तक तो क़िले की चिकनी दीवारों पर तोपों का कुछ असर ही न हुआ। अन्त में बारूद भरकर दीवार उड़ाने से दीवार फट गई। इसी राह से अंग्रेज़ लोग क़िले में घुसे। उन्होंने दुर्जनसाल को क़ैद किया और बलवंतसिंह को गद्दी पर बिठाकर अपने हाथ में शासन का काम ले लिया (सन् १८२६)। भरतपुर के इस युद्ध से अँग्रेज़ों का सारे देश में प्रभाव जम गया।

(४) फुटकर—मद्रास के लोकप्रिय गवर्नर सर टॉमस मोर ने इस समय मद्रास आहाते में मालगुजारी वसूल करने की रैय्यतवारी पद्धति का प्रचार किया। ज़मींदार को बीच में न रख सारी धरती नाप कर उसे किसानों के नाम चढा देना और उनसे स्वयं सरकार का मालगुज़ारी वसूल करना ही रैय्यतवारी प्रथा है। बम्बई आहाते में एलफ़िन्स्टन ने मालगुजारी की जो प्रथा जहाँ जैसी चल रही थी उसे वहाँ वैसी ही क़ायम रक्खा। क्योंकि इस आहाते में मालगुज़ारी वसूल करने की कई पद्ध



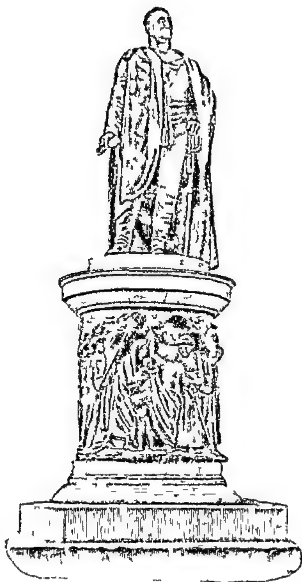
लार्ड मिंटो हेस्टिंग्स और एम्हर्स्ट के समय का ब्रिटिश भारत
पेशावर
काश्मीर
सिंध
उदयपुर
बम्बई
अरब सागर
हैदराबाद
बंगाल की खाड़ी
गोवा

डेविड आक्टरलोनी उस समय उस प्रान्त में अँग्रेज़ो की ओर से एजेंट था। भरतपुर के दंगे में भारत भर में गड़बड़ फैलेगी, इस भय से अपना रोब जमाने के लिये उसने बलवंतसिंह की ओर से वहाँ फ़ौज भेजी। लेकिन गवर्नर जनरल ने भरतपुर के मामले में हाथ डालना ठीक न समझ फौज वापस बुलाने का हुकुम भेज दिया। यह अपमान आक्टरलोनी के लिए असह्य हुआ और उसने अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। उसी दुख से दो मास बाद उसकी मृत्यु हो गई। बाद को दुर्जनसाल का झगड़ा अधिक बढ़ते देख गवर्नर जनरल ने अपनी भूल मान कर भरतपुर पर काम्बरमियर के साथ फ़ौज भेजी। बहुत समय तक तो क़िले की चिकनी दीवारों पर तोपों का कुछ असर ही न हुआ। अन्त में बारूद भरकर दीवार उड़ाने से दीवार फट गई। इसी राह से अंग्रेज़ लोग क़िले में घुसे। उन्होंने दुर्जनसाल को क़ैद किया और बलवंतसिंह को गद्दी पर विठाकर अपने हाथ में शासन का काम ले लिया (सन् १८२६) भरतपुर के इस युद्ध से अँग्रेजों का सारे देश में प्रभाव जम गया।

(४) फुटकर—मद्रास के लोकप्रिय गवर्नर सर टॉमस मोर ने इस समय मद्रास आहाते में मालगुजारी वसूल करने की रैय्यतवारी पद्धति का प्रचार किया। जमींदार को बीच मे न रख सारी धरती नाप कर उसे किसानों के नाम चढ़ा देना और उनसे स्वय सरकार का मालगुज़ारी वसूल करना ही रैय्यतवारी प्रथा है। बम्बई आहाते में एलफिन्स्टन ने मालगुज़ारी की जो प्रथा जहाँ जैसी चल रही थी उसे वहाँ वैसी ही कायम रक्खा। क्योंकि इस आहाते में मालगुजारी वसूल करने की कई पद्ध



लार्ड मिंटो हेस्टिंग्स और
एम्हर्स्ट के समय का
ब्रिटिश भारत
कश्मीर
सिंध
अरब सागर
बम्बई
हैदराबाद
बंगाल की खाड़ी



लार्ड विलियम बेंटिक

# नवाँ अध्याय

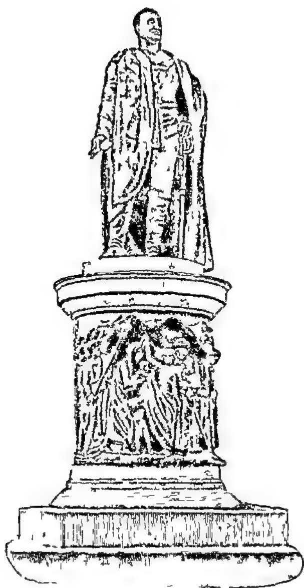
## लार्ड विलियम बेंटिंक

### सन् १८२८-१८३५



(१) लार्ड विलियम बेंटिक ( सन् १८२८-३५ )—सन् १८०६ में जब वेलोर का बलवा हुआ तब मद्रास की गवर्नरी से बेंटिंक हटा दिया गया था। लेकिन लार्ड एमहर्स्ट के चले जाने के बाद गवर्नर जनरल का पद उसी को मिला। उस समय अँग्रेज़ों का राज्य जमाने का काम बहुत कुछ पूरा हो चुका था, तथापि शासन के काम में अनेक ऐसी पेंचीदा बातें रह गई थीं जिनका सुलझाना अभी बाक़ी था। ऐसे जिन अनेक मामलों का फैसला बेंटिंक ने किया उनका सम्बन्ध (१) मांडलिक राजाओं, (२) राज्यों की जब्ती, (३) प्रजाहित के काम, (४) राज्य शासन में सुधार और (५) राष्ट्रीय नीति से था।

(२) मांडलिक राजाओं का सम्बन्ध—इस समय सभी राजे-रजवाड़ों की अवस्था विचित्र हो रही थी। अँग्रेज़ सरकार ने धीरे धीरे सार्वभौम पद प्राप्त कर लिया था। इसकी



लार्ड विलियम बेंटिक

जानकारी न तो पहले राजाओं को थी और न विलायती-सरकार ही यह बात पहले से ताड़ पाई। शासन में कोई बात निश्चित नीति के अनुसार न होने से कई मामले उलटे-सीधे हो गये थे। प्रत्येक राजा के दरबार में एक अँग्रेज़ रेज़ीडेंट रहता था। उसके सामने नित्य ही ऐसे पेंचीले सवाल पेश होते थे। कभी राज्य का दुर्व्यवहार, कभी, गद्दी-नशीनी के झगड़े, कभी दीवान की तैनाती का झगड़ा तो कभी बलवाइयों का प्रबन्ध इत्यादि इत्यादि पेंचीले सवाल आ जाते तो यह भी सवाल रेजीडेंट के सामने उठता कि राजा के राज्य की इन भीतरी बातों में हस्तक्षेप करना उचित है या नहीं। इस मामले का निर्णय करने के लिए कोई नीति या सिद्धान्त न बना था। अफसरों की जैसी उस समय रुचि होती, उसी के अनुसार इन मामलों में काम होता था। परन्तु दूसरे के राज्य के शासन कार्य में इस प्रकार हाथ डालने का अपना अधिकार जब तक अँग्रेजों ने स्थिर रूप से नहीं माना तब तक देशी राजे भी यह स्थिर न कर सके कि वे अँग्रेज-सरकार के आश्रयाधीन हैं, अत उनकी नीति के अनुसार ही अपने राज्य का शासन करना चाहिए। जब तक उपर्युक्त विचार दृढ रूप से दोनों ओर न जमे तब तक का इन माण्डलिक राजाओं का इतिहास बडा विचित्र है। इससे दोनों ओर के पारस्परिक व्यवहार के कारण दोनों पक्षों को अधिक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी। इस अवस्था के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

केप्टेन जेम्स टाड नाम का एक अँग्रेज-रेजीडेंट राजपूताने में था। वह राजपूतों का पक्षपाती था। राजपूतों का खोजपूर्ण इतिहास उसने बड़ी सावधानी से लिखा है। जिस समय कर्नल टाड राजपूताने में था, वहाँ के राज्यों

और कार्य-दक्ष था। कृष्णराज जब बड़ा और काम सँभालने के योग्य हुआ तब सन् १८११ में उसने अपना काम अपने हाथों में ले लिया। इसके बाद ही पूर्णय्या की बहुत शीघ्र मृत्यु हो गई। कृष्णराज बुरे स्वभाव का पुरुष निकला। उसके हाथ से शासन का काम ठीक ठीक नहीं होता था। इसलिए उसको वार्षिक साढ़े तीन लाख रुपये और राज्य की आय का पाँचवाँ भाग देने का निश्चय कर मैसूर का शासन रेजीडेंट-द्वारा होने की आज्ञा गवर्नर-जनरल ने सन् १८३१ में दी। यह व्यवस्था अनेक वर्षों तक वैसी ही चलती रही। अन्त में सन् १८८१ में मैसूर का राजकाज वहाँ के राजा को वापस सौंप दिया गया। इसी तरह अपने राज्य में सुधार करने की चेतावनी निज़ाम को भी दी गई।

(३) राज्यों की जब्ती—(अ) कछार (सन् १८३०)—आसाम और बरमा की सीमा पर कछार का प्रान्त है। जिस समय बरमा के साथ अँग्रेज़ों का युद्ध चल रहा था, यह प्रान्त भी अँग्रेजों के आश्रय में था। यहाँ के राजा गोविन्दचंद्र की मृत्यु सन् १८३० में हुई। उसके राज्य का कोई हक़दार न था। इससे उसका राज्य अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया गया। (आ) कुर्ग (१८३४)—मैसूर और मालाबार के बीच में कुर्ग या कोडगा नामक एक पहाड़ी प्रदेश है। उसका कुछ भूभाग बहुत उपजाऊ भी है। वहाँ हाथी तथा अन्य जंगली जानवर बहुत रहते हैं। वहाँ के निवासी वीर हैं। इनमें एक भाग आर्य और ३ भाग अनार्य हैं। सोलहवीं सदी में यह प्रान्त विजय नगर राज्य का एक भाग था। उस समय एक साधु इक्करी प्रान्त से निकलकर कुर्ग में धर्म प्रचार के बहाने से आया और उसने वहाँ अपने

राज्य की स्थापना की। वहाँ के राजे "वीर-राज" कह कर पुकारे जाते हैं। दो सौ वर्ष तक राज्य स्वतन्त्र रहा। हैदरअली और टीपू ने इस राज्य को अपने अधीन करने का प्रयत्न किया था। लेकिन वे नहीं सफल हुए। जिस समय टीपू का राज्य अँग्रेजों ने लिया उस समय कुर्ग का राजा अँग्रेजों का मित्र था। प्रति वर्ष एक हाथी वह अँग्रेजों को देता था। सन् १८०९ में वह वीरराज मर गया और गद्दीनशीनी के झगड़े उठ खड़े हुए। तुङ्गराज उसका भाई था, वह गद्दी पर बैठा। सन् १८२० में वह मरा और उसका लड़का चिक्कराज गद्दी पर बैठा। चिक्कराज ने अपने सगे सम्बन्धियों और अन्य बहुतेरे लोगों को मार डाला। सन् १८३४ में इस काम को रोकने और शासन का काम राह पर लाने के लिए अँग्रेजों की एक फौज वहाँ भेजी गई। उस समय राजा अँग्रेजों के अधीन हुआ। गवर्नर जनरल ने उसके राज्य को कम्पनी के शासन में मिला लिया।

(४) प्रजाहित के काम (१)—सती होना बंद—बेंटिक ने ऐसा कानून बनाया कि भारत में यदि कोई स्त्री सती होगी तो उसके सगे-सम्बन्धियों पर हत्या का अभियोग लगाकर वे हत्या के अपराधी समझे जाँयगे। इसका विशेष विरोध न हुआ और यह प्रथा धीरे धीरे बन्द हो गई। (२) ठगों का प्रबन्ध—अँग्रेजों ने जिस समय भारत पर अपना अधिकार जमाया उस समय देशी रजवाड़ों के पास बड़ी बड़ी फौजें थीं। वे सब अब निकाल दी गईं। लड़ाई और ... करनेवालों का काम बन्द हुआ और देश में शान्ति फैली। ... इन बेकार लोगों को अन्य कोई काम न मिलने से ये

राज्य की स्थापना की। वहाँ के राजे "वीर राज" कह कर पुकारे जाते हैं। दो सौ वर्ष तक राज्य स्वतन्त्र रहा। हैदरअली और टीपू ने इस राज्य को अपने अधीन करने का प्रयत्न किया था। लेकिन वे नहीं सफल हुए। जिस समय टीपू का राज्य अँग्रेज़ों ने लिया उस समय कुर्ग का राजा अँग्रेजों का मित्र था। प्रति वर्ष एक हाथी वह अँग्रेजों को देता था। सन् १८०९ में वह वीरराज मर गया और गद्दीनशीनी के झगडे उठ खड़े हुए। तुङ्गराज उसका भाई था, वह गद्दी पर बैठा। सन् १८२० में वह मरा और उसका लड़का चिक्कराज गद्दी पर बैठा। चिक्कराज ने अपने सगे-सम्बन्धियों और अन्य बहुतेरे लोगों को मार डाला। सन् १८३४ में इस काम को रोकने और शासन का काम राह पर लाने के लिए अँग्रेजों की एक फौज वहाँ भेजी गई। उस समय राजा अँग्रेजों के अधीन हुआ। गवर्नर जनरल ने उसके राज्य को कम्पनी के शासन में मिला लिया।

(४) प्रजाहित के काम (१)—सती होना बंद—बेंटिंक ने ऐसा कानून बनाया कि भारत में यदि कोई स्त्री सती होगी तो उसके सगे-सम्बन्धियों पर हत्या का अभियोग लगाकर वे हत्या के अपराधी समझे जायँगे। इसका विशेष विरोध न हुआ और यह प्रथा धीरे धीरे बन्द हो गई। (२) ठगों का प्रबन्ध—अँग्रेजों ने जिस समय भारत पर अपना अधिकार जमाया उस समय देशी रजवाड़ों के पास बड़ी बड़ी फौजें थीं। वे सब अब निकाल दी गईं। लडाई और झगड़ा करनेवालों का काम बन्द हुआ और देश में शान्ति फैली। सेना के इन बेकार लोगों को अन्य कोई काम न मिलने से ये

लोग ठगी का धंधा करने लगे। जंगल या निर्जन स्थान से होकर जिस समय यात्री निकलते उस समय ये लोग उनको अकेला पाकर लूट लेते। यदि सीधी तरह उनसे धन न मिलता तो यात्री के गले में फाँसा डालकर उसे मार डालते। ऐसे कामों को ठगी कहते हैं। ये ठग लोग अपनी टोली बनाकर रहते थे। ये परस्पर एक दूसरे का बड़ा भरोसा रखते थे। ये लोग जिस समय किसी को अपनी टोली में मिलाते तो उससे भरोसे का वर्त्ताव करने और प्राण जाने पर भी किसी को अपने या अपने साथियों का हाल न बताने की शपथ लेते। ये लोग काली पर अधिक विश्वास रखते थे। देवी को प्रसन्न करने के लिए वे आदमियों की बलि उस पर चढ़ाते थे। वे समझते थे कि हमारे इन निर्दयता के कामों से देवी प्रसन्न होती है। उनमें परस्पर विलक्षण ऐक्य था। किसी गुप्त इशारे से ये परस्पर एक दूसरे पर अपने मन की बात प्रकट कर देते थे। इसी प्रकार इन्होंने अपनी सांकेतिक भाषा भी अलग बना ली थी। इनका यह ठगी का काम बहुत दिनों से चल रहा था। इससे यात्रियों को बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़ते थे। उस समय मंदसौर में कर्नल स्लीमन मौजूद था। १८२९ में उसे पहले पहल इन ठगों का हाल मालूम हुआ। उसने फौरन इनका हाल गुप्त रूप से जान लिया और गवर्नर जनरल के पास इनका सब हाल लिख भेजा। इस पर गवर्नरजनरल ने एक स्वतंत्र विभाग की स्थापना कर कर्नल स्लीमन को उसका बड़ा अफ़सर बनाकर ठगों का नाश करने का काम इस विभाग को दिया। यह काम १८३७ तक चला। लगभग एक हजार ठग पकड़े और मारे गये। और जिन ठगों ने अपना अपराध स्वीकार करके पश्चात्ताप किया उनको क्षमा

करके खेती इत्यादि के काम दिये गये। ( ३ ) विद्यादान— भारत के सार्वभौम वनने पर अँग्रेज़ों के सामने दो बड़े कठिन प्रश्न पेश थे पहला यह कि भारत की प्रजा को विद्या पढ़ाकर उन पर शासन करना सुलभ है कि उनको अज्ञानी वनाये रखकर शासन ठीक ठीक चलाया जा सकता है। इस प्रश्न पर बहुत दिनो तक विचार होता रहा। अन्त में वेंटिंक ने भारत की प्रजा को शिक्षित वनाना निश्चित किया। इस निश्चय के पक्ष में विलायत के लोग भी थे। इसलिए वेंटिंक को इस प्रश्न के सुल्झाने में देर न लगी। दूसरा प्रश्न यह था कि जिस शिक्षा का प्रचार भारत में किया जाय उसकी प्रणाली क्या होनी चाहिए। यूरोपीय प्रणाली या भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली। इस समय यूरोप के कितने ही विद्वानों ने सस्कृत साहित्य का अच्छा अध्ययन कर लिया था। अत उन्हें भारत के ज्ञान भाडार का अच्छा पता था। वे भारतीय ज्ञान को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। उन विद्वानों में एक का नाम होरेस विलियम था। यह उनका अगुआ था। उसने कहा कि भारत के लोगों को उनकी प्राचीन विद्या की ही शिक्षा दी जानी चाहिए। उनको पाश्चात्य प्रणाली से पाश्चात्य विद्या का ज्ञान देना व्यर्थ है। हिन्दुओं के प्राचीन सस्कृत-ग्रथ किसी तरह कम योग्यता के नहीं हैं। उनमें भी उदात्त विचारों का समावेश है। किन्तु दूसरा पक्ष इस राय के विरुद्ध था। इस पक्ष के लोग चाहते थे कि भारत में अँग्रेजी-भाषा और पाश्चात्य ज्ञान की शिक्षा दी जाय। इस पक्ष का प्रभाव भी बहुमत से अधिक था। सर चार्ल्स ट्रिवेलिन, डाक्टर डफ, और मैकाले इत्यादि इस पक्ष के अगुआ थे। उनका कहना था कि पाश्चात्य लोगों के शास्त्रीय शोध और उनके स्वतन्त्र विचार बड़े महत्व के हैं, इनके

प्रचार से जो सिद्धि प्राप्त होगी वह संस्कृत विद्या से न मिल सकेगी। ट्रिवेलिन और मेकाले ने जो लेख इस विषय पर लिखे हैं वे बड़े महत्व के हैं। अन्त मे मेकाले के कथनानुसार भारतीयों को अँग्रेज़ी शिक्षा देना निश्चित किया गया। पहले पादरी लोगों ने यहाँ अनेक स्कूल खोले। बैंटिक ने डाक्टरी और सर्जनी ( जर्राही ) की शिक्षा देने का एक विद्यालय कलकत्ते में खोलने का निश्चय किया। ( ४ ) **स्टीम के जहाज**—सन् १८३० में कलकत्ते में पहले पहल स्टीम से चलनेवाला जहाज बना। यह उद्योग अब बड़ी उन्नति पर है। पूर्वी समुद्रों में स्टीमर चलाने की एक बड़ी कम्पनी पी० एण्ड ओ० सन् १८३३ में खुली। इसके जहाज़ लाल समुद्र से चलकर भारत में पहुँचने लगे। इससे उत्तमाशा अन्तरीप होकर आने के लम्बे प्रवास की आवश्यकता न रही और यात्रा में जो दो मास का समय लगता था वह कम हो गया। स्वेज़ के स्थल-भाग मे एक नहर सन् १८६९ में खोदी गई। इससे विलायत के जहाज़ यूरोप के समुद्रों से पूर्वी समुद्रों में सरलता से पहुँचने लगे। तब से बम्बई से जहाज़ छूट कर २० दिन में ही विलायत पहुँचने लगे। ( ५ ) **सरकारी कामों मे देशी भाषाओं का उपयोग**—मुस्लिम शासन का प्रारम्भ जब से इस देश में हुआ तभी से इन्साफ के कामों में फारसी-भाषा चलने लगी। इससे लोगों को बड़ी असुविधा होती थी। बैंटिक ने यह आज्ञा दी कि प्रत्येक प्रान्त मे वहाँ की भाषाओं में दफ्तरों की लिखा पढ़ी रहे। इससे प्रजा को बड़ी सुविधा हो गई। ( ६ ) इसी प्रकार भारत में भारतीय लोग बड़े बड़े ऊँचे पदों पर तैनात न किये जाते थे। लेकिन बैंटिङ्क ने सभी लोगों को उनकी योग्यता के अनुसार सरकारी नौकरी देने का निश्चय किया।

(५) सुधार और योग्यता—बेंटिङ्क ने (१) सरकारी कर्मचारियों का वतन और उनकी तरक्की का एक निश्चित नियम बना दिया और फौज के कर्मचारियों को जो भत्ता मिलता था उसे बन्द कर दिया। (२) अफीम का प्रचार रोकने के लिए बेचनेवालों को परवाने देने का नियम बनाया। (३) आगरा और अवध प्रान्त का फिर से नया बन्दोबस्त कर लगान का निश्चय किया।

योग्यता—राज्य-शासन की व्यवस्था, प्रजा हित, और विदेशी राष्ट्रों की नीति इत्यादि में बेंटिङ्क की कार्रवाइयों ने क्रांति उत्पन्न कर दी। रणजीतसिंह और सिंध के अमीरों के साथ इसने सन्धियाँ कीं। इनकी चर्चा आगे के अध्याय में की जायगी। कलकत्ते में इस गवर्नर जनरल की एक स्मारक मूर्त्ति है, उसके नीचे लार्ड मेकाले का लिखा एक लेख है। उसके पढ़ने से इसकी योग्यता का पता लगता है। इसमें लिखा है—"लार्ड विलियम बेंटिंक ने सात वर्ष तक बड़ी चतुरता से, भलाई और उदारता के साथ भारत का शासन चलाया। उसकी स्मृति के लिए यह स्मारक खड़ा किया गया है। इतना उच्च पद प्राप्त होने पर भी उसने अपने सादे रहन सहन और नम्रता का त्याग कभी न किया। उसने भारतीय लोगों की इस कल्पना को अपने आचरण से दूर कर दिया कि राजा मनमाना व्यवहार कर सकता है। उसकी जगह उसने पाश्चात्य स्वातन्त्र्य का वैभव दिखा दिया। प्रजा का कल्याण करना ही शासन करने का उद्देश है, इस तत्त्व को उसने सदैव अपने ध्यान में रक्खा। उसने दुष्ट प्रथाओं को बन्द किया। निन्द्य भेदाभेद तोड़ दिये। और प्रजा की बुद्धि तथा

जाय तो कहना पड़ेगा कि हमारे देश में छापे की कल का अभाव था। इस कला की वृद्धि यूरोप में १५वीं सदी में की गई। उसके प्रसार से पुराना युग एक दम बदलने लगा। इस छापने की कला का प्रवेश भारत में अँग्रेज़ों के साथ हुआ और भारत का पहला संवाद पत्र अंग्रेज़ी में बेंगाल गज़ट सन् १७८२ में प्रकाशित हुआ। परंतु सरकार की सख्त मनाई होने के कारण उस समय सवाद पत्र नहीं पनप सके। इसी बंधन को मेटकाफ़ ने सन् १८३५ के सितम्बर मास में तोड़ दिया। उसका यह काम विलायत में नहीं पसंद किया गया। कोर्ट आव डायरेक्टर्स ने नाराज होकर उसका अपमान किया। इसलिए लार्ड आक्लेण्ड के आने पर वह अपने पद से इस्तीफा देकर चला गया। मेटकाफ़ द्वारा दी गई यह सुविधा सन् १८७८ में लार्ड लिटन ने छीन ली। लेकिन लार्ड रिपन ने उसे फिर जारी किया। फिर भी लार्ड मिन्टो ने सन् १९१० में छापाखानों का मुँह बंद किया। लेकिन महायुद्ध के बाद यह बंधन दूर किया गया। भारत के वर्त्तमान समाचार पत्रों की बाढ सन् १८५० के बाद की है।

---

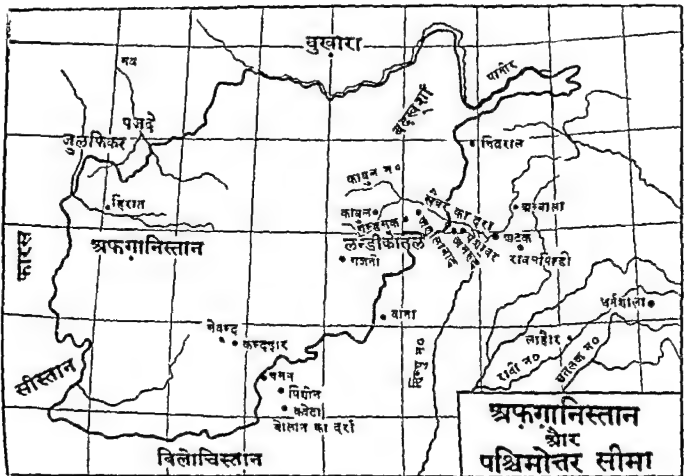
# दसवाँ अध्याय

## लार्ड आक्लैंड और एलिनबरो

### सन् १८३६-१८४४

१—पश्चिमोत्तर-सीमा २—पहला अफगान-युद्ध
३—अफगान-काण्ड का अन्त ४—सिंध के अमीर
५—सिंधिया से युद्ध

(१) **पश्चिमोत्तर-सीमा**—भारत में अंग्रेजों की सार्वभौम सत्ता के कायम होते ही यूरोप के परराष्ट्रीय झगड़ों में भारत का राजकीय सम्बन्ध भी उत्तरोत्तर अधिक बढने लगा। इग्लैंड की साम्राज्य-सत्ता वस्तुत: भारत के ऊपर ही निर्भर है। जिस प्रकार वेलेज्ली के समय में नेपोलियन का भय भारत के लिए अंग्रेजों को बाधक था, उसी प्रकार आक्लैंड के समय में रूस की बढती हुई शक्ति अंग्रेजों के भय का कारण बनी। रूस का राज्य पहले केवल यूरोप में था, लेकिन बाद को उत्तर और पश्चिमी एशिया में वह धीरे धीरे फैल गया। कास्पियन सागर की ओर से रूस ने ईरान की तरफ अपना राज्य बढाया और काले सागर की ओर से भी रूस का राज्य बढता हुआ प्रतीत हुआ। इग्लैंड में उस समय परराष्ट्रीय विभाग का मंत्री लार्ड पामर्स्टन था। यह मंत्री रूस से वैर रखता था। वही इस रूस-भय का उत्पादक था। उसने अंग्रेजी शासन-कार्य में २५-३० वर्ष तक काम किया।



अफ़गानिस्तान और पश्चिमोत्तर सीमा

# दसवाँ अध्याय

## लार्ड आक्लैंड और एलिनबरो

### सन् १८३६-१८४४

१—पश्चिमोत्तर-सीमा
२—पहला अफगान-युद्ध
३—अफगान काण्ड का अन्त
४—सिंध के अमीर
५—सिंधिया से युद्ध

(१) **पश्चिमोत्तर-सीमा**—भारत में अंग्रेजों की सार्व-भौम सत्ता के कायम होते ही यूरोप के परराष्ट्रीय झगड़ों में भारत का राजकीय सम्बन्ध भी उत्तरोत्तर अधिक बढने लगा। इग्लैंड की साम्राज्य सत्ता वस्तुत भारत के ऊपर ही निर्भर है। जिस प्रकार वेलेज्ली के समय में नेपोलियन का भय भारत के लिए अंग्रेजों को बाधक था, उसी प्रकार आक्लैंड के समय में रूस की बढती हुई शक्ति अंग्रेजों के भय का कारण बनी। रूस का राज्य पहले केवल यूरोप में था, लेकिन बाद को उत्तर और पश्चिमी एशिया में वह धीरे धीरे फैल गया। कास्पियन सागर की ओर से रूस ने ईरान की तरफ अपना राज्य बढाया और काले सागर की ओर से भी रूस का राज्य बढता हुआ प्रतीत हुआ। इग्लैंड में उस समय परराष्ट्रीय विभाग का मत्री लार्ड पामर्स्टन था। यह मत्री रूस से वैर रखता था। वही इस रूस भय का उत्पादक था। उसने अंग्रेजी शासन-कार्य में २५,३० वर्ष तक काम किया।

इससे रूस के मामले में काफी रंग चढ़ गया। भारत की पश्चिमोत्तरी सीमा सिंधु-नदी बना ली गई थी और यह निश्चय किया गया था कि सिंधु नदी के उस पार के झगड़ों में भारत-सरकार न पड़ेगी। लेकिन अफ़ग़ान युद्ध और पामर्स्टन और आक्लैंड की अकारण भीति ने सिंध के अमीरों का झगड़ा उपस्थित किया। अफ़ग़ानिस्तान में भारत की ओर से प्रवेश करने के मुख्य दर्रे हैं। पहला ख़ैबर उत्तर में और दूसरा बोलन दक्षिण में। ख़ैबर का मार्ग पेशावर से ख़ैबर की घाटी होकर जलालाबाद को चला जाता है। दूसरा मार्ग सिंध से ऊपर सक्कर तक जल-मार्ग द्वारा और आगे क्वेटा बोलन होकर कंधार को जाता है। इन दो मार्गों के लिए रणजीतसिंह और सिंध के अमीरों के मामले उठ खड़े हुए थे।

भारत की पश्चिमोत्तरी सीमा पर ईरान और अफ़ग़ानिस्तान ये दो राज्य हैं। गवर्नर जनरल समझता था कि रूस का ज़ार इन दोनों राज्यों से मित्रता कर भारत में आने का प्रबंध कर रहा है। अतः उसने इस रूस के प्रयत्न को विफल करने का उपाय किया। अफ़ग़ानिस्तान के शासन में दो राजवंश प्रधान हैं (१) बरकज़ई और (२) दुर्रानी। मराठों के साथ झगड़नेवाला अहमदशाह अब्दाली दुर्रानी-वंश का था। और उसके वज़ीर बरकज़ई-वंश के लोग थे। अहमदशाह अब्दाली की मृत्यु सन् १७७३ में हुई। उसके बाद उसका लड़का तैमूरशाह गद्दी पर बैठा। उसने १७९३ तक शासन किया। उसके मरने पर उसका लड़का ज़मानशाह गद्दी पर बैठा। ज़मानशाह और फ़तहख़ाँ बरकज़ई में परस्पर अनबन हो गई। इससे फ़तहख़ाँ ने जमानशाह को कैद कर दिया और उसकी आँखें निकलवा लीं। तब वह सन् १८१

में लुधियाने आया और अंग्रेजों की शरण में रहने लगा। बाद को कुछ दिनों में उसका भाई शाहशुजा भी हारकर अफग़ानिस्तान से भारत में अंग्रेज़ों के पास आ गया। फतहखाँ चतुर और वीर था। उसने अफगानिस्तान की बडी उन्नति की। फतहखाँ सन् १८२८ में मारा गया और उसके भाई दोस्त महम्मदखाँ को अफगानिस्तान का राज्य मिला। इसके समय में अफग़ानिस्तान शान्त हुआ। ईरान के शाह और रूस के जार की निगाह इस देश पर थी। पेशावर इत्यादि पूर्वी अफगानिस्तान पर शाहशुजा का ही अधिकार था। इसी प्रकार पश्चिमी अफगानिस्तान पर भी अधिकार पाने के लिए रणजीतसिंह को कोहनूर हीरा देकर और उसकी मदद लेकर शाहशुजा ने दोस्त महम्मद पर चढाई की। परन्तु उसकी हार हुई। जिस समय वह वापस आ रहा था, रणजीतसिंह ने उसका पेशावर प्रान्त भी छीन लिया। अत निराधार होकर वह फिर सन् १८३५ में अंग्रेजों की शरण में लुधियाना पहुँचा और दोस्त महम्मद अफगानिस्तान की गद्दी पर कायम रहा।

पेशावर प्रान्त रणजीतसिंह के अधिकार में था। उसे वापस लेने के लिए दोस्त महम्मदखाँ ने रूस और अंग्रेजों से मदद माँगी। रणजीतसिंह से झगड़ा करना ठीक न समझ अंग्रेज़ों ने केप्टेन एलेक्जेंडर बर्न्स को बातचीत करने के लिए दोस्त महम्मद के पास भेजा। उस समय पेशावर प्रान्त के बारे में उखाड़ पछाड़ होने पर दोस्त महम्मद ने कहा कि जो कोई मुझे रणजीतसिंह से मेरा पेशावर प्रान्त दिलावेगा उसी के पक्ष में मैं रहूँगा। अन्त में रूस ने उसे पेशावर-प्रान्त दिलाने का वचन दिया। तब तो दोस्त महम्मद खुल्लमखुल्ला रूस के पक्ष में हो गया ( सन्

हुईं। इन फौजों ने कंधार पहुँचकर ८ मई सन् १८३९ को शाहशुजा को गद्दी पर बैठाया और वहाँ जनरल नाट को तैनात करके अंग्रेजी फौजें ग़ज़नी पर चढ़ाई करने के लिए गईं। २० जुलाई को यह क़िला अंग्रेज़ी फ़ोजों के अधिकार में आ गया। तब दोस्त महम्मद ने कहला भेजा कि यदि शाहशुजा मुझे अपना वज़ीर बनावे तो मैं उसे अफ़ग़ानिस्तान का अमीर बना दूँगा। लेकिन मेक्नाटन ने यह बात स्वीकार न की। तब दोस्त महम्मद बुख़ारा की ओर भाग गया। यह देख १७ अगस्त को शाहशुजा के साथ ब्रिटिश फौजें काबुल में घुसीं और अनेक वर्षों का वनवास भोगनेवाले शाहशुजा को उन्होंने काबुल की गद्दी पर बैठा दिया। उस समय इस शीघ्र सफलता से सब को संतोष हुआ। बम्बई की फ़ौज वापस आई और लौटते समय इस फ़ौज ने खिलात पर क़ब्जा कर लिया। इतने में ही रणजीतसिंह की मृत्यु हुई और नया गड़बड़ शुरू हुआ।

शाहशुजा को गद्दी पर बैठा कर अंग्रेज़ी फौजें बन्दोबस्त करने के लिए वहीं रह गईं। इनका रखना वहाँ आवश्यक समझ अंग्रेज़ों ने अपने स्त्री बच्चों को भी वहीं बुला लिया और वहाँ की ठण्डी हवा में सुख से रहने लगे। लगभग २ वर्ष तक वे वहाँ रहे। बाला हिसार नामक किला काबुल की एक पहाडी पर था। इस क़िले के शाही महल में अंग्रेज़ों की छावनी थी। शाहशुजा ने यह क़िला अपने काम में लाने के लिए अंग्रेजों से माँगा। मेक्नाटन ने यह क़िला ख़ाली कर दिया और अपनी छावनी शहर के बाहर बनाई। अंग्रेज़ों के सब आदमी एक ही जगह पर एकत्र होकर न रहे। बालाहिसार का हाथ से निकल

जाने देना उनकी बड़ी भारी गलती थी। अभी विभिन्न स्थानों में दंगे-बलवे हो रहे थे। खिलात के अधिकारी मेहराबखाँ के मरने पर उसके लड़के ने खिलात अंग्रेजों से वापस ले लिया। बाद को दोस्त महम्मद अंग्रेजों के वश में आगया। उसको तथा उसके कुटुम्ब को सन् १८४० में पेंशन देकर भारत में रहने के लिए भेज दिया तो भी शान्ति न हुई। इसलिए अंग्रेजों ने अपनी छावनी वहाँ से न हटाई। सन् १८४१ में सेनापति काटन विलायत लौट गया और उसकी जगह पर एलफिस्टन नाम के एक बूढे और दुर्बल व्यक्ति की तैनाती हुई। खर्च कम करने का आदेश बार बार डायरेक्टरों के यहाँ से होने पर मेक्नाटन ने कुछ और भी फौज वापस कर दी, और शान्ति बनाये रखने के लिए जो रकम खिलजी सरदारों को दी जाती थी वह भी उसने बंद कर दी। इससे वे लोग बहुत बिगड़े और खिलजी लोगों को वश में रखने का एक नया काम अंग्रेजी फौजों पर और मढा गया।

३ नवम्बर सन् १८४१ को अफगान लोगों ने अंग्रेज राजदूत बर्न्स की हत्या की और काबुल में विद्रोह खड़ा किया। इन विद्रोहियों का अगुआ अकबरखाँ था। यह अकबरखाँ दोस्त महम्मद का लड़का था। यह अंग्रेजों को बहुत कष्ट देने लगा। राहों की नाकेबंदी करके इसने खाने पीने की चीजों का अंग्रेजों के पास पहुँचना तक रोक दिया। रास्ते बरफ से ढँक गये थे, इसलिये जलालाबाद या कंधार से कोई मदद भी उन्हें नहीं भेजी जा सकती थी। इधर अंग्रेजी फौजों में भी असंतोष बढा। अन्त में अंग्रेजों ने अफगानिस्तान छोड़कर भारत वापस आने का निश्चय किया। सुरक्षित रूप से लौट जाने देने के लिए मेक्नाटन तथा तीन अन्य अंग्रेज जिस समय अकबरखाँ से

बातचीत कर रहे थे, उसने विश्वासघात कर के उन्हें भी मार डाला ( २३-११-१८४१ ) 'अत खज़ाना और तोपें शत्रुओं को देकर ६ जनवरी सन् १८४२ को अंग्रेज़ी फौज वापस लौटी। लेकिन रास्ते में अकबरख़ाँ अपने सब लोगों के साथ इस लौटती हुई फौज को कष्ट देने लगा। उसे रोकने के लिए अंग्रेजों ने एल्फिंस्टन, पार्टिंज़र तथा कुछ लड़के व लड़कियाँ ज़मानत के रूप में उसे दे दिये और बाकी आदमी वहाँ से लौट पड़े। रास्ते में कड़ी सर्दी पड़ रही थी। अन्न-पानी का अभाव था और इस पर भी पहाड़ी अफ़गान इन लोगों पर पत्थर की वर्षा करते थे और सकरी राह में से जिस समय ये लोग निकलते बकरियों की तरह इन लोगों को अफ़गान काटने लगते। जिस समय ये लोग काबुल से चले उस समय इनकी संख्या १५ हज़ार थी। लेकिन इनमें से केवल डाक्टर ब्रायडन ही अधमरी अवस्था में ७ दिन बाद जलालाबाद पहुँच पाया। बाद को अप्रैल के महीने में अकबरखाँ भी जलालाबाद आ पहुँचा। लेकिन वह स्थान जनरल सेल ने उसे न लेने दिया। पेशावर में सिक्ख फोज भी बलवा करके अंग्रेज़ों के विरुद्ध हो गई। कन्धार में जनरल नाट भी डटा रहा। इस प्रकार अफ़गानिस्तान में अंग्रेज़ों का दबदबा नष्ट हो गया। तब जमानत पर दी हुई मण्डली को छुड़ाने तथा नाट व सेल की सहायता करने के लिए आकलैंड ने पोलक को भेजा। लेकिन इस असफलता से उसकी बड़ी बदनामी हुई और उस पर आक्षेप किये जाने लगे। अत उसे अपने पद से इस्तीफा दे देना पड़ा। उसके स्थान पर लार्ड एलनबरो की तैनाती हुई और वह फरवरी मास में भारत आ पहुँचा।

लार्ड आक्लेंड का एक काम ध्यान में रखने के योग्य है। हिन्दुओं के उत्सवों मे अंग्रेज शुरू से ही शामिल होते थे, परन्तु आक्लेंड के समय में यह निश्चित हुआ कि हिन्दुओं के मन्दिरों तथा उत्सवों में अंग्रेज लोग किसी प्रकार का सम्बन्ध न रक्खें।

सन् १८४२ के फरवरी मास में जनरल पोलक चला। कंधार और जलालाबाद में अंग्रेज लोग किसी तरह अपनी रक्षा कर रहे थे। पोलक के आ मिलने पर काबुल में कैद किये गये स्त्री-बच्चों को छुड़ाने के लिए दोनों अंग्रेज़ी फौजें काबुल की ओर बढ़ीं। रास्ते में जनरल पोलक ने तेजीन नामक स्थान में अकबरखाँ को हराया। इधर नाट ने भी गजनी की दीवार तोड़कर काबुल में प्रवेश किया। १७ सितम्बर को दोनों फौजें काबुल में एक दूसरे से मिल गईं। इससे पहले ही जिस शाहशुजा के लिए इतना रक्तपात और धन-व्यय किया गया था वह बलवाइयों के हाथ से मारा जा चुका था। लेकिन कैद किये हुए अंग्रेज स्त्री-बच्चों की रक्षा अकबरखाँ ने बड़ी अच्छी तरह से की थी। इस कैद का हाल जनरल सेल की स्त्री ने बड़ी चित्ताकर्षक भाषा में किया है। केवल जनरल एलफिस्टन की मृत्यु हो चुकी थी। जिस समय ये स्त्रियाँ और बच्चे कैद से छूट कर अपनी फौजों से मिले, उस समय सभी को बड़ा आनन्द हुआ। लोगों में भय उत्पन्न करने के लिए अंग्रेजों ने काबुल के बाज़ार को सुरङ्ग लगा कर बारूद से उड़ा दिया। शाहशुजा के कुटुम्ब को साथ लेकर अंग्रेजी फौज २२ अक्टूबर को काबुल से वापस लौटी। वह भारत सकुशल आ पहुँची। अफगानिस्तान का राज्य दोस्त महम्मद को वापस मिला और वह अन्त तक अंग्रेजों के साथ मित्रता का व्यवहार बनाये रहा।

( ५ ) सिन्ध के अमीर—पहले सिन्ध पर मुग़लों का अधिकार था। बाद को उसे अहमदशाह अब्दाली ने जीत लिया। सन् १७८६ में बलूची लोगों ने उस प्रान्त पर अपना अधिकार किया और वहाँ खैरपुर, मीरपुर, और हैदराबाद में अपने छोटे छोटे माडलिक राज्य बनाये। इन्हीं को सिंध के अमीर कहते हैं। सन् १८३१ तक अंग्रेजों से उनका कोई सम्बन्ध न था। इसी साल केप्टेन बर्न्स ने रणजीतसिंह के पास जाते समय अमीरों के साथ व्यापारिक संधि की थी ( सन् १८३२ )। अमीरों के राज्यों से होकर फौज या युद्ध-सामग्री न ले जाने की भी एक शर्त उसमें थी। बाद को १८३९ में बम्बई की फौज जब अफ़ग़ानिस्तान को जाने लगी उस समय फ़ौज को अपने राज्य से होकर निकल जाने के लिए अमीरों को गवर्नर जनरल ने लिखा और जो कर अफगानिस्तान के अमीर को ये लोग देते थे वह कर भी गवर्नर जनरल ने शाहशुजा की ओर से माँगा। सन् १८३३ में शाहशुजा ने संकट के आ पड़ने पर इन अमीरों से ३ लाख रुपय लिया था और यह रकम लेकर इन्हें सदा के लिए कर से मुक्त कर दिया था। तथापि सन् १८३७ में जो संधि शाहशुजा के साथ की थी उसके अनुसार अंग्रेज़ों ने कर व अन्य बातों के लिए लिखा इसको इन अमीरों ने मान लिया। सन् १८३९ के मार्च मास ॲंग्रेजों ने अपनी तैनाती फ़ौज उनके यहाँ रख दी और उन भक्कर के मजबूत किले और करॉची शहर पर उन्हों अपना अधिकार कर लिया। जिस समय अफगानिस्तान अंग्रेज़ों का झगड़ा चल रहा था, अमीर चुप थे। मेजर पौट्टि सिन्ध का रेजीडेंट था। उसने अमीरों के विषय में सरकार

पास कई विशेष बातें लिख भेजीं। गवर्नर जनरल एलिनबरो ने इन बातों पर ध्यान न देकर सिन्ध-प्रान्त का प्रबन्ध करने के लिए सर चार्ल्स नेपियर को दीवानी और फ़ौजदारी के हक देकर वहाँ भेजा (३९-१८४२)। तैनाती फौज के ख़र्च के लिए अमीरों से अंग्रेज़ों को ३ लाख रुपये कर के रूप में मिलते थे। इसके बदले में नेपियर ने उनका २० लाख का राज्य छीन लिया। इसके अलावा उनको कहा कि वे अपने नाम के सिक्के न चलावें, अंग्रेज़ी जहाज़ों को ईंधन दें। लेकिन ये बातें अमीरों ने नापसंद कीं।

युद्ध (सन् १८४३)—औट्रम के साथ अभी अमीरों की बातचीत चल ही रही थी कि नेपियर ने उनका मजबूत क़िला ... जीत लिया। इससे अमीरों का धैर्य छूट गया और उन्होंने अंग्रेज़ों को सभी माँगें स्वीकार कर लीं। (५-१-१८४३) लेकिन बलूची लोगों को अमीरों की यह बात पसन्द न आई। उन्होंने नाराज़ होकर रेज़ीडेंसी पर अचानक हमला कर दिया। तब औट्रम वहाँ से जहाज़ पर बैठकर भाग निकला और नेपियर से जा मिला। १७ फरवरी को मियानी में बड़ी घमासान लड़ाई हुई। इस लड़ाई में बलूची लोगों की हार हुई। नेपियर ने हैदराबाद पर अधिकार कर लिया और वहाँ का ख़ज़ाना लूट लिया। ४ मार्च को हैदराबाद के पास दुबा में फिर अमीरों की हार हुई। इसके बाद अंग्रेज़ों ने ख़ैरपुर के अलावा अन्य सभी राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया। अंग्रेज़ी सार्वभौम सत्ता के क़ायम होने पर भी भारत के राजाओं की बड़ी बड़ी फौजों के रहते अंग्रेज निर्भय नहीं रह सकते थे। सिंध के अमीर, पंजाब के सिक्ख इत्यादि से युद्ध करने का अंग्रेज़ों

का हेतु केवल उनकी फौजों को तोड़ना था। जिस सिंधिया-युद्ध का वर्णन आगे दिया जाता है यह भी इसी नीति का उदाहरण है।

**(६) सिन्धिया के साथ युद्ध ( सन् १८४३ )**—दौलत राव सिन्धिया सन् १८२७ में मर गया। उसके पीछे कुछ दिनों तक उसकी स्त्री वायजाबाई तथा बाद को उसके दत्तक पुत्र जनकोजी ने शासन किया। जनकोजी की मृत्यु सन् १८४३ में हुई। उसके कोई संतति न थी। अत उसकी स्त्री ने भगीरथराव नाम के एक ९ वर्ष के बालक को गोद लेकर उसका नाम जयाजीराव रक्खा। यह स्त्री छोटी उम्र की थी। इससे राज्य में प्रबन्ध बिगड़ गया। उसका प्रबध करने के लिए गवर्नर जनरल स्वय फौजें लेकर राज्य में घुसा। तब सिंधिया की भी फौज आगे आई। दोनों फौजें एक दूसरे से महाराजपुर में सन् १८४३ में लड़ीं। इस लड़ाई में सिन्धिया की फौजें हार गईं। उसी दिन दूसरी लड़ाई छन्यार में हुई। यहाँ भी सिन्धिया की फौजें हार गईं। सिन्धिया के ५००० सिपाही तथा अंग्रेज़ों की ओर के १००० सिपाही मरे। इसके बाद जयाजीराव और महारानी से गवर्नर जनरल की भेंट हुई। नई सन्धि की गई। अंग्रेज़ों ने लड़ाई का ख़र्च लिया और सिन्धिया की फौज घटाकर केवल ९ हज़ार सिपाही और ३२ तोपें रखना तै हुआ। सिंधिया के राज्य में अंग्रेज़ी कंटिजेंट फौज बढ़ा दी गई। और उसके ख़र्च के लिए कुछ भूभाग ले लिया। महारानी को ३ लाख की पेंशन दी गई। जयाजीराव सिंधिया बाद को बहुत प्रसिद्ध हुआ।

एलेनबरो ने अंग्रेजी फौजों को तनिक भी विश्राम न दिया। विलायत में इस गवर्नर जनरल के कारण राज्य पर अनेक

सकटों के आने की आशंका की जाने लगी। इससे यह वापस बुला लिया गया। इसके शासन-काल मे—(१) गुलामों का व्यापार बंद हुआ। (२) पुलिस विभाग का सुधार हुआ, (३) छूट देना बंद किया गया। गुलामों का व्यापार पाश्चात्य लोग करते थे। मनुष्य प्राणी सभी एक समान हैं। उनका अन्य वस्तुओं जैसा क्रय-विक्रय न होना चाहिए। इसका आन्दोलन इग्लैंड में हुआ और गुलामी प्रथा उठा देने के लिए कानून बना। वही भारत में भी बना। सन् १८४४ के अगस्त मास में एलिनबरो विलायत लौट गया और उसकी जगह पर सर हेनरी हार्डिंज आया।

# ग्यारहवाँ अध्याय

## लार्ड हार्डिंज और डलहौसी

### १८४४-१८५६

१—पहला सिक्ख युद्ध
२—लार्ड डलहौसी
३—दूसरा सिक्ख-युद्ध
४—बरमी युद्ध दूसरा
५—प्रजाहित के काम
६—राज्यो की जब्ती
७—बिदाई और योग्यता

**( १ ) पहला सिक्ख-युद्ध (सन् १८४५ ४६)**—रणजीत सिंह सन् १८३९ में मर गया। इसकी मृत्यु तक का हाल पीछे दिया जा चुका है। चालीस वर्ष तक बराबर मेहनत करके इस पराक्रमी पुरुष ने सिक्ख-राज्य को उन्नत-शील बना दिया था। उसके बाद उसके राज्य का उपयुक्त शासन करने की योग्यता उसके लड़के में न थी। उसके बाद उसके सरदार-मंत्री और रानियाँ पारस्परिक कलह में पड़ गईं। इससे राज्य का प्रवन्ध बिगड़ गया। खालसा अर्थात् "सिक्ख धर्म की पंचायत" की फौज उस समय बड़ी प्रबल थी। काबुल मे ब्रिटिश सेना पर जो अनेक कष्ट पड़े उन्हें देखकर अंग्रेज़ों से लड़ने का सिक्खों का हौसला बहुत बढ़ रहा था। बाद को सिक्खो ने अंग्रेज़ी अमलदारी पर चढ़ाई की। इसी से अंग्रेजों ने उनके साथ युद्ध किया। गवर्नर जनरल और प्रधान सेनापति



लार्ड केनिंग



सर जान लारेंस



लार्ड डलहौसी



मेयो

सर ह्यू गो को यह आशंका न थी कि सिक्ख लोग अचानक अंग्रेजी अमलदारी पर चढ दौड़ेंगे। १८ दिसम्बर सन् १८४५ को मुदकी की लड़ाई इन दोनों पक्षों की सेनाओं में हुई। इस लड़ाई में हार-जीत का निर्णय न हुआ लेकिन सर राबर्ट सेल की मृत्यु हो गई। दो दिन बाद दूसरी लड़ाई फीरोजपुर में हुई। इसमें अंग्रेजों की बड़ी हानि हुई। दूसरे दिन अंग्रेजों ने सिक्खों की छावनी पर कब्जा कर लिया। २८ जनवरी सन् १८४६ को अलीवाल में अंग्रेज़ों ने सिक्ख-छावनी पर हमला कर दिया। यहाँ बड़ी घमासान लड़ाई हुई और सिक्खों की हार हुई और वे सतलज के उस पार अपनी सीमा में भाग गये।

बाद को १० फरवरी को सोब्रौ में एक और बड़ी घमासान लड़ाई हुई। लेकिन उस समय तक सिक्ख फौजों का नाश हो चुका था। पास की नदी नर-रक्त से रङ्ग गई। सिक्खों की तोपें अंग्रेज़ों के हाथ पड़ीं। अंग्रेजों के भी तीन हजार सिपाही मारे गये। शत्रु का पीछा करते हुए अंग्रेज लोग सीधे लाहौर जा पहुँचे। वहाँ रणजीतसिंह के पुत्र दिलीपसिंह, और मंत्री गुलाबसिंह से गवर्नर जनरल की भेंट हुई और सन्धि की गई। इस सन्धि के अनुसार (सन् १८४६)—(१) सतलज के इधर का सब प्रदेश और जालंधर दुआब अंग्रेजों को मिले, (२) लड़ाई का खर्च पूरा करने के लिए लाहोर-दरबार ने डेढ करोड़ रुपये दिये, (३) सिक्खों की फौज घटा कर सिर्फ २० हजार रक्खी गई (४) दिलीपसिंह को पंजाब का राज्य दिया गया और उसकी माँ तथा लालसिंह-द्वारा रेजीडेंट सर हेनरी लारेंस की सलाह से राज्य का काम-काज करने का निश्चय हुआ। मेजर हेनरी

लारेंस लाहोर का रेज़ीडेंट बनाया गया। **परिणाम**—रणजीत सिंह ने काश्मीर का शासन गुलाबसिंह को सौंपा था। उससे कुछ धन लेकर अंग्रेज़ों ने वह राज्य सदा के लिए गुलाबसिंह को ही दे दिया। सन् १८५७ में उसकी मृत्यु होने पर उसका लड़का **रणवीरसिंह** गद्दी पर बैठा। रणवीरसिंह का पुत्र महाराज प्रतापसिंह सन् १९२५ में मरा। उसके बाद उसका भतीजा सर हरिसिंह गद्दी पर बैठा, जिसका राज्य अभी जारी है।

लाहोर की संधि हो जाने पर शीघ्र ही लालसिंह ने गुलाबसिंह पर बागी होने का दोष लगाया और आन्दोलन किया। इस पर उसे पकड़ कर अंग्रेज़ों ने उसकी पेंशन कर दी और उसे बनारस में रहने को भेज दिया। और उसकी जगह मुख्य मुख्य आठ सरदारों की एक कौंसिल बना कर उसके द्वारा राज्य का शासन करने का निश्चय हुआ।

हार्डिञ्ज ने कई विभागों का खर्च कम कर के फौजी विभाग का सुधार किया। रविवार के दिन सब दफ़्तर बन्द करने की आज्ञा उसी ने जारी की। सन् १८४८ के मार्च मास में अपना काम लार्ड डलहौसी को सौंप यह वीर और चतुर सिपाही अपने देश को वापस गया।

(२) **लार्ड डलहौसी**—भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना मुख्यत वारेन हेस्टिंग्स, लार्ड वेलेज्ली, लार्डहेस्टिंग्स और लार्ड डलहौसी ने की है। डलहौसी के पहले ब्रिटिश अमलदारी जगह ब जगह टूटी सी थी। लेकिन उसने एक में एक को जोड़ दिया। इससे उसका शासन बड़े महत्व का है। इस महत्व का कारण एक यह भी है कि उसके चले जाने के बाद

भारत की जनता में बड़ा क्षोभ हुआ और सन् १८५७ का बलवा हुआ, जिसमें असख्य प्राणहानि हुई। इस ग़दर की जड़ लार्ड डलहौसी के शासन में पड़ी। डलहौसी बचपन से ही बड़ा चतुर था और उसकी प्रसिद्धि भी हो चुकी थी। जिस समय वह केवल २५ वर्ष का था, उसका प्रवेश पार्लमेंट में हुआ। तत्कालीन प्रधान मत्री पील उससे बहुत प्रसन्न था। उसने डलहौसी को व्यापार विभाग का प्रधान पदाधिकारी बनाया। बाद को जब रसेल प्रधान मत्री हुआ तब उसने उसे भारत का गवर्नर जनरल बना कर यहाँ भेजा। इस समय वह ३५ वर्ष का था। लेकिन उसका शरीर बहुत कमजोर था, और यहाँ का काम बड़ी मेहनत से करने के बाद जब वह विलायत लौटा तब २-३ वर्ष से अधिक न जिन्दा रह पाया। इसके शासन के तीन विभाग हैं। वे यों हैं—(१) सिक्ख और बरमी युद्ध (२) प्रजा हित के काम, (३) राज्यों की ज़ब्ती।

(३) दूसरा सिक्ख-युद्ध (सन् १८४८ ४९)—कारण—मुलतान प्रान्त पजाब का एक भाग था। वहाँ का सूबेदार सावनमल जब सन् १८४४ में मरा तब उसका लड़का मूलराज सूबेदारी का काम करने लगा। इस काम के लिए जो नजराना लाहोर-दरबार को उसे देना चाहिए था वह उसने नहीं दिया था। मूलराज पराक्रमी था। उसका निजी व्यापार भी बहुत बढ़ा-चढ़ा था, इसलिए वह एक प्रकार से स्वतंत्र राजा ही था। पहला सिक्ख-युद्ध जब बंद हुआ तब लारेंस काम-काज देखने लगा। उसने मूलराज से नजराना माँगा और पिछला हिसाब भी पेश करने के लिए कहा। मूलराज ख़ुद लाहोर गया और उपर्युक्त माँग स्वीकार करने में उसने अपनी मानहानि समझ सूबेदारी [illegible] दे

युद्ध के बाद जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार एक ब्रिटिश रेज़ीडेंट बरमा-दरबार में रहने के लिए गया। लेकिन उसके प्रति बरमा दरबार का प्रेम न था। सन् १८३७ में बरमा में राज्य क्रान्ति हुई और थरवादी नाम का राजा गद्दी पर बैठा। वह साहसी था और अंग्रेज़ों से द्वेष करता था। रेज़ीडेंट कर्नल ब्रेंस वहाँ रहना सुरक्षित न समझ वापस लौट आया। बाद को वहाँ जो कोई व्यक्ति भेजा जाता वह कुछ न कुछ कारण बता कर वापस आ जाता। सन् १८४१ में थरवादी ने रेज़ीडेंट का पद ही निकाल दिया। इस अपमान को अफ़ग़ानिस्तान के झगड़ों में फँसे रहने के कारण अंग्रेज़ों ने कुछ दिन तक सहा। बाद को थरवादी के शासन से बरमा की प्रजा असंतुष्ट हो गई और उसने राज्य क्रान्ति करके ( सन् १८४४ में ) उसे जान से मार डाला। उसके बाद उसका लड़का गद्दी पर बैठा। उसी के शासन काल में शेफर्ड नाम के एक अंग्रेज़ व्यापारी ने किसी बरमी खलासी की हत्या की। यह बात रंगून के अधिकारियों को मालूम होने पर शेफर्ड पर ९९९ रुपया दण्ड किया। वैसे अन्य झगड़े खडे होने पर वहाँ के व्यापारियों ने गवर्नर जनरल के पास न्याय करने के लिए प्रार्थना की। डलहौसी ने रंगून के अधिकारियों से हर्जाना माँगा और शक्ति प्रदर्शन के लिए दो लड़ाई के जहाज़ कमोडोर लाबर्ड के साथ रंगून भेजे। रंगून के अधिकारियों ने ९ हजार रुपये न मिलने पर उसने आवा के राजा के नाम एक पत्र लांबर्ट को दिया था। रंगून के अधिकारियों से लाम्बर्ट की न पटी। बाद को गवर्नर जनरल का पत्र लेकर लाम्बर्ट आवा के राजा से मिला। राजा ने रंगून के अधिकारी बदल दिये और मामले की जाँच की। लेकिन नया अधिकारी भी पुराने अधिकारी

के समान था। उसने अंग्रेज-दूत से भेंट भी न की। तब लाम्बर्ट ने सभी यूरोपीय व्यापारियों को अपने जहाज पर बुला लिया और बरमी राजा का जो जहाज़ खड़ा था उसे उसने पकड़ लिया। उसी समय युद्ध शुरू हुआ। गवर्नर जनरल को यह बात विदित होते ही उसने नई फौज बरमा को भेजी और आवा के राजा के पास निम्न लिखित माँगें लिख भेजीं—(१) रंगून के अधिकारी निकाल दिये जायँ और (२) राजा दस लाख रुपया दंड दे। जवाब देने के लिए ५ सप्ताह का समय दिया गया। गवर्नर जनरल ने जनरल गाडविन को मुख्य सेनापति बनाया। इरावदी-नदी में संधि का पत्र ले जाते समय उस पर बरमी लोगों ने तोपें छोड़ीं।

अप्रेल सन् १८५२ में मार्तावान शहर पर अंग्रेजों ने धावा किया और उस पर अपना अधिकार कर लिया। १२ वीं अप्रेल को रंगून पर अंग्रेजों ने गोलाबारी शुरू की। वहाँ का शिवा किले के समान एक बड़ा मन्दिर है, उसपर हमला करके उन्होंने उसे छीन लिया। १४ वीं को रंगून पर भी उनका अधिकार होगया। बाद को शीघ्र ही बेसिन बंदर के लेने पर पेगू प्रान्त के समुद्र तट पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। उसे गवर्नर जनरल ने ब्रिटिश राज्य में मिला लिया। थोड़े दिनों में अंग्रेजों ने प्रोम शहर भी ले लिया। डलहौसी स्वयं बरमा गया और सन् १८५२ के नवम्बर तक सभी स्थानों पर अधिकार करके सारा दक्षिणी बरमा उसने ब्रिटिश राज्य में मिला लिया और नीचे दिया हुआ पत्र उसने आवा के राजा को लिखा। इस पत्र ने सन्धि इत्यादि का सभी काम समाप्त कर दिया—

"ब्रिटिश लोगों को कष्ट देने के बदले में हर्जाना माँगने पर राजा ने उसे न भरा। इसलिए अपने शस्त्र के बल पर हमने

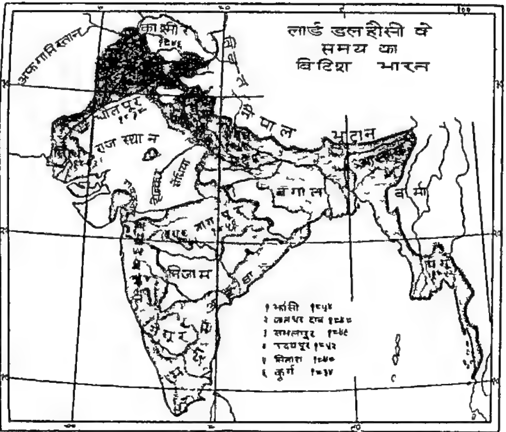
हर्जाने को पूरा किया है। हमने अनेक शहरों और क़िलों पर अधिकार कर लिया है और सभी जगह वरमा की फौजों को हरा दिया है। इस समय सम्पूर्ण पेगू प्रान्त हमारे अधिकार में है। समय पर सावधानी से काम न करने के कारण सभी हर्जाने को भर लेने के लिए यह पेगू प्रान्त हमारे अधिकार में रहेगा। यहाँ सभी वरमी फ़ौजों को निकाल कर हम इस प्रान्त का शासन करेंगे। पेगू-प्रान्त का शासन करेंगे। पेगू-प्रान्त की प्रजा हमारे न्याय-युक्त शासन में निर्भय होकर रहे। जितनी हमारी हानि हुई है वह इतने देश को जीतने से पूरी होगई। अब अधिक देश जीतने की हमारी इच्छा नहीं है। तथापि यदि भविष्य में आवा दरबार हमारे विरुद्ध होगा तो उसका बदला लेने में अंग्रेज़ सरकार आगा-पीछा कभी न करेगी।"

**(२) प्रजा-हित के काम और शासन सुधार**—डलहौसी के शासन-काल में अनेक सुधार हुए और राज्य की उन्नति हुई। उन सुधारों का वर्णन यहाँ किया जाता है—

(१) इस समय तक गवर्नर जनरल की पदवी बंगाल के गवर्नर को मिलती थी और उसे बंगाल-प्रान्त का भी काम करना पड़ता था। डलहौसी ने पार्लमेंट से लिखा-पढ़ी करके बंगाल की गवर्नरी का काम अलग करा दिया और उस प्रान्त पर एक अन्य व्यक्ति को लेफ़्टनेंट गवर्नर का पद मिला। सारे भारत के शासन करने का मुख्य काम इस समय से गवर्नर जनरल के पास जाने लगा। (२) पश्चिमोत्तरी राज्य सीमा को मजबूत बनाया। पहले अंग्रेज़ों की फौजी छावनी कलकत्ते के समीप थी। डलहौसी ने उसे वहाँ से हटा कर मेरठ में जमाया। शिमला भारत सरकार का ग्रीष्मावास बना। इसी प्रकार विलायत से आनेवाली सेनाओं

के जहाज से उतरने की सुविधा बम्बई में की। ( ३ ) उसने भारत में रेल पथ जारी करके व्यापार और फौज के आने-जाने की सुविधा का प्रबन्ध किया। पहला रेल पथ कलकत्ते के पास और बम्बई से थाना तक तैयार हुआ। सन् १८५२ में रेल गाड़ी चल निकली। यह रेल पथ बढते बढते अब १९२५ में ३८ हजार मील लम्बा होकर सारे देश में फैल गया है। पहले केवल नदियों में नावों द्वारा माल ढोया जाता था। वह अब बंद हो गया है और रेल पथ द्वारा व्यापार खूब बढ़ा है। ( ४ ) भारत में तारबर्की का काम भी डलहौसी ने शुरू किया। इससे ख़बरें एक कोने से दूसरे कोने को बडी जल्दी भेजने का प्रबन्ध हुआ। ( ५ ) हिन्दुस्तान से इग्लेंड का व्यापार बढाने का उसने उद्योग किया ( ६ ) बंगाल के पश्चिमोत्तर में संथाल नाम के लोग रहते हैं। ये लगभग तीस हज़ार लोग अपनी शिकायतें पेश करने के लिए कलकत्ते को चले और राह में उन्होंने दंगा किया। गवर्नर जनरल ने सथाल लोगों पर फौज भेज कर उनके झुण्डों का प्रबंध किया। ( ७ ) इस देश के राज्यों में अनेक प्रकार के कठिन और क्रूर दण्ड विधान थे, उन्हें उसने बंद किया। ( ८ ) मार्ग, नहरें इत्यादि प्रजा के उद्योग के काम करने के लिए पब्लिक वर्क्स नाम का विभाग खोला। इस विभाग ने अनेक लाभ के काम किये। ( ९ ) पहले डाक विभाग की व्यवस्था ठीक नहीं थी। इससे लोगों को बड़ा कष्ट होता था। डलहौसी ने डाक महसूल आध आना कर दिया और आध आने में चाहे जहाँ चिट्ठी भेजने की सुविधा हो गई। इससे डाक विभाग का काम बहुत बढ गया (१०) लार्ड बेंटिक के शासन काल में केवल अंग्रेज़ी पढाने के स्कूल खुले थे, लेकिन डलहौसी ने शिक्षा विभाग की अलग स्थापना करके लोगों को शिक्षित बनाने का प्रबन्ध किया। (११) सिविल सर्विस की परीक्षा पहले

मर गया और उसका लड़का ग़ाज़ीउद्दीन राज्य करने लगा। उसकी मृत्यु भी सन् १८२७ में हुई और उसका लड़का नासिरुद्दीन गद्दी पर बैठा। उसकी मृत्यु सन् १८३७ में हुई। इसके बाद उसके चाचा महम्मद अलीशाह को गद्दी मिलने की आशा न होने से उसने नई संधि मंज़ूर करके रेज़ीडेंट की मदद से अवध का राज्य पाया। अहमदअलीशाह ने अपने राज्य का बहुत कुछ सुधार किया। लेकिन उसकी मृत्यु सन् १८४२ में ही हो गई। इसके बाद उसका लड़का अमजदअलीशाह गद्दी पर बैठा। वह सन् १८४७ में मर गया। इसके बाद उसका लड़का वाजिद अलीशाह गद्दी पर बैठा। ये दोनों दुर्वृत्त और दुर्बल थे, अतः इनके समय में राज्य में बड़ा कुप्रबन्ध रहा। डलहौसी ने कर्नल स्लीमन को सारे राज्य में दौरा करके वहाँ का सारा कच्चा हाल लिखने के लिए नियत किया। सन् १८४९.५० में कर्नल स्लीमन ने राज्य भर में दौरा किया। उस समय उसके सामने इतनी शिकायतें हुईं कि उनकी उपेक्षा करना उसको असह्य हो गया। उसने साफ़ साफ़ लिख दिया कि ऐसी अवस्था में अंग्रेज़ सरकार का नाम बदनाम होता है। बाद को कर्नल स्लीमन की तबदीली हुई और उसके स्थान पर जनरल औट्रम रेज़ीडेंट बना। उसने फिर अवध-राज्य के शासन की जाँच की और राज्य को अंग्रेज़ी अमलदारी में मिला लेने की सिफ़ारिश की। इस पर कौंसिल के सदस्यों ने भी अपना मत लिखा। इन सब काग़ज़ों को डलहौसी ने अपना मत लिखकर विलायत भेजा। वहाँ से राज्य को ज़ब्त करने का हुक्म आगया। इस हुक्म से डलहौसी ने फ़ौज भेजकर इस लम्बे-चौड़े राज्य को भी अंग्रेज़ी अमलदारी में ले लिया, और नवाब को सालाना १२ लाख रुपये की पेंशन देकर कलकत्ते में रक्खा।



लार्ड डलहौसी के
समय का
ब्रिटिश भारत
अफगानिस्तान
काश्मीर
राजस्थान
नेपाल
भूटान
बंगाल
बर्मा
निजाम
१ झाँसी
३ सम्बलपुर
४ उदयपुर
५ सितारा
६ कुर्ग

(७) डलहौसी की विदाई और उसकी योग्यता (१८५६)—अवध का निर्णय गवर्नर जनरल का अन्तिम काम था। उसने समझा कि मैंने राज्य को चिरस्थायी और शान्तिमय बना दिया। उसने ८ वर्ष तक अपनी शक्ति के बल पर भारत का शासन कार्य चलाया। राज्य-सरक्षण की मूल पद्धति को उसने तोड़ दिया। एकदम छीना झपटी करके राज्य का विस्तार करना और इस लम्बे-चौड़े देश का शासन करने का योग्य उपाय करना, इन कामों में ही डलहौसी का नाम हुआ। जो नये राज्य उसने जीते उनका शासन पुराने प्रदेशों की व्यवस्था के अनुसार नहीं हो सकता था। उनमें अनेक बातों का तत्काल इलाज करने की आवश्यकता थी। अतएव डलहौसी ने उन्हें "अनियमित क़ानूनी सत्ता के प्रान्त" (नान रेग्यूलेशन प्राविंसेज) बनाया और ऐसे प्रान्तों पर गवर्नर जनरल की खास देख रेख में काम करने के लिए चीफ कमिश्नरों की तैनाती की। ऐसे अनियमित कानूनी सत्ता के प्रान्त देश में स्थान-स्थान में थे। उनके शासन में धीरे धीरे स्थिरता लाकर वे अन्य प्रान्तों मे सम्मिलित किये गये। अपने जाने से पहले भारत की प्रजा की स्थिति को सुधारने का वास्तविक काम डलहौसी ने ही किया। रेलें, पब्लिक-वर्क्स, शिक्षा, मार्ग, डाक इत्यादि में सुधार का बीज इसी के समय में पड़ा। सर चार्ल्स वुड उस समय स्टेट-सेक्रेटरी था। उसने भारत में विद्या प्रचार के सम्बन्ध में लेख भेजा। वह बड़े महत्व का है। उसमें बड़े-बड़े गूढ विचार भरे पड़े हैं। डलहौसी ने स्वय अपने कामों का समर्थन खूब किया। सन् १८५६ के फ़रवरी मास में वह कलकत्ते से चला। उसी समय उसे प्रतीत हो गया था कि अब उसके जीवन के अधिक दिन शेष नहीं हैं। वास्तव में देखा

जाय तो उसका जीवन अल्पकालिक था, इसीलिए उसमें महत्व के कार्य करने की शक्ति अधिक थी। कलकत्ते से विदा होते समय कलकत्ता-निवासियों ने उसे मान-पत्र दिया। इसके उत्तर में उसने कहा कि "मेरे खेल का दृश्य अब समाप्त हुआ। मेरे जीवन के नाटक का अन्तिम दृश्य अब समाप्त हो गया है, इस लिए यदि अब मेरी चरित भूमि पर पर्दा गिरेगा तो मैं बहुत संतुष्ट होऊँगा।" विलायत पहुँचने पर वह बीमार पड़ा और सन् १८६० में मर गया। यहाँ २९—२—१८५६ को लार्ड केनिङ्ग गवर्नर जनरल होकर आया।

डलहौसी के शासन-काल में बंगाल की फ़ौजों की ढिलाई दूर कर सेनापति सर चार्ल्स नेपियर ने नई व्यवस्था की। लेकिन नेपियर और डलहौसी में इस विषय के निर्णय में मत भेद हो गया। इसलिए नेपियर अपने पद से इस्तीफ़ा देकर विलायत लौट गया। यह वीर पुरुष नेपोलियन के समय से अनेक बड़े-बड़े राजकीय युद्धों में प्रसिद्ध हो चुका था।

सन् १८५३ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आज्ञा पत्र की अवधि समाप्त हो गई थी और नया आज्ञा-पत्र देना था। लेकिन उस समय इंग्लैंड और रूस में क्रीमिवन युद्ध जारी था, इससे कम्पनी की व्यवस्था की ओर पार्लमेंट को ध्यान देने का अवसर न मिला और पिछली शर्त्तों पर ही नया आज्ञा पत्र दे दिया गया।

---

# बारहवाँ अध्याय

## सन् सत्तावन का ग़दर

### मई १८५७—नवम्बर १८५८

| | |
|---|---|
| १—लार्ड केनिङ्ग | २—ग़दर के पूर्व-कारण |
| ३—तात्कालिक कारण | ४—ग़दर का हाल |
| ५—राज्य शासन का नया कानून | ६—रानी का प्रतिज्ञापत्र |
| ७—केनिङ्ग की योग्यता | |

(१) लार्ड केनिङ्ग (सन् १८५६-६२)—लार्ड डलहौसी के बाद लार्ड केनिङ्ग गवर्नर जनरल बनाया गया। केनिङ्ग शान्त और गम्भीर स्वभाव का पुरुष था। वह अपने काम में मेहनत भी बहुत करता था। डलहौसी के शासन काल में अनेक नवीन बातें जारी की गई थीं, उनके जारी रखने और उन्नति करने के काम लार्ड केनिङ्ग के सामने थे। इस समय किसी नवीन सुधार की आवश्यकता न थी। अतः इस काम को करने में केनिङ्ग सर्वथा योग्य था। जिस समय वह भारत में आया उस समय भारत में जहाँ तहाँ शान्ति दीख पड़ती थी। लेकिन डलहौसी की प्रखर और उग्र नीति से अनेक घटनाएँ हो गई थीं। लोगों में इनके कारण विचित्र भाव उत्पन्न हो चुका था, तथा और भी ऐसी बातें थीं जिनसे देश में असंतोष बढ़ रहा था। उसका फल यह हुआ कि सन् १८५७-५८ में एक बड़ा भयङ्कर ग़दर हो गया। इस ग़दर में अनेक क्रूरता-पूर्ण काम हुए। इनसे भारत में एक बड़ी राज्यक्रान्ति हो गई।

( २ ) गदर के पूर्व कारण—इस विषय में भिन्न भिन्न विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं। बहुतों का कहना है कि यह ग़दर सिर्फ इस देश की फ़ौजों का किया हुआ था और फौजी व्यवस्था में कुप्रबन्ध होना ही इस ग़दर का मुख्य कारण था। लेकिन उस समय फौज में ही असंतोष नहीं फैला था, बल्कि सामान्य प्रजा भी असंतुष्ट थी। अनेकों का मत है कि यदि सामान्य प्रजा इसमें सम्मिलित न हुई होती तो यह सिपाहियों का ग़दर इतना जोर न पकड़ता, अर्थात् बहुत जल्दी शान्त हो जाता। केवल उन लोगों ने सिपाहियों की अधिक मदद नहीं की, अन्यथा यह ग़दर और भी अधिक दिनों तक चलता।

(१) डलहौसी के शासन में एक राज्य के बाद दूसरे का, तथा दी गई पेंशनों को ज़ब्त होते देख लोगों में अपने परम्परागत अधिकारों के छिन जाने का भय उत्पन्न हो गया था।

(२) रेल, जहाज़, टेलीग्राफ़ इत्यादि जिन नवीन लोकोपयोगी बातों को डलहौसी ने इस देश में जारी किया उन्हें देख कर लोगों के चित्त में यह बात बैठ गई कि हमारी स्वतंत्रता नष्ट करके हमारे बंधन जकड़े जा रहे हैं।

(३) दिल्ली के बादशाह की जो नाम मात्र की सत्ता थी उसके छिन जाने से मुसलमान असंतुष्ट थे।

(४) उस समय अधिकांश अंग्रेज़ी पढ़ाने के स्कूल पादरियों के हाथ में थे। उनमें पाश्चात्य ढंग से शिक्षा दी जाती थी। इससे लोगों को यह भय हुआ कि भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए ये स्कूल खोले गये हैं। इससे सरकार से लोग नाराज़ हुए।

(५) ऐसी स्थिति में बहुतेरे उच्छृङ्खल लोगों ने सरकार की

निन्दा करनी शुरु कर दी। यह भी अफवाह उड़ी कि प्लासी की लड़ाई को जब सौ वर्ष पूरे होंगे तब अंग्रेजों का राज्य नष्ट हो जायगा। इसी प्रकार की और भी अफवाहें उड़ाई गईं। दिल्ली के बादशाही घराने ने तथा नाना साहब पेशवा इत्यादि ने लोगों को सरकार के विरुद्ध भड़का दिया। इसके साथ-साथ कुछ और भी बातें हुईं जिनसे प्रजा भड़क गई।

(६) फौज में लोगों के काम काज, वेतन, नियम इत्यादि की व्यवस्था ठीक न थी। इससे फौजों में भी असन्तोष बढ़ा।

(३) गदर का एक तात्कालिक कारण—सन् १८५३ में नये कारतूसों की बन्दूकें सिपाहियों को दी गईं। इन कारतूसों के सिरे दाँतों से तोड़ने पड़ते थे। कलकत्ता के समीप बारकपुर छावनी में एक ब्राह्मण सिपाही कुएँ पर पानी भरने गया था। उस समय एक चमार वहाँ आया। उन दोनों में पवित्रता के सम्बन्ध में एक झगड़ा हुआ। उस समय चमार ने उस सिपाही से कहा कि "जिस समय गाय और सुअर की चर्बी से चिकने किये गये कारतूस दाँतों से काटते हो उस समय तुम्हारी पवित्रता कहाँ रहती है?" यह बात बाद को सारी पलटन में फैल गई और इस बात पर कानाफूसी शुरू हुई। हिन्दुओं को गाय पूज्य है और मुसलमानों को सुअर हराम है। इसलिए इन कारतूसों से हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सरकार से नाराज हुए। उन्होंने समझा कि ये कारतूस सिर्फ हम लोगों में बाँटने के लिए आये हैं। इसी समय उत्तर भारत में एक गाँव से दूसरे गाँव में एक तरह की चपाती जाने लगी। यह चपाती भेजनेवाला कौन है और इस चपाती को भेजने का मतलब क्या है, आदि बातों का पता कभी ठीक ठीक न चला। बहरामपुर, • और बारकपुर में

वादा किया। इससे इन अंग्रेज़ों ने अपने हथियार रख दिये। ४५८ अंग्रेज इलाहाबाद जाने के लिए नावों पर बैठे। लेकिन बलवाइयों ने गंगा के दोनों किनारों से गोली मारकर इनमें से अनेक लोगों को मार गिराया, केवल चार अंग्रेज़ बचकर भाग गये। इनके अतिरिक्त १२५ अंग्रेज पकड़ लिये गये। बाद को अंग्रेज़ सेनापति हेवलाक इस दंगे को शान्त करता हुआ कानपुर के पास आया। उसके कानपुर आने से पहले ही उनकी हत्याएँ की गईं और एक कुएँ में उनकी लाशें डाल दी गईं। इस मामले में बलवाइयों की निर्दयता और यूरोपीय लोगों के धैर्य व सहनशीलता दिखाने के लिए इस कुएँ पर एक स्मारक बनाया गया है। यह स्मारक "कानपुर का मेमोरियल वेल" कहकर पुकारा जाता है।

( ख ) **लखनऊ का बलवा**—कानपुर में जैसा हृदयद्रावक काड हुआ, वैसी ही हृदय द्रावक घटना लखनऊ में भी हुई। सर कालिन कैम्पबेल फौज लेकर विलायत से आ रहा था। उसे अवध प्रान्त के बलवे को शान्त करने में लगभग १॥ वर्ष लग गया। वहाँ के कमिश्नर सर हेनरी लारेंस ने लखनऊ के बलवे को दबाकर कितने ही दिनों तक अपना बचाव किया। उसे पहले ही इस गदर के होने की सूचना मिल गई थी, इसलिए उसने दीवार आदि बनाकर रसद का पूरा इन्तिजाम करके अपने बचाव का पहले ही से प्रबन्ध कर लिया था। १८५७ की ४ जून को लारेंस मारा गया। २ जुलाई को शहर के सभी अंग्रेज रेज़ीडेंसी में चले गये। वहाँ बलवाइयों ने इन्हें घेर लिया। भीतर के लोगों ने बड़े धैर्य के साथ बलवाइयों से अपनी रक्षा की।

उस समय स्त्री बच्चों ने भी साहस के काम किये। कुछ दिनों बाद जनरल हेवलाक और औट्रम उनकी सहायता के लिए आ गये। लेकिन वे इस घेरे में बंद हो गये। बाद को २६ नवम्बर को सर कालिन कैम्पवेल ने फौजें लाकर उनको छुड़ाया।

(ग) दिल्ली का घेरा—इन बलवाइयों का बड़ा जमाव दिल्ली में ही था। ८ जून से अंग्रेजों ने दिल्ली पर घेरा डालने का काम शुरू किया। अंग्रेजों की फौज लगभग ३७ हज़ार थी। ४ जुलाई को बलवाइयों ने आगरे का क़िला ले लिया। यह खबर मिलते ही दिल्ली के बलवाइयों का उत्साह दूना हो गया। ४ अगस्त को पंजाब के गवर्नर सर जान लारेंस ने जनरल निकल्सन को फौज देकर अंग्रेजी फौजों की मदद के लिए दिल्ली भेजा। १४ सितम्बर को दिल्ली के बलवाइयों पर अंग्रेज़ी फौजों ने हमला किया। छ दिन तक दिल्ली की गलियों में बड़ा घमासान युद्ध होता रहा। इसके बाद निकल्सन ने दिल्ली पर अधिकार किया। लेकिन वह स्वयं मर गया। बूढ़ा बहादुर शाह और उसके लड़के व अन्य कुटुम्बी शहर के समीप हिमायूँ के मक़बरे में जा छिपे। उनको दूसरे दिन अंग्रेजों ने पकड़ा। उनको शहर में लाते समय बलवाइयों ने छुड़ाने का प्रयत्न
हडसन नाम के एक अफसर ने इन शाहज़ादों
मारकर ठंढा कर दिया। अंग्रेजों ने बादशाह को
के लिए भेजा। वहाँ वह सन् १८६२ में मर गया।
भी लगभग डेढ़ वर्ष तक भिन्न भिन्न स्थानों
का युद्ध होता रहा। अवध की
नवाब, नाना साहब इत्यादि को इस
वध और रुहेलखंड के लोगों में भी



जनरल आउटरम



जनरल हेवलाक

लखनऊ की रेजीडेंसी

उस समय स्त्री बच्चों ने भी साहस के काम किये। कुछ दिनों बाद जनरल हेवलाक और औट्रम उनकी सहायता के लिए आ गये। लेकिन वे इस घेरे में बद हो गये। बाद को २६ नवम्बर को सर कालिन कैम्पबेल ने फौजें लाकर उनको छुड़ाया।

(ग) दिल्ली का घेरा—इन बलवाइयों का बड़ा जमाव दिल्ली में ही था। ८ जून से अंग्रेजों ने दिल्ली पर घेरा डालने का काम शुरू किया। अंग्रेज़ों की फौज लगभग ३७ हजार थी। ४ जुलाई को बलवाइयों ने आगरे का किला ले लिया। यह खबर मिलते ही दिल्ली के बलवाइयों का उत्साह दूना हो गया। ४ अगस्त को पजाब के गवर्नर सर जान लारेंस ने जनरल निकल्सन को फौज देकर अंग्रेजी फौजों की मदद के लिए दिल्ली भेजा। १४ सितम्बर को दिल्ली के बलवाइयों पर अंग्रेजी फौजों ने हमला किया। छ दिन तक दिल्ली की गलियों में बड़ा घमासान युद्ध होता रहा। इसके बाद निकल्सन ने दिल्ली पर अधिकार किया। लेकिन वह स्वय मर गया। बूढा बहादुर शाह और उसके लड़के व अन्य कुटुम्बी शहर के समीप हिमायूँ के मक़बरे में जा छिपे। उनको दूसरे दिन अंग्रेजों ने पकड़ा। उनको शहर में लाते समय बलवाइयों ने छुड़ाने का प्रयत्न किया। इससे हडसन नाम के एक अफसर ने इन शाहजादों को गोली मारकर ठंढा कर दिया। अंग्रेजों ने बादशाह को रंगून में रहने के लिए भेजा। वहाँ वह सन् १८६२ में मर गया। दिल्ली शहर ले लेने पर भी लगभग डेढ वर्ष तक भिन्न भिन्न स्थानों में बलवाइयों के साथ अंग्रेजों का युद्ध होता रहा। अवध की बेगम, बरेली व बाँदा के नवाब, नाना साहब इत्यादि को इस गदर में सम्मिलित देख अवध और रुहेलखड के लोगों में भी

विद्रोह भड़क उठा। इन भागों में जो बलवे हुए उसमें केवल राजे नवाब ही नहीं, बल्कि साधारण जन-समूह भी सम्मिलित हुए। नैपाल के प्रधान मंत्री जंगबहादुर ने भी इस ग़दर में अंग्रेज़ों की अच्छी मदद की। अन्त में अंग्रेज़ों ने बलवाइयों के सभी स्थान छीनकर उनका नाश कर दिया।

(घ) मध्य-भारत, झाँसी—ग़दर के युद्धों में अंग्रेज़ सेनापति सर ह्यू रोज ने जो विजय मध्य भारत मे प्राप्त की वह प्रशंसनीय है। उसने जिस भाग में ग़दरवालों का पीछा किया था वह भाग बिलकुल पहाड़ी है। वहाँ के लोगों ने सैकड़ों वर्ष तक मुग़ल-बादशाहों के कड़े शासन में भी अपना सिर कभी नहीं नीचा किया था। इस भाग में झाँसी का युद्ध बड़े महत्त्व का है। झाँसी में दो अंग्रेजी पलटनें और कुछ तोपें थीं। ४ जून सन् १८५७ को सिपाहियों ने खुल्लम खुल्ला बलवा कर दिया और बहुतेरे अंग्रेज अफ्सरों को उन्होंने मार डाला। ७ तारीख को उन्होंने किले पर हमला किया और उसे भी ले लिया और किले के अंदर जो लोग थे उन्हें मार डाला। उन्होंने झाँसी की रानी के महल को भी घेर लिया और उससे एक लाख रुपया लेकर वहाँ से अपना घेरा उठा लिया। बलवाई लोग झाँसी से चलकर नाना साहब से मिले। देश में अराजकता फैल चुकी थी। लगभग ९-१० मास तक अंग्रेज लोगों का कोई उपाय झाँसी पर न चला। सन् १८५८ की २० मार्च को सर ह्यू रोज अपनी सेनाएँ लेकर झाँसी पर चढ़ आया। २३ मार्च को लड़ाई शुरू हुई। ६-७ दिनों तक सिर्फ गोलाबारी होती रही। आठवें दिन बलवाइयों का सरदार तात्या टोपे रानी की मदद के लिए आया। लेकिन रोज ने उसको हरा

कर भगा दिया। इसके बाद अंग्रेज़ों ने झाँसी पर हमला किया। इस हमले में रानी की हार हुई और वह वहाँ से निकल भागी। बाद को तात्याटोपे, रानी, बाँदा का नवाब और नाना साहब का भतीजा राव रावसाहब इत्यादि ने मिल कर ग्वालियर पर हमला किया। इसमें जयाजीराव सिंधिया की हार हुई और वह आगरे को भाग गया ( १ जून सन् १८५८ )। इसके बाद ग्वालियर पर बलवाइयों का अधिकार हुआ। १६ जून को रोज ने ग्वालियर पर हमला किया। इसमें रानी लक्ष्मीबाई के गोली लगी और वह मर गई। सन् १८५९ के अप्रेल मास में तात्या टोपे को अंग्रेजों ने पकड़ लिया। इस तरह इस भाग में बलवे का अन्त हुआ। पंजाब प्रान्त का प्रबन्ध सर जान लरेंस ने बड़ी शान्ति के साथ सिक्ख लोगों की सहायता से किया। सिक्खों ने भी अपने पहले अपमान को भूलकर अंग्रेजों का साथ दिया। इसी से दिल्ली पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो सका। इसी प्रकार बम्बई और मद्रास की फौजों ने भी बड़ी वफादारी दिखाई। अन्य राजे-रजवाड़ों ने तथा निजाम ने भी इस बलवे को शान्त करने में अंग्रेजों की पूरी-पूरी सहायता की। जनरल हेवलाक सर कालिन कैम्पबेल, और सर ह्यू रोज इस बलवे को शान्त करनेवालों में अगुआ थे। सन् १८५८ के अन्त में सर्व जगह शान्ति हो गई थी।

(५) भारत के शासन का नया कानून ( सन् १८-५८ )—भारत के इस भयंकर गदर के कारण इंग्लैंड के लोगों का ध्यान इधर फिरा। गदर रोकने के लिए फौज तो तुरत भेज ही दी गई, लेकिन लोगों को शान्त रखने के लिए भी बहुत से

उपाय किये गये। भारत के शासन के मामले को लेकर पार्लमेंट में उस समय बड़ी बड़ी बहसें हुईं। उसमें दो बातें मुख्य रूप से स्थिर की गईं। पहले तो भारत का शासन-कानून बना। इसमें ८४ नियम हैं। इस कानून के अनुसार (१) भारत के शासन प्रबन्ध का काम महारानी विक्टोरिया के हाथ में आ गया। (२) ईस्ट इंडिया कम्पनी टूट गई। (३) बोर्ड आव कंट्रोल तोड़कर उसके स्थान में सेक्रेटरी आव स्टेट फार इंडिया अर्थात् भारत मंत्री की तैनाती हुई और उसकी सहायता के लिए १५ सभ्यों की एक कौंसिल बनी। भारत मंत्री को विलायत की मंत्रि-सभा में स्थान मिला। (४) गवर्नर जनरल को ही वायसराय अर्थात् राजा का प्रतिनिधि की उपाधि मिली। इसके अतिरिक्त शासन सम्बन्धी अनेक बातों के नियम इस क़ानून में रक्खे गये।

(६) महारानी का प्रतिज्ञा-पत्र ( नवम्बर सन् १८५८ )—दूसरी बात जो उस समय हुई वह यह थी कि भारत के राजे रजवाड़ों तथा सभी प्रजा के पास महारानी ने अपना संदेश भेजा। यही संदेश आगे की राज्य-शासन-पद्धति का आधार बना। इसमें प्रजा के हकों का स्पष्ट वर्णन है। तत्कालीन प्रधान मंत्री लार्ड डर्बी ने इस सदेश को स्वयं लिखा था, अत अंग्रेजी भाषा का यह एक उत्कृष्ट नमूना भी है। एक तरह से भारतीय लोगों के हकों का महारानी द्वारा दिया गया प्रमाण पत्र भी यही है। इस सदेश में निम्न लिखित बातें मुख्य हैं—

(१) भारत के राजे-रजवाड़ों के साथ कम्पनी की जो संधियाँ हुई हैं उनका पालन अक्षरश किया जायगा।

(२) सभी को दत्तक या लड़का गोद लेने का अधिकार है।

उनको दी गई पेशनें या जागीरें या उनके राज्य कभी न छीने जायँगे।

(३) राजे रजवाड़ो की जैसी मान मर्यादा है वह वैसी ही सुरक्षित रक्खी जायगी।

(४) प्रजा के धार्मिक कामों, और आचार विचारों के मामलों में सरकार कभी हाथ न डालेगी।

(५) सरकारी नौकरियाँ जाति और धर्म का भेद भाव न रख सब को उनकी योग्यता के अनुसार मिलेंगी।

(६) जिन बलवाइयों ने कोई प्रत्यक्ष हत्या नहीं की और जो अब से आगे शांति के साथ रहना चाहेंगे, उनके अपराध माफ किये जायँगे।

इनमें पहली तीन बातें राजे-रजवाड़ों से सम्बन्ध रखती हैं, अन्य दो बातें जन साधारण से और अन्तिम बात बलवे में शामिल होने वालों से सम्बन्ध रखती है। १ नवम्बर सन् १८५८ को इलाहाबाद में एक बड़ा दरबार किया गया। इसमें लार्ड केनिङ्ग ने महारानी का यह संदेश पढ़ सुनाया। इसी प्रकार सभी भाषाओं में भाषान्तर करके देश के भिन्न भिन्न स्थानों में इसका प्रचार किया गया। इससे सन् सत्तावन का ग़दर एकदम शान्त हो गया। सन् १७७३ में जो रेग्यूलेटिङ्ग एक्ट बना था वह इस देश के अंग्रेजी शासन का आधार था। बाद को जो पद्धति पिट् के बिल से चलाई गई वह सन् १८५८ तक बराबर चली। सन् १८५८ में यह नया शासन कानून बनाया गया। इसके अनुसार सन् १९१८ तक भारत का शासन चला।

(७) केनिङ्ग की योग्यता—केनिङ्ग को इस बलवे के समय बड़ा कष्ट सहना पड़ा। उसका स्वभाव शांत था। इससे उसकी

तेजस्विता बाहर नहीं प्रकट हो पाती थी। लेकिन उसके निश्चय, सादा व्यवहार, अनुपम धैर्य और उसकी सर्वोपरि दयालुता के कारण सन् सत्तावन के ग़दर का अंत इतना शीघ्र हो गया। यदि अन्य कोई व्यक्ति किसी अन्य स्वभाववाला होता, तो इस ग़दर का अन्त इतनी जल्दी न हो पाता। बहुतेरे यूरोपीयों की यह इच्छा थी कि बलवाइयों से बदला लिया जाय। लेकिन केनिङ्ग ने इसको दबा दिया और अपने दृढ निश्चय और न्याय के साथ काम किया। इसीसे लोग उसे "दयालु केनिङ्ग" कहकर पुकारने लगे। इस गदर को शान्त करने में सरकार पर ४० करोड़ रुपये का क़र्ज़ हो गया। देश में शान्ति फैलाने, ग़दर के कारण उत्पन्न हुए अनेक विषयों का निर्णय करने, और जगह जगह जाकर दरबार करके लोगों को दिलासा देने का काम बाद को केनिङ्ग ने किया। सरकारी काम चलाने के लिए उसने सिविल-सर्विस तथा हाई कोर्ट की योजना की। भारत की फौज का प्रबन्ध उसने फिर से बिलकुल नया किया। उसने उसके तीन विभाग करके तीनों अहातों में तैनाती की। कुल फौज़ दो लाख ५ हज़ार रक्खी गयी। इसमें सत्तर हज़ार यूरोपीय, बाकी देशी सिपाही थे। तोपख़ानों का अधिकांश प्रबन्ध यूरोपीयों के हाथ में रक्खा। डलहौसी के लोकोपयोगी कामों की भी उसने ख़ूब तरक्की की। सन् १८६० में कानून बनाकर प्रजा से सब हथियार छीन लिये गये। इससे लोग कमजोर हो गये और शान्ति बनाये रखने का काम सरल हो गया। ये सब काम कर सन् १८६२ के मार्च मास में लार्ड केनिङ्ग विलायत लौट गया और उसी साल जून में वह मर गया। वह भारत का पहला वायसराय था।

---

# तेरहवाँ अध्याय

## महारानी विक्टोरिया

### सन् १८५८—१९०१

१—महारानी विक्टोरिया
२—पहले पाँच वायसराय
३—दूसरा अफ़ग़ान युद्ध
४—बाद के चार वायसराय

## ( १ ) महारानी विक्टोरिया

भारत के इतिहास में महारानी विक्टोरिया का शासन चिरस्मरणीय है। इसके शासन-काल में भारत ने अनेक विषयों में बड़ी उन्नति की और प्रजा का ज्ञान और सुख बढ़ा। पत्नी, माता, स्त्री और शासन कर्त्री सब दृष्टियों से उसके व्यवहार भारतीयों के लिए आदर्श बने और इस लोकोत्तर योग्यता के कारण ही ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार अधिक हुआ। महारानी विक्टोरिया अपनी भारतीय प्रजा की बातें बड़े ध्यान से सुनती थी। इस भाग्यशालिनी महारानी की मृत्यु सन् १९०१ में हुई। उस समय भारत की प्रजा को अपनी प्रत्यक्ष माता के चल बसने का बड़ा दुःख हुआ।

सन् १८५८ के सन्देश के अनुसार भारत का शासन महारानी विक्टोरिया के हाथ में आ गया। सन् १८७६ में पार्लमेंट ने महारानी विक्टोरिया को इसकी विशेषता के प्रदर्शन करने की

यथेच्छ उपाधि धारण करने की स्वीकृति दे दी। इस स्वीकृति के अनुसार महारानी विक्टोरिया ने २८ अप्रेल सन् १८७६ को एक विज्ञप्ति निकालकर "भारत की साम्राज्ञी" (इम्प्रेस आव इंडिया) की उपाधि धारण की। इस उपाधि-धारण का उत्सव मनाने के लिए और परम्परा से चली आनेवाली, भारत के लोगों में, भारत की बादशाही की भावना बनाये रखने के लिए १ जनवरी सन् १८७७ को दिल्ली में बड़े ठाट से दरबार का उत्सव हुआ।

महारानी के शासन काल में १० राज प्रतिनिधि तैनात होकर भारत आये। इन सभी ने महारानी के इच्छानुसार भारत की प्रजा से परामर्श लेकर शासन किया। इन सभी ने भारत की उन्नति की। यह अर्ध शताब्दी का शासन-काल शान्ति के साथ बीता। यहाँ केवल राज प्रतिनिधियों के नाम, उनका शासन-काल तथा उनके शासन की कुछ खास बातें दी जाती हैं।

## (२) पहले पाँच वायसराय

१–लार्ड एल्गिन (सन् १८६२-६३)—यह वायसराय यहाँ आकर शीघ्र ही मर गया। इसके बाद प्रचलित नियम को तोड़कर सिविल-सर्विस के अधिकारियों में से लारेंस की तैनाती उसकी जगह पर की गई।

२–लार्ड लारेंस (सन् १८६४-६९)—भूटान से युद्ध—उत्तर भारत में अकाल पड़ गया। अकाल को दूर करने के लिए यह निश्चय किया गया कि जब अकाल पड़े तब लोगों का बचाव सरकार करे। ऐसा करना सरकार का मुख्य कर्त्तव्य है। इस विषय की उपेक्षा करने से काम न चलेगा। अकाल-पीड़ित लोगों द्वारा तालाब आदि तरह तरह के लोकोपयोगी



महाराणी विक्टोरिया



सप्तम एडवर्ड



पंचम जार्ज

काम बनवाये जायँ और इस प्रकार इन कामों में धन खर्च कर उनकी सहायता की जाय। इन दोनों सिद्धान्तों का पालन अब तक बराबर किया जाता है। अकाल पीड़ितों को समय पर सहायता न देने के कारण लार्ड लारेंस पर आक्षेप किये गये।

( ३ ) लार्ड मेयो ( सन् १८६९ )—यह चतुर और परोपकारी वायसराय था। इसने भिन्न भिन्न विभागों का सुधार किया। खेती में सुधार करने के लिए इसने एक नया विभाग खोला। इसने देश में सड़कें, रेलें, नहरें इत्यादि बनवाईं तथा अन्य अनेक सार्वजनिक हित के काम किये। यह सन् १८७२ में अंदमान टापू के दौरे पर गया था। वहाँ एक कैदी ने इसकी हत्या कर डाली।

( ४ ) लार्ड नार्थब्रुक ( सन् १८७२-७६ )—इसके समय में बंगाल प्रान्त में अकाल पड़ा। लेकिन इसने ऐसा अच्छा प्रबंध किया कि अकाल पीड़ितों को कष्ट न हुआ। सन् १८७५ में युवराज एडवर्ड भारत में आये। उस समय देश में सर्वत्र आनन्द मनाया गया। सन् १८७५ में ब्रिटिश सरकार ने मल्हार राव गायकवाड को गद्दी से उतार दिया और वर्तमान महाराज सयाजीराव को गद्दी पर बैठाया।

( ५ ) लार्ड लिटन ( सन् १८७६-८० )—यह बड़ा विद्वान् था। इसने सन् १८७७ में एक बड़ा दरबार दिल्ली में किया। दक्षिण में भयंकर अकाल पड़ा। सरकार ने प्रजा को इससे बचाने का बहुत उपाय किया, फिर भी ५० लाख मनुष्य अकाल से मरे।

## ( ३ ) दूसरा अफ़ग़ान-युद्ध

विलायती राजनीति की दलबंदी के मतभेद का

**परिणाम** ( सन् १८७८-८० )—अधिकांश में यह युद्ध पहले युद्ध की ही पुनरावृत्ति थी। पुरातन काल से अर्थात् चंद्रगुप्त, अशोक इत्यादि सम्राटों के समय से लगाकर अकबर, औरंगज़ेब तक अफ़ग़ानिस्तान भारत के अन्तर्गत ही गिना जाता था। इसलिए सिंधु नदी के उस पार सीमा बनाने के साथ-साथ अफ़ग़ान प्रदेश पर अपना प्रभाव रखने की इच्छा ब्रिटिश सरकार को हुई और रूस की बढ़ती हुई सत्ता के बहाने से उन्हें अपनी इस इच्छा के पूरी करने का मौक़ा मिल गया। मध्य एशिया में ख़ीवा, बुख़ारा, इत्यादि राज्यों के ख़ानों को रूस ने अपने अधीन कर लिया था। यह देखकर रूस से अपने भारतीय साम्राज्य की हानि होने का भय इंग्लैंड के तत्कालीन राजनीतिज्ञों को हुआ। पहले पामर्स्टन की भाँति इस समय लार्ड बीकन्स फील्ड इस चढ़ाई की नीति का बड़ा पोषक प्रधानमंत्री था। भारत की परराष्ट्रीय नीति दो विरुद्ध मार्गों में बारी-बारी से चलने लगी। बीकन्सफील्ड का प्रतिपक्षी ग्लेडिस्टन अफ़ग़ानिस्तान की चढ़ाई के विरुद्ध था। इस तरह इन दोनों में से जब जो प्रधान बनता तब वह अपनी नीति को चरितार्थ करने के लिए अनुकूल गवर्नर-जनरल भारत में तैनात करता और उसी नीति के अनुसार पश्चिमोत्तरी सीमा का मामला रूपान्तरित हो जाता। विलायत के विभिन्न पक्षों के परस्पर मतभेद से भारत को अलग रखने की नीति हाल में ही काम में लाई गई है, लेकिन पहले ऐसी कोई नीति स्थिर न होने के कारण बड़ा गड़बड़ हो जाता था।

सन् १८४२ में दोस्त मोहम्मद क़ाबुल की गद्दी पर बैठा। वह सन् १८६३ में मर गया। इसके बाद ५ वर्ष तक वहाँ

अराजकता रही। उसके बड़े लड़के अफजल ख़ाँ को क़ैद करके दोस्त महम्मद का दूसरा लड़का शेरअली सन् १८६८ में गद्दी पर बैठा। उस समय लार्ड लारेंस गवर्नर-जनरल था। उसने यह नीति स्थिर की कि अफ़ग़ानिस्तान के मामले से अपना कोई सम्बन्ध न रक्खा जाय। बाद को लार्ड मेयो गवर्नर-जनरल होकर आया। उसने शेरअली को बुलाकर सन् १८६९ के मार्च मास में अम्बाला में दरबार किया और उसका बड़ा सम्मान किया। उसे धन व बारूद-गोले की सहायता करने का वादा किया। उधर विलायत की सरकार ने रूस से बातचीत कर अफगानिस्तान की सीमा आमू दरिया निश्चित कर दी। बाद को ग्लेडस्टन विलायत में प्रधानमन्त्री बना। उसने लार्ड नार्थब्रुक को भारत का गवर्नर-जनरल बनाया। उसने अफगानिस्तान के झगड़े से दूर रहने की नीति फिर स्वीकार की। इससे शेरअली ने अंग्रेजों से मित्रता तोड़ दी और रूस से मेल किया। इतने ही में ग्लेडस्टन को प्रधानमन्त्री का पद छोड़ना पड़ा और लार्ड बीकन्स फील्ड फिर ब्रिटेन का प्रधान-मन्त्री बना। इसने रूस से युद्ध करना निश्चित किया और इस उद्देश को सफल करने के लिए इसने अपने भरोसे के आदमी लार्ड लिटन को गवर्नर-जनरल बनाकर भारत भेजा। लिटन ने शेरअली से कहा कि "या तो तुम हमसे मेल करो, या बैर करो। दो में से एक पक्ष ले लो।" इसके बाद उसने अफ़ग़ानिस्तान के तीन भाग—क्वेटा, कंदहार और क़ाबुल—करने का निश्चय कर खिलात के खान को अपनी ओर मिलाकर क्वेटा और चमन

परिणाम ( सन् १८७८-८० )—अधिकांश में यह युद्ध पहले युद्ध की ही पुनरावृत्ति थी। पुरातन काल से अर्थात् चंद्रगुप्त, अशोक इत्यादि सम्राटों के समय से लगाकर अकबर, औरंगज़ेब तक अफ़ग़ानिस्तान भारत के अन्तर्गत ही गिना जाता था। इसलिए सिंधु नदी के उस पार सीमा बनाने के साथ-साथ अफ़ग़ान प्रदेश पर अपना प्रभाव रखने की इच्छा ब्रिटिश सरकार को हुई और रूस की बढ़ती हुई सत्ता के बहाने से उन्हें अपनी इस इच्छा के पूरी करने का मौक़ा मिल गया। मध्य एशिया में ख़ीवा, बुख़ारा इत्यादि राज्यों के ख़ानों को रूस ने अपने अधीन कर लिया था। यह देखकर रूस से अपने भारतीय साम्राज्य की हानि होने का भय इंग्लैंड के तत्कालीन राजनीतिज्ञों को हुआ। पहले पामर्स्टन की भाँति इस समय लार्ड बीकन्स फील्ड इस चढ़ाई की नीति का बड़ा पोषक प्रधानमंत्री था। भारत की परराष्ट्रीय नीति दो विरुद्ध मार्गों में बारी-बारी से चलने लगी। बीकन्सफील्ड का प्रतिपक्षी ग्लेडिस्टन अफ़ग़ानिस्तान की चढ़ाई के विरुद्ध था। इस तरह इन दोनों में से जब जो प्रधान बनता तब वह अपनी नीति को चरितार्थ करने के लिए अनुकूल गवर्नर-जनरल भारत में तैनात करता और उसी नीति के अनुसार पश्चिमोत्तरी सीमा का मामला रूपान्तरित हो जाता। विलायत के विभिन्न पक्षों के परस्पर मतभेद से भारत को अलग रखने की नीति हाल में ही काम में लाई गई है, लेकिन पहले ऐसी कोई नीति स्थिर न होने के कारण बड़ा गड़बड़ हो जाता था।

सन् १८४२ में दोस्त मोहम्मद क़ाबुल की गद्दी पर बैठा। वह सन् १८६३ में मर गया। इसके बाद ५ वर्ष तक वहाँ

अराजकता रही। उसके बड़े लड़के अफजल खाँ को क़ैद करके दोस्त महम्मद का दूसरा लड़का शेरअली सन् १८६८ में गद्दी पर बैठा। उस समय लार्ड लारेंस गवर्नर-जनरल था। उसने यह नीति स्थिर की कि अफ़ग़ानिस्तान के मामले से अपना कोई सम्बन्ध न रक्खा जाय। बाद को लार्ड मेयो गवर्नर-जनरल होकर आया। उसने शेरअली को बुलाकर सन् १८६९ के मार्च मास में अम्बाला में दरबार किया और उसका बड़ा सम्मान किया। उसे धन व बारूद-गोले की सहायता करने का वादा किया। उधर विलायत की सरकार ने रूस से बातचीत कर अफगानिस्तान की सीमा आमू दरिया निश्चित कर दी। बाद को ग्लेडस्टन विलायत में प्रधानमन्त्री बना। उसने लार्ड नार्थब्रुक को भारत का गवर्नर-जनरल बनाया। उसने अफगानिस्तान के झगड़े से दूर रहने की नीति फिर स्वीकार की। इससे शेरअली ने अंग्रेजों से मित्रता तोड़ दी और रूस से मेल किया। इतने ही में ग्लेडस्टन को प्रधानमंत्री का पद छोड़ना पड़ा और लार्ड बीकन्स फील्ड फिर ब्रिटेन का प्रधान मन्त्री बना। इसने रूस से युद्ध करना निश्चित किया और इस उद्देश को सफल करने के लिए इसने अपने भरोसे के आदमी लार्ड लिटन को गवर्नर-जनरल बनाकर भारत भेजा। लिटन ने शेरअली से कहा कि "या तो तुम हमसे मेल करो, या वैर करो। दो में से एक पक्ष ले लो।" इसके बाद उसने अफगानिस्तान के तीन भाग—क्वेटा, कन्दहार और काबुल—करने का निश्चय कर खिलात के खान को अपनी ओर मिलाकर क्वेटा और चमन

तक का प्रदेश जीत लिया। इससे बोलन दर्रा अंग्रेजों के हाथ में आ गया और फ़ाबुल के अमीर का दक्षिणी द्वार बंद हो गया। यह चढ़ाई देखकर शेरअली ने अंग्रेज़ों की मित्रता बिलकुल तोड़ दी और रूस के राजदूत को अपने यहाँ बुला लिया। अंग्रेज राजदूत क़ाबुल जाने से रोक दिया गया। यह संकेत पाकर लार्ड लिटन ने २१—११—१८७८ को अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। ख़ैबर, खुर्रम, और बोलन दर्रों से होकर अंग्रेज़ी फौजों ने अफ़ग़ानिस्तान पर आक्रमण किया। इसी समय शेरअली रूसी सीमा की ओर भाग गया। लेकिन रूसियों की मदद मिलने से वह वापस न आ सका और सन् १८७९ के फरवरी मास में उसकी मृत्यु भी अफ़ग़ानिस्तान से बाहर ही होगई। उसकी मृत्यु होने पर उसके लड़के याकूबअली को अमीर बनाकर गवर्नर जनरल ने गन्धमुख ( Gandmuk ) में उससे २६—५—१८७९ को संधि की। इस संधि द्वारा यह निश्चित हुआ कि अमीर अंग्रेज़ों को छोड़ किसी अन्य राष्ट्र से अपना परराष्ट्रीय सम्बन्ध न रक्खे। अफ़ग़ानिस्तान के तीनों प्रवेश द्वार भारत-सरकार के अधिकार में रहें और अंग्रेज़ी राजदूत को अमीर अपने दरबार में स्थायी स्थान दे। इस संधि से अफ़ग़ानिस्तान की स्वतंत्रता नष्ट हो गई। इसी कारण वहाँ की प्रजा को यह संधि नहीं पसंद हुई। उसने बलवा किया और ३—९—१८७९ को ब्रिटिश राजदूत सर लुई केविग्नेरी तथा उसके सब साथियों को मार डाला। लार्ड लिटन ने तत्काल ब्रिटिश फौजें भेजकर कंधार इत्यादि स्थानों पर अधिकार करके याकूबअली को पकड़ लिया। लेकिन उसका भाई अयूबख़ाँ हीरात में था। उसने

अपने भाई के पकड़े जाने का हाल सुन विद्रोह खड़ा किया और एक बड़ी फौज इकट्ठी की और मैवड स्थान में २७—७—१८८० को जनरल वेगोज़ की सेनाएँ नष्ट कर दीं। इस लड़ाई से भागे हुए कुछ सिपाही कधार को भाग गये। यह ख़बर पाते ही क़ाबुल से १८ हजार सेना लेकर जनरल राबर्ट्स ने ३१८ मील का कठिन पहाडी मार्ग २३ दिन में पूराकर कदहार को अपने आधीन में कर लिया और जो ब्रिटिश लोग वहाँ घिर गये थे उनका छुटकारा किया। इस पराक्रम की प्रशसा में जनरल राबर्ट्स को "लार्ड आव कधार" की उपाधि दी गई।

इसी बीच में सन् १८८० की गरमियों में बीकन्सफील्ड को अपना पद त्याग करना पड़ा और उसके स्थान पर ग्लेडस्टन प्रधानमत्री बना। उसने अपनी नीति को चरितार्थ करने के लिए लार्ड रिपन को भारत का गवर्नर-जनरल बनाकर यहाँ भेजा। तब लार्ड लिटन ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। अफगानिस्तान में इसी समय शेरअली का भतीजा अब्दुर्रहमान अमीर बना। उसके साथ लार्ड रिपन ने मित्रता की। और अफगानिस्तान से ब्रिटिश फौजें वापस बुला लीं। कंधार प्रान्त अमीर को वापस देकर लार्ड लिटन की नीति के अनुसार जो तीन विभाग अफ़गानिस्तान के किये जानेवाले थे। उनको उसने सदा के लिए रद्द कर दिया। अमीर अब्दुर्रहमान ने बड़ी योग्यता के साथ अंग्रेजों से मित्रता निबाही। उसकी मृत्यु सन् १९०१ में हुई। उसका लड़का हबीबुल्ला गद्दी पर बैठा। उसने भी अंग्रेज़ों से मित्रता का बर्ताव किया और महायुद्ध के अनेक झगडे खडे होने पर भी अंग्रेजों के शत्रुओं को अपने यहाँ

स्थान नहीं दिया। इसके बाद अन्त में २०—२—१९१९ को हबीबुल्ला की हत्या की गई और उसका लड़का अमानुल्ला गद्दी पर बैठा। उसके साथ उसी समय अंग्रेज़ों का एक छोटा सा युद्ध हुआ। लेकिन शीघ्र ही यह युद्ध बंद हो गया और अफ़ग़ानिस्तान के प्रश्न का रूप पहले की अपेक्षा बिलकुल ही बदल गया। यूरोपीय युद्ध ने पृथिवी की राजनीति को एक दम बदल दिया। रूस में राज्य-क्रान्ति हो गई और वहाँ सोवियट प्रजातंत्र की स्थापना हो जाने से पहले की रूसी-शक्ति का भय भारत की साम्राज्य-सीमा पर नहीं रह गया। दूसरी ओर तुर्की का ख़लीफा भी पदच्युत किया गया, जिससे मुस्लिम राष्ट्रों में एक नये परिवर्त्तन की लहर आ गई।

## (४) आगे के चार वायसराय

(१) लार्ड-रिपन (सन् १८८० ८४)—यह वायसराय सन् १८८० में भारत आया। सन् १८८१ में अफ़ग़ानिस्तान का युद्ध बंद हो जाने पर शान्ति स्थापित हुई और भारत में अनेक सुधार करने का अवसर लार्ड रिपन के हाथ लगा। लार्ड लिटन ने देश के समाचार-पत्रों पर पुन नियत्रण जारी करके राजनैतिक विषयों पर प्रकाश डालने का निषेध कर दिया था। इसे रिपन ने रद्द किया। गरीबों में शिक्षा का प्रचार करने के लिए उसने एक जाँच-कमीशन तैनात किया और उसकी सिफ़ारिशों के अनुसार "प्रायवेट" स्कूल खोले जाने के काम में प्रोत्साहन देने के लिए "शिक्षा विभाग" में अनुकूल फेर-फार कर दिया। पहले यूरोपियन अपराधियो का मुकदमा केवल यूरोपीय जज की इजलास में चलाने का नियम था। किन्तु रिपन ने इस नियम को भी रद्द किया और भारतीय

जजों की अपेक्षा उच्च श्रेणी के अधिकारियों को अधिक अधिकार देने का प्रस्ताव किया, किन्तु यह मजूर न हो सका। इसे इल्बर्ट विल कहते हैं। इस विल के कारण अंग्रेज़ लोग उससे बहुत नाराज हुए। रिपन ने स्थानीय स्वराज्य की व्यवस्था स्वीकृत कर म्युनिसिपेलिटियाँ खोलने का नियम चलाया। बड़े-बड़े शहरों में म्युनिसिपेलिटियाँ खुलीं। उनके प्रबन्ध का काम भारतीय लोगों के हाथ में दिया। इस तरह भारतीय लोगों को अपना कार-बार देखने की योजना उसने की। इससे भारतीय प्रजा उससे बड़ी सन्तुष्ट हुई और उस पर अपना विशेष स्नेह प्रकट किया।

(२) लार्ड डफरिन (सन् १८८४—८८) यह बड़ा विद्वान् था और राजनीतिज्ञों की ऊँची श्रेणी में गिना जाता था। इसके शासन काल में उत्तर बरमा के राजा थीबा ने अंग्रेजों के प्रति अपना द्वेष व्यक्त किया। इससे इसने उसके देश को जीत लिया और उसको पदच्युत कर रत्नागिरि में रहने का स्थान दिया। थीबा १६—१२—१९१६ को वहीं मर गया। ब्रिटिश सरकार ने सन् सत्तावन के गदर में ग्वालियर का क़िला वहाँ के राजा से ले लिया था। वह किला १ जनवरी १८८६ के दिन सिंधिया को वापस दे दिया गया। सन् १८८७ में महारानी विक्टोरिया की ५० वीं वर्षगाँठ का स्वर्ण-उत्सव सारे भारत में मनाया गया। सन् १८८८ में लार्ड डफरिन के वापस जाने पर लेडी डफरिन के नाम से भारतीय स्त्रियों के लिए दवाख़ाने खोलने का एक फंड खोला गया।

(३) लार्ड लैन्स डाउन—(सन् १८८९-९४)—सन्

१८८५ से भारतीय लोगों की एक नेशनल कांग्रेस खोली गई। इसका हाल आगे दिया जायगा।

( ४ ) लार्ड एल्गिन ( सन् १८९४-९८ )—यह पहले के लार्ड एल्गिन का लड़का था। इसके शासन-काल में पश्चिमोत्तरी सीमा पर अफरीदी लोगों के साथ अंग्रेज़ों का युद्ध हुआ। सन् १८९५ में भारत में भयंकर प्लेग फैला। सन् १८९५ में चित्राल प्रान्त अंग्रेजी अमलदारी में आ गया। सन् १८९७ में महारानी विक्टोरिया के शासन के ६० वें वर्ष का अंत होने पर उसकी रत्न जुबिली का महोत्सव सारे भारत में मनाया गया।

---

# चौदहवाँ अध्याय

## बादशाह सातवें एडवर्ड और पंचम जार्ज

### सन् १९०१-१९१९

| | |
|---|---|
| १—सातवे एडवर्ड (१९०१-१०) | २—लार्ड कर्जन |
| ३—लार्ड मिण्टो | ४—पंचम जार्ज |
| ५—लार्ड हार्डिंज | ६—यूरोप का महायुद्ध |

(१) सातवे एडवर्ड—सन् १९०१ में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हुई। अत इंग्लैंड की राजगद्दी पर उनके बड़े लड़के सातवें एडवर्ड बैठे। उन्होंने भारत के सम्राट् की पदवी भी धारण की। इसका उत्सव मनाने के लिए सन् १९०३ की पहली जनवरी को दिल्ली में दरबार किया गया। इसमें उनका भेजा हुआ "स्नेह-सन्देश" पढ़ा गया। इस संदेश में बादशाह ने लोकहित की बातों से अपनी सहानुभूति दिखाई। सन् १९०८ की दूसरी नवम्बर को महारानी के सन् सत्तावन के सदेश को दिये हुए ५० वर्ष या आधी शताब्दी बीत चुकी थी। अत उस अवसर को पुन: स्मरण करने के लिए जो उत्सव यहाँ मनाया गया उसमें बादशाह ने अपना सहानुभूति प्रदर्शक सदेश भेजा था। इसमें उन्होंने अपने शासन की उदार नीति को स्पष्ट किया था। इस बादशाह के शासन-काल में दो वायसराय भारत में आये।

(२) लार्ड कर्जन—(सन् १८९८ १९०५)—बड़ा बढ़ा-

चढा विद्वान्-लेखक और वक्ता होने से वह चतुर भी था और मेहनती भी। शासन-सम्बन्धी सभी कामों की जाँच करके उसने उनमें आवश्यक फेरफार किये और सभी सरकारी विभागों को उसने एक नया स्वरूप दे दिया। सन् १९०३ के दिल्ली-दरबार में उसने ब्रिटिश सत्ता और ऐश्वर्य का अप्रतिम प्रदर्शन किया। इसके सिवा—

१—विद्वानों का एक जाँच-कमीशन बनाकर उसने देश भर के विश्व-विद्यालयों के कामों की जाँच की। कमीशन की सिफारिशों के अनुसार उसने शिक्षा-प्रचार का नया प्रबन्ध किया।

२—बंगाल-प्रान्त बहुत बड़ा प्रान्त था। इससे उसके शासन के काम में बड़ी अड़चन पड़ती थी। इसलिए उसने उसके दो भाग कर दिये। इस कार्य का प्रचलित नाम "बग-भंग" है। किन्तु इस नवीन व्यवस्था से बंगाल-प्रान्त के लोग अत्यन्त असंतुष्ट हुए और इससे उस समय अनेक अत्याचार भी हुए। अत बाद को यह "बग-भंग" रद्द किया गया।

३—पश्चिमोत्तर सीमा के आस पास के देश को पंजाब-प्रान्त से अलग कर उसका एक नया सूबा बनाया। इस सीमा का झगड़ा बराबर बहुत दिनों से चल रहा था। इसके निर्णय में रूस और अफगानिस्तान की हलचलों से गड़बड़ हो जाता था। उस समय दो में से एक निर्णय करना आवश्यक था—या तो अफग़ानिस्तान के पार अमू दरिया अपनी सीमा बनाई जाय या सिंधु नदी ही भारत की सीमा रहे। इन दोनों में से एक बात निश्चय करनी आवश्यक थी। कर्ज़न ने इस प्रदेश का दौरा किया और उसका प्रबंध करने के लिए उत्तरी भाग में वहीं के निवासियों की एक फौज तैयार की और उनके पृष्ठ-भाग में अंग्रेज़ी फौजों की छावनी बनवाई। यहीं तक व्यापार मार्ग भी

बनाये। इसके लिए उसने इस पहाड़ी प्रदेश का एक सूबा ही अलग बना दिया। यह सूबा चिमटे के दोनों सिरों के बीच में दाब के समान बड़ा उपयोगी है। ऐसे ही राज्य को बफर स्टेट कहते हैं।

४—सर फ्रेंसिस यंग हसबेंडमेन की अधीनता में उसने तिब्बत को एक कमीशन व्यापार बढ़ाने के लिए भेजा, लेकिन वह सफल न हुआ।

५—खेती की उन्नति करने के लिए भी लार्ड कर्ज़न ने कितने ही उपाय किये। अकाल या बाढ़ आ जाने पर लगान में कमी या मुआफी करने का क़ानून बनाया। साहूकारों से पंजाब के किसानों को बड़ा कष्ट होता था। उसे दूर करने के लिए ज़मीन की मिलकियत गिरवीं रखने या बेचने के बारे में भी उसने कानून बनाये। किसानों को धन की मदद देने के लिए सहयोगी बैंकों का चलन चलाया। बिहार प्रान्त में पूसा का कृषि-कालेज खोला। इसमें वैज्ञानिक ढंग से खेती के काम की खोजें की जाती हैं। इस प्रकार कुल बारह बड़े-बड़े उद्योगों के विषय कर्जन ने बढ़ाये।

६—पुरानी इमारतें और अन्य बनाये गये कामों के खंडहर इस देश में प्राय सर्वत्र हैं। उनकी रक्षा करने के लिए कर्जन ने पुरानी वस्तु के रक्षण का नया कानून बनाया और उसका उपयोग कर प्राय सभी पुरानी ऐतिहासिक इमारतों की रक्षा का काम शुरू किया। उसके ये सब काम बड़े लाभ प्रद थे। अत प्रजा उसको धन्यवाद देती थी। वह बड़ा मेहनती और महत्वाकांक्षी था। उसकी अधीनता में जितने छोटे-बड़े सरकारी काम काज करनेवाले नौकर थे उन सब पर उसका रोब जमा रहता था। सभी विभागों का निरीक्षण वह स्वय करता और उन सब में यथोचित सुधार

बढा विद्वान् लेखक और वक्ता होने से वह चतुर भी था और मेहनती भी। शासन-सम्बन्धी सभी कामों की जाँच करके उसने उनमें आवश्यक फेरफार किये और सभी सरकारी विभागों को उसने एक नया स्वरूप दे दिया। सन् १९०३ के दिल्ली-दरबार में उसने ब्रिटिश सत्ता और ऐश्वर्य का अप्रतिम प्रदर्शन किया। इसके सिवा—

१—विद्वानों का एक जाँच-कमीशन बनाकर उसने देश भर के विश्व विद्यालयों के कामों की जाँच की। कमीशन की सिफारिशों के अनुसार उसने शिक्षा-प्रचार का नया प्रबन्ध किया।

२—बंगाल-प्रान्त बहुत बड़ा प्रान्त था। इससे उसके शासन के काम में बड़ी अड़चन पड़ती थी। इसलिए उसने उसके दो भाग कर दिये। इस कार्य का प्रचलित नाम "बंग-भंग" है। किन्तु इस नवीन व्यवस्था से बंगाल-प्रान्त के लोग अत्यन्त असंतुष्ट हुए और इससे उस समय अनेक अत्याचार भी हुए। अतः बाद को यह "बंग-भंग" रद्द किया गया।

३—पश्चिमोत्तर सीमा के आस पास के देश को पंजाब प्रान्त से अलग कर उसका एक नया सूबा बनाया। इस सीमा का झगड़ा बराबर बहुत दिनों से चल रहा था। इसके निर्णय में रूस और अफगानिस्तान की हलचलों से गड़बड़ हो जाता था। उस समय दो में से एक निर्णय करना आवश्यक था—या तो अफ़ग़ानिस्तान के पार अमू दरिया अपनी सीमा बनाई जाय या सिंधु नदी ही भारत की सीमा रहे। इन दोनों में से एक बात निश्चय करनी आवश्यक थी। कर्जन ने इस प्रदेश का दौरा किया और उसका प्रबंध करने के लिए उत्तरी भाग में वहीं के निवासियों की एक फ़ौज तैयार की और उनके पृष्ठ भाग में अंग्रेज़ी फौजों की छावनी बनवाई। यहीं तक व्यापार मार्ग भी

बनाये। इसके लिए उसने इस पहाड़ी प्रदेश का एक सूबा ही अलग बना दिया। यह सूबा चिमटे के दोनों सिरों के बीच में दार के समान बड़ा उपयोगी है। ऐसे ही राज्य को बफर स्टेट कहते हैं।

४—सर फ्रेंसिस यंग हसबेंडमेन की अधीनता में उसने तिब्बत को एक कमीशन व्यापार बढ़ाने के लिए भेजा, लेकिन वह सफल न हुआ।

५—खेती की उन्नति करने के लिए भी लार्ड कर्ज़न ने कितने ही उपाय किये। अकाल या बाढ़ आ जाने पर लगान में कमी या मुआफी करने का कानून बनाया। साहूकारों से पंजाब के किसानों को बड़ा कष्ट होता था। उसे दूर करने के लिए ज़मीन की मिलकियत गिरवीं रखने या बेचने के बारे में भी उसने कानून बनाये। किसानों को धन की मदद देने के लिए सहयोगी बैंकों का चलन चलाया। बिहार प्रान्त में पूसा का कृषि कालेज खोला। इसमें वैज्ञानिक ढंग से खेती के काम की खोजें की जाती हैं। इस प्रकार कुल बारह बड़े-बड़े उद्योगों के विषय कर्ज़न ने बढ़ाये।

६—पुरानी इमारतें और अन्य बनाये गये कामों के खंडहर इस देश में प्राय सर्वत्र हैं। उनकी रक्षा करने के लिए कर्जन ने पुरानी वस्तु के रक्षण का नया कानून बनाया और उसका उपयोग कर प्राय सभी पुरानी ऐतिहासिक इमारतों की रक्षा का काम शुरू किया। उसके ये सब काम बड़े लाभ प्रद थे। अत प्रजा उसको धन्यवाद देती थी। वह बड़ा मेहनती और महत्वाकांक्षी था। उसकी अधीनता में जितने छोटे-बड़े सरकारी काम काज करनेवाले नौकर थे उन सब पर उसका रोब जमा रहता था। सभी विभागों का निरीक्षण वह स्वय करता और उन सब में यथोचित सुधार

भी करता था। सन् १९०५ के नवम्बर मास में युवराज और युवराज्ञी ने भारत की यात्रा की। उनका स्वागत करने के सम्बन्ध में किसी फौजी प्रश्न पर तत्कालीन भारत-सेनापति लार्ड किचनर से उसका मतभेद हो गया। इसलिए वह अपना पदत्याग करके स्वदेश लौट गया। अंग्रेजों की सार्वभाम सत्ता सारे भूमडल पर निष्कंटक रूप से चलाने की इच्छा रखनेवाले तथा उसके लिए प्रचण्ड प्रयत्न करनेवाले जो राजनीतिवेत्ता इस आधुनिक काल में इंग्लैंड में हुए हैं उनमें कर्जन की गणना होने से, उसने मंत्रिमंडल में कई वार सम्मिलित होकर शासन-सम्बन्धी काम किये। उसकी मृत्यु सन् १९२५ में हुई।

(३) लार्ड मिंटो—(सन् १९०५-१९१०)—अंग्रेज़ सरकार को इस देश पर शासन करते लगभग १०० वर्ष वीत चुके। इतनी कालावधि में अंग्रेजों ने जो काम किये, उनके सम्बन्ध में चाहे कितना ही मतभेद क्यों न हो, तथापि भारत में पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार कर सरकार प्रजा को प्रबुद्ध बनाती चली जा रही है। इससे देश को बड़ा लाभ हो रहा है। इस ज्ञान वृद्धि के कारण प्रजा के चित्त में नवीन आकाक्षाओं का उदय हुआ और शासन का काम अधिक कठिन हो गया। इस विकट समस्या को सुलझाने का काम लार्ड मिंटो को सौंपा गया। अतः बड़े धैर्य के साथ लोक हित को अपनी निगाह में रखकर उसने भारत में शासन का काम बढ़ाया। सुशिक्षित लोगों की इच्छा पूरी करने के लिए स्टेट सेक्रेटरी लार्ड मार्ले और वायसराय लार्ड मिंटो, दोनों ने मिलकर राज्य के शासन में लोकमत का समावेश करने के लिए कानून बनानेवाली कौंसिल की नवीन योजना का प्रचार किया। इसके प्रचार से शासन व्यवस्था में

भारतीयों का अधिक प्रवेश होने लगा। लेकिन केवल इतने ही अधिकार से प्रजा को सन्तोष न हुआ।

६ मई सन् १९१० को बादशाह सातवें एडवर्ड की मृत्यु हुई। अत इंग्लैंड की राजगद्दी पर उनके ज्येष्ठ राजकुमार पचम जार्ज बैठे। लार्ड मिंटो का कार्य काल नवम्बर सन् १९१० में समाप्त हो गया था। इसलिए उसके स्थान पर लार्ड हार्डिङ्ग की तैनाती हुई। बादशाह की नवीन उदार नीति का अधिकाश श्रेय लार्ड हार्डिङ्ग को है। इसका सारा जीवन पर-राष्ट्र विभाग के कार्यों में ही बीता है। पहले लार्ड हार्डिङ्ग रूस-सम्राट के दरबार में इंग्लैंड का राजदूत था। जिस समय स्वर्गीय बादशाह सातवें एडवर्ड ने यूरोप में स्थायी शाति रखने के लिए बडा परिश्रम किया था उस समय उन्हें "शान्ति-स्थापक" की पदवी मिली थी। उन्होंने यूरोप की मुख्य मुख्य शक्तियों के पास स्वय जाकर शान्ति बनाये रखने के लिए मित्रता की संधियाँ कीं। उस समय यही लार्ड हार्डिङ्ग उनके साथ रह कर उनके दाहने हाथ बन रहे थे। इसी नीति की दृष्टि से उसको भारत के वायसराय का पद दिया गया था। एडवर्ड के परलोक वासी होने पर उनके ही काम अथवा नीति का पोषण वर्त्तमान बादशाह कर रहे हैं।

(४) बादशाह पचम जार्ज—ये सन् १९१० के मई मास में राजगद्दी पर बैठे। इसका उत्सव इंग्लैंड में जून सन् १९११ में हुआ। स्वय भारत आकर इन्होंने दिल्ली में १२ दिसम्बर सन् १९११ को एक बडा दरबार किया और अपने राज्यारोहण की विज्ञप्ति भारत में प्रकट की। इस दरबार में भारत के १३५

भी करता था। सन् १९०५ के नवम्बर मास में युवराज और युवराज्ञी ने भारत की यात्रा की। उनका स्वागत करने के सम्बन्ध में किसी फौजी प्रश्न पर तत्कालीन भारत सेनापति लार्ड किचनर से उसका मतभेद हो गया। इसलिए वह अपना पदत्याग करके स्वदेश लौट गया। अंग्रेजों की सार्वभाम सत्ता सारे भूमडल पर निष्कंटक रूप से चलाने की इच्छा रखनेवाले तथा उसके लिए प्रचण्ड प्रयत्न करनेवाले जो राजनीतिवेत्ता इस आधुनिक काल में इंग्लैंड में हुए हैं उनमें कर्जन की गणना होने से, उसने मंत्रिमडल में कई बार सम्मिलित होकर शासन-सम्बन्धी काम किये। उसकी मृत्यु सन् १९२५ में हुई।

(३) लार्ड मिंटो—(सन् १९०५-१९१०)—अंग्रेज़-सरकार को इस देश पर शासन करते लगभग १०० वर्ष बीत चुके। इतनी कालावधि में अंग्रेजों ने जो काम किये, उनके सम्बन्ध मे चाहे कितना ही मतभेद क्यों न हो, तथापि भारत में पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार कर सरकार प्रजा को प्रबुद्ध बनाती चली जा रही है। इससे देश को बड़ा लाभ हो रहा है। इस ज्ञान वृद्धि के कारण प्रजा के चित्त में नवीन आकांक्षाओं का उदय हुआ और शासन का काम अधिक कठिन हो गया। इस विकट समस्या को सुलझाने का काम लार्ड मिंटो को सौंपा गया। अत: बड़े धैर्य के साथ लोक हित को अपनी निगाह में रखकर उसने भारत में शासन का काम बढ़ाया। सुशिक्षित लोगों की इच्छा पूरी करने के लिए स्टेट सेक्रेटरी लार्ड मार्ले और वायसराय लार्ड मिंटो, दोनों ने मिलकर राज्य के शासन में लोकमत का समावेश करने के लिए कानून बनानेवाली कौंसिल की नवीन योजना का प्रचार किया। इसके प्रचार से शासन-व्यवस्था में

भारतीयों का अधिक प्रवेश होने लगा। लेकिन केवल इतने ही अधिकार से प्रजा को सन्तोष न हुआ।

६ मई सन् १९१० को बादशाह सातवें एडवर्ड की मृत्यु हुई। अत इंग्लैंड की राजगद्दी पर उनके ज्येष्ठ राजकुमार पंचम जार्ज बैठे। लार्ड मिंटो का कार्य काल नवम्बर सन् १९१० में समाप्त हो गया था। इसलिए उसके स्थान पर लार्ड हार्डिंग्ज की तैनाती हुई। बादशाह की नवीन उदार नीति का अधिकांश श्रेय लार्ड हार्डिंग्ज को है। इसका सारा जीवन पर-राष्ट्र विभाग के कार्यों में ही बीता है। पहले लार्ड हार्डिंग्ज रूस-सम्राट के दरबार में इंग्लैंड का राजदूत था। जिस समय स्वर्गीय बादशाह सातवें एडवर्ड ने यूरोप में स्थायी शांति रखने के लिए बड़ा परिश्रम किया था उस समय उन्हें "शान्ति-स्थापक" की पदवी मिली थी। उन्होंने यूरोप की मुख्य मुख्य शक्तियों के पास स्वयं जाकर शान्ति बनाये रखने के लिए मित्रता की संधियाँ कीं। उस समय यही लार्ड हार्डिंग्ज उनके साथ रह कर उनके दाहने हाथ बन रहे थे। इसी नीति की दृष्टि से उसको भारत के वायसराय का पद दिया गया था। एडवर्ड के परलोक-गामी होने पर उनके ही काम अथवा नीति का पोषण वर्त्तमान बादशाह कर रहे हैं।

(४) बादशाह पंचम जार्ज—ये सन् १९१० के मई मास में राजगद्दी पर बैठे। इसका उत्सव इंग्लैंड में जून सन् १९११ में हुआ। स्वयं भारत आकर इन्होंने दिल्ली में १२ दिसम्बर सन् १९११ को एक बड़ा दरबार किया और अपने राज्यारोहण की विज्ञप्ति भारत में प्रकट की। इस दरबार में भारत के १२५

राजे सम्मिलित हुए। इनके अलावा अमरीका, इग्लैंड, जापान इत्यादि देशों से सैकड़ों दर्शक ओर अतिथि यहाँ आये। दरबार के दिन सारे भारत में प्रजा ने आनन्द मङ्गल मनाया और इस प्रकार राजभक्ति का परिचय दिया। इस समय लोगों को सन्तुष्ट करने के लिए बादशाह ने "बग-भग" को रद्द किया। राजधानी कलकत्ते से हटाकर दिल्ली में बनाने का आदेश दिया। इस प्रकार प्रजा को सन्तोष और धैर्य देकर २ दिसम्बर सन् १९११ से लगा कर १० जनवरी सन् १९१२ तक बादशाह ने भारत के विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली इत्यादि स्थानों में उन्होंने भाषण देकर भारतीय प्रजा के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया।

( ५ ) लार्ड हार्डिंञ्ज—राज्य-शासन में बड़ा चतुर होने से, उदारता के साथ, शान्ति के उपायों से, लोगों को सन्तुष्ट रख अपने देश की ख्याति बढ़ाने के लिए, सदैव प्रयत्न किया करता था। सन् १९१२ के दिसम्बर मास में राजधानी दिल्ली के प्रवेशोत्सव की सवारी निकल रही थी किसी दुष्ट ने उसक हाथी पर बम फेंककर उसकी हत्या करने का प्रयत्न किया। इतने पर भी उसने अपने चित्त की शान्ति को नहीं भङ्ग किया और भारतीय प्रजा पर अपना प्रेम पूर्ववत् ही बनाये रहा। यूरोप में महायुद्ध शुरू हुआ और उसका प्रभाव जिस प्रकार सारे संसार के अन्य राज्यों पर पड़ा, उसी प्रकार उसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा। इस विकट परिस्थिति में लार्ड हार्डिञ्ज ने बड़ी कुशलता से शासन-कार्य करके भारतीय लोगों तथा देशी रजवाड़ों से धन और जन की पूरी-पूरी सहायता, युद्ध के लिए, प्राप्त की। सन् १९१६ के एप्रिल मास में लार्ड चेम्सफर्ड की तैनाती

हुई और लार्ड हार्डिंज विलायत को लौट गया।

( ६ ) यूरोपीय महायुद्ध—(अगस्त १९१४—नवम्बर १९१८)—व्यापार तथा उपनिवेशों को बढाने के लिए यूरोपीय राष्ट्रों मे परस्पर भयकर स्पर्धा उत्पन्न हुई। इससे यूरोप के राष्ट्र दो दलो में बँट गये। एक दल में इंग्लेड, फ्रास और रूस थे। दूसरे में जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली सम्मिलित हो गये। ऐसी स्थिति में २८ जून सन् १९१४ को आस्ट्रिया के युवराज आर्च ड्यूक फ्रैंसिस फ़र्डिनेंड और उसकी पत्नी की हत्या हुई। बस इसी से समराग्नि भभक उठी। उसके लिए बाद को ४ अगस्त को उपर्युक्त दोनों दलों में भयंकर युद्ध प्रारभ हुआ। यह युद्ध ४ वर्ष तक बड़े जोर से चला और सन् १९१८ के नवम्बर मास में बंद हुआ। इस युद्ध के शुरू होने पर जापान और इटली ने इग्लैंड का साथ दिया और तुर्की ने जर्मनी का। बाद को रूस के बादशाह की हत्या की गई और देश में राज्य क्रान्ति हुई। इससे रूस निर्बल हो गया। जर्मनी के लड़ाऊ जहाज़ एम्डेन ने भारत के पूर्वी और पश्चिमी किनारे पर जो अग्निकाड किये उसको याद अभी तक लोगों को नहीं भूली है। अमरीका का सम्बन्ध इस युद्ध से न होने पर भी उसके जहाजों को जर्मनी ने डुबोया। तब अमरीका का राष्ट्र इंग्लैंड का पक्ष लेकर युद्ध में शामिल हुआ। इसके बाद अमरीका के प्रेसीडेंट विल्सन ने राष्ट्रीय व्यवहार की नीति को दृढ करने के लिए १४ तत्त्व प्रसिद्ध किये। इसमें से एक तत्त्व का अभिप्राय यह है कि संसार के समस्त राष्ट्र अपने-अपने राष्ट्र की व्यवस्था अपनी इच्छा के अनुसार स्थिर करें। इसको "स्वय निर्णय" कहते हैं। इन चौदहों तत्त्वों के प्रकाशित होने पर नवम्बर सन् १९१८

सत्ताधीशो की घरेलू लड़ाइयों में हाथ डालकर भारत का एक के बाद दूसरा भाग उन्होंने अपने अधीन किया। यही कारण है कि वर्त्तमान अंग्रेजी राज्य और देशी रजवाड़ों के राज्य अधिकतर विच्छिन्न और छिन्न भिन्न हैं।

जिस समय भारतीय फौज और भारतीय धन की सहायता से कम्पनी ने यह राज्याधिकार पाने का सफल प्रयत्न किया, उस समय कम्पनी के अधिकार में आये हुए राज्य में यहाँ के लोगों को शासन का काम नहीं दिया जाता था। अंग्रेजी भाषा का प्रचार कर अपने कारबार के देखने की योग्यता भारतीयों में पैदा करने की कल्पना पहले लार्ड विलियम बेंटिक ने की थी। इसके बाद पहले की संस्कृत भाषा को अधिक महत्व न देकर भारतीयों में पाश्चात्य शिक्षा ही के प्रचार का प्रस्ताव मेकाले के प्रभाव से स्वीकृत हुआ और भारत में अंग्रेज़ी-विश्व विद्यालयों की स्थापना सन् १८५७ में हुई। प्रारम्भ से ही उदार मत के अंग्रेज राजनीतिज्ञ चाहते थे कि भारत की राजनैतिक अवस्था और प्रजा की अवस्था सुधार कर उसके सामने सुख का मार्ग रक्खा जाय। किन्तु सन् सत्तावन के गदर से इग्लैंड के समग्र राष्ट्र का ध्यान इस ओर पहली ही बार आकर्षित हुआ था। सुव्यवस्थित व सरल नीति से शासन को चलाये विना भारतीयों में संतोष का जब अभाव देखा तब उनमें से एक पक्ष की यह धारणा हुई कि इस शासन का भार जितना भारतीय स्वयं वहन कर सकें उतना कार्य उन्हें सोंप दिया जाय। भारत के लोगों को अंग्रेजी शासन से चाहे कितने ही लाभ क्यों न हुए हों, तो भी यह तो अवश्य ही कहा जायगा कि उनका स्वातंत्र्य नष्ट हो गया। दूसरे लोग जब उनकी रक्षा करने लगे तो वे स्वयं निर्बल



अबदुर हमान



लार्ड रिपन

इन्होंने हत्याकाड, लूट पाट करना भी शुरू किया। तव सरकार ने लोकमान्य तिलक इत्यादि नेताओं पर मुक़द्मा चलाकर कई वर्षों तक उन्हें जेल मे वन्द रक्खा। इसके वाद राष्ट्रीयसभा नरमदल के हाथ मे गई। अत: उसमें कुछ वर्ष तक भारत को साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य देने की माँग सरकार से की जाने लगी।

( ७ ) मार्ले-मिन्टो के सुधार ( सन् १९०९ )—इग्लैंड के शासन की मुख्य भित्ति सेक्रेटरी-आव-स्टेट और गवर्नर जनरल दोनों हैं। यदि ये दोनों एक मत के हुए तो वहुत काम हो जाता है। एक-दूसरे में विरोध होने पर आगे एक पग भी उन्नति नहीं होती। विलायत में भारत-मंत्री पार्लामेंट और विलायती मंत्रिमंडल का रुख देखकर चलता है और गवर्नर जनरल भारत की प्रत्यक्ष स्थिति का परिचय उसे देकर अपनी सिफारिश या उपायों की सूचना देता है। इन दोनों की आज्ञा से भारत का सारा राज्यतंत्र चलता है। राजनैतिक परिवर्त्तनों के सम्बन्ध में पहले भारत-मंत्री मार्ले और गवर्नर जनरल मिन्टो की जोड़ी ( १९०५-१० ) और वाद को भारत मंत्री माटेग्यू और गवर्नर-जनरल चेम्सफर्ड की जोड़ी ( १९१६-२० ) ध्यान में रखनी चाहिए। मिन्टो और मार्ले के पूर्व-चरित एवं कार्यवाही इसी महत्व के हैं। मार्ले विद्वान्, लेखक और उदारमत वादी था, परन्तु प्रत्यक्ष व्यवहार में अनुभवहीन था। एक प्रकार से वह उच्च ध्येय रखनेवाला और स्वमतानुवर्त्ती था। इसके विरुद्ध मिन्टो केवल व्यवहार में हर तरह का अनुभव प्राप्त कर चुका था और अनुदार-दल का पुरुष ( कंज़रवेटिव ) था। सन् १९०५ से भारत में अराजक लोग उत्पन्न हो गये। इससे देश में वड़ी

खलबली मच गई। तब तरह तरह की चर्चा दो-तीन वर्ष तक चली और एक नया कानून पार्लामेंट में बना। परन्तु उपर्युक्त दोनों प्रधान पुरुषों में परस्पर मत विरोध होने से लोगों को प्रत्यक्ष हक बहुत थोड़े मिले। मुख्य व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या इस कानून द्वारा पहले से बढाकर ६० कर दी गई। इनमें २७ सदस्यों का प्रवेश लोक निर्वाचन से हुआ। प्रान्तिक कौंसिलों की संख्या ५० कर दी गई और उनमें से २१ लोक निर्वाचित रक्खे गये। सभी कौंसिलों में बजट की चर्चा तथा शासन-सम्बन्धी प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया। गवर्नर-जनरल व प्रान्तीय सरकारों की कार्यकारिणी-कौंसिलों में एक-एक भारतीय सदस्य के रक्खे जाने का भी नियम बना। नियमों द्वारा तथा अन्य बन्धनों से चाहे कितना भी मर्यादित क्यों न किया गया हो, लोगों को निर्वाचनाधिकार इस कानून में अवश्य ही मिल गया। इस क़ानून का यह महत्व अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिए। इस सुधार का अमल होने पर सन् १९११ में सम्राट् पंचम जार्ज भारत में आये और दिल्ली का दरबार हुआ। इसमें बंग-भंग रद्द किया गया। कलकत्ता से हटाकर दिल्ली में राजधानी कायम की गई। बाद को सन् १९१४ में अगस्त के अन्त में यूरोप का युद्ध प्रारम्भ होने से राजनीति के क्षेत्र में एकदम परिवर्त्तन हो गया।

(८) युद्ध कालीन परिस्थिति—लार्ड मिन्टो के कार्य-काल में, सन् १९१० में छापेखाने के प्रतिबंध का कानून बना और बाद को १९१५ में डिफेंस आव इंडिया एक्ट कानून बना। इन दो कानूनों की सहायता से राजद्रोही अराजकों की प्रगति सरकार ने एकदम भंग कर दी। इतना ही नहीं, बल्कि सन् १९१४ में यूरोप में





लार्ड कर्जन

लार्ड रीडिग



लार्ड अरविन



खलबली मच गई। तब तरह-तरह की चर्चा दो-तीन वर्ष तक चली और एक नया क़ानून पार्लामेंट में बना। परन्तु उपर्युक्त दोनों प्रधान पुरुषों में परस्पर मत विरोध होने से लोगों को प्रत्यक्ष हक़ बहुत थोड़े मिले। मुख्य व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की सख्या इस क़ानून द्वारा पहले से बढ़ाकर ६० कर दी गई। इनमें २७ सदस्यों का प्रवेश लोक निर्वाचन से हुआ। प्रान्तिक कौंसिलों की सख्या ५० कर दी गई और उनमें से २१ लोक निर्वाचित रक्खे गये। सभी कौंसिलों में बजट की चर्चा तथा शासन-सम्बन्धी प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया। गवर्नर-जनरल व प्रान्तीय सरकारों की कार्यकारिणी-कौंसिलों में एक-एक भारतीय सदस्य के रक्खे जाने का भी नियम बना। नियमों द्वारा तथा अन्य बन्धनों से चाहे कितना भी मर्यादित क्यों न किया गया हो, लोगों को निर्वाचनाधिकार इस कानून में अवश्य ही मिल गया। इस कानून का यह महत्व अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिए। इस सुधार का अमल होने पर सन् १९११ में सम्राट् पचम जार्ज भारत में आये और दिल्ली का दरबार हुआ। इसमें बग-भग रद्द किया गया। कलकत्ता से हटाकर दिल्ली में राजधानी कायम की गई। बाद को सन् १९१४ में अगस्त के अन्त में यूरोप का युद्ध प्रारभ होने से राजनीति क क्षेत्र में एकदम परिवर्तन हो गया।

(८) युद्ध कालीन परिस्थिति—लार्ड मिन्टो के कार्य-काल में, सन् १९१० में छापेख़ाने के प्रतिबंध का कानून बना और बाद को १९१५ में डिफेंस आव इडिया एक्ट कानून बना। इन दो कानूनों की सहायता से राजद्रोही अराजकों की प्रगति सरकार ने एकदम भंग कर दी। इतना ही नहीं, बल्कि सन् १९१४ में यूरोप में

जो महायुद्ध शुरू हुआ उसमें लार्ड हार्डिंज ने युक्ति-पूर्वक फ़ौज और धन की बड़ी सहायता यहाँ से इंग्लैंड को दी। युद्ध से पहले यहाँ की फौजों में नयो भरती, वर्ष भर में अधिक से अधिक पंद्रह हजार होती थी। इसके स्थान में युद्ध के ४ वर्षों में भारत की रक्षा के काम की फौज के अतिरिक्त तेरह लाख भारतीय फ़ौज फ्रांस, पूर्व अफ्रीका, मेसोपोटामियाँ, पेलेस्टाइन इत्यादि स्थानों के रणक्षेत्रों को भेजी गई। बारूद, गोले अन्य सामान यहाँ से बहुत अधिक भेजा गया। उस समय देशी रजवाड़ों ने भी अपनी ओर से सरकार को मदद देने में कुछ उठा न रक्खा। इसके अलावा भारत की व्यवस्थापिका सभा ने १० करोड़ नक़द रुपये भी देना स्वीकार किया और ८ करोड़ का क़र्ज़ लोगों ने दिया। भारत ने खुले हाथ यह मदद की। इसीलिए इस महायुद्ध में इंग्लैंड को विजय लाभ हुआ और इसके बदले में भारतीय लोगों को कुछ भारी अधिकार देने की इच्छा अंग्रेज़ राष्ट्र को हुई। इसका मुख्य श्रेय लोगों को प्रसन्न रखकर अपने कार्य को साधने वाले गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिंज को है। बम का गोला फेककर अपने प्राण लेनेवाले से बदला न लेकर उसने युद्ध के अवसर पर लोगों का प्रेम प्राप्त किया। उसकी यह स्वदेश-सेवा अवश्य ही प्रशंसनीय है।

इधर लोगों की आकांक्षा की पूर्त्ति में यह युद्ध ही कारण बना। छोटे-बड़े सब राष्ट्रों को सुख से रहने का हक है। जर्मनी के समान प्रबल राष्ट्र अपनी फौजों के बल पर छोटे राष्ट्रों को पदाक्रान्त नहीं कर सकते। इस बात की दुहाई देकर मित्र राष्ट्र इस युद्ध में प्रविष्ट हुए। इसी तत्त्व की सिद्धि के लिए बाद को अमरीकन राष्ट्र जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में शामिल हुआ और प्रेसीडेंट विल्सन

ने राष्ट्र-व्यवहार के १४ तत्त्व प्रकाशित किये। उसमें निश्चित हुआ कि स्वय-निर्णय का हक सबको एक समान मिलेगा। इस तत्त्व के स्वीकार होने पर जर्मनी की हार हुई और सन् १९१८ के नवम्बर मास में युद्ध बंद हुआ, अर्थात् युद्ध के चार वर्षों में जो राजनैतिक दाँव पेच चलाये गये उनके योग से पृथिवी के समस्त परतंत्र राष्ट्रों को अपने-अपने राज्य के भाग्य निर्णय के सम्बन्ध में तत्काल तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। सरकार ने भारत में लोगों को यह आश्वासन दिया कि युद्ध के इस भयंकर समय में सभी पक्ष एकमत होकर सरकार की मदद करें। युद्ध के बंद होने पर तुम्हारी सभी माँगों पर उदारता के साथ विचार किया जायगा। अतएव इसी भावना से लोगों ने सरकार को युद्ध में सहायता दी।

(९) मुस्लिमलीग और स्वराज्य की विज्ञप्ति—जैसा अभी लिखा जा चुका है, युद्ध बंद होने से पहले ही यहाँ राज्याधिकार का प्रश्न जोर पकड़ रहा था। भारत में विभिन्न धर्मावलम्बी लोगों की वस्ती है। उनमें हिन्दू और मुसलमान धर्म के माननेवालों की संख्या अधिक है। यद्यपि राष्ट्रीय सभा में सभी को जाने का अधिकार था, तथापि सन् १८८५ से २० वर्ष तक उसमें मुसलमानों ने कोई भाग न लिया था। विद्या में भी मुसलमान पिछड़े होने के कारण स्वराज्य की आकांक्षा उनमें बढ़ती न थी। बाद को राष्ट्रीय सभा की हलचल जोरों पर देख मुसलमानों को यह अनुभव होने लगा कि इस काम में पीछे रहना हमारे समाज के लिये घातक है और इसीलिए उन्होंने राष्ट्रीय सभा के जोड़ की एक मुस्लिमलीग अपने समाज के लिए अलग सन् १९०६ में स्थापित की। प्रारभ में इस सस्था ने अपने समाज में केवल विद्या प्रचार का कार्य किया। और

सन् १९०८ में जब राष्ट्रीय सभा नरमदल के हाथ में चली गई तब उस समय इसके साथ मुस्लिमलीग ने सहयोग किया। इससे दोनों संस्थाओं में स्नेहभाव स्थापित हो गया। दोनों ही सभाओं के अधिवेशन एक साथ एक ही शहर में होने लगे। इससे दोनों सम्थाओं के सदस्यों का विचार-विनिमय भी परस्पर होने लगा। पहले अंग्रेज़ी सरकार पर मुसलमानों की पूर्ण भक्ति थी। परन्तु महायुद्ध मे तुर्की ने जर्मनी का साथ दिया। इससे भारतीय मुसलमानो का चित्त भी सरकार की ओर से हट गया। इससे राष्ट्रीय सभा और मुस्लिम लीग दोनों ही परस्पर एक दूसरे से सहज ही में मिल गईं। युद्ध के समय में लायोनेल कर्टिस, वेलेंटाइनचिरोल इत्यादि साम्राज्यवादी अंग्रेज़ भारत के लोकमत की परीक्षा करके भावी व्यवस्था परिवर्त्तन की भिन्न-भिन्न सूचनाएँ विलायत की सरकार को अपनी ओर से देते थे। "राउन्ड टेबल" नामक पत्र प्रकाशित कर कर्टिस ने इस विषय की ओर विलायत के सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित किया। उसका मत था कि पहले सभी दल के आदमी एकत्र किये जायँ और उनसे इसकी बातचीत स्पष्टत करके एक निश्चय किया जाय। इसी समय अर्थात् सन् १९१६ में मिसेज बीसेंट ने होमरूल-लीग नाम की संस्था खोली। इधर गवर्नर-जनरल की बड़ी व्यवस्थापिका सभा में भी इस प्रश्न की चर्चा होने लगी। उनमें २७ सदस्यों में से १९ सदस्यों ने अपनी माँगों का मसविदा बनाकर सरकार के सामने पेश किया। इन १९ सदस्यों में ५ मुसलमान भी थे। उन्हीं दिनों लखनऊ में राष्ट्रीय सभा और मुस्लिम लीग की संयुक्त बैठकें हुईं। इसमें दोनों पक्षों के नेताओं ने परस्पर

मिल-जुलकर एक मसविदा तैयार किया। उस समय देश के अन्य विभिन्न दल भी उसमें सम्मिलित हुए। मिसेज़ बीसेंट, गांधी, तिलक और जिन्ना आदि नेताओं और पक्षों में ऐक्य हुआ। इससे १९१६ की राष्ट्रीय सभा की माँगें अधिक जोर के साथ हुईं और युद्ध में फँसे रहने के कारण सरकार को भी इन माँगों पर विचार करना पड़ा। भारत में बड़ा आन्दोलन होने पर सभी पक्षों के नेताओं द्वारा स्वराज्य की माँग एक स्वर से प्रकट की गई। वह सरकार को भी स्वीकार करनी पड़ी। सन् १९१७ के जुलाई मास में माटेग्यू भारत मंत्री बना और उसने प्रधान-मंडल की अनुमति से २० अगस्त सन् १९१७ को पार्लमेंट में अंग्रेज सरकार की ओर से यह सूचना प्रकाशित की कि "भारत के शासन में उत्तरोत्तर भारतीय लोगों को अधिक प्राधान्य देकर स्वराज्य की संस्था धीरे-धीरे परिपूर्ण बना दी जायगी और इसके द्वारा भारत ब्रिटिश साम्राज्य में रहकर अपना शासन स्वयं अपने उत्तरदायित्व पर करेगा। इस अन्तिम अवस्था में पहुँचाने के लिए उसे समय समय पर क्रम-क्रम से अधिक अधिकार दिये जाँयगे। यह सूचना भारत-सरकार और इग्लैंड-सरकार दोनों की सम्मति से प्रकट की जाती है।" यह सूचना इस प्रकरण में अत्यन्त महत्व की है। सन् १८५७ के गदर के महारानी के संदेश प्रकाशित होने के बाद राज्य-शासन-सम्बन्धी आगे की महत्व की बात इस सूचना से प्रकट हुई। इससे लोगों का आन्दोलन भी कुछ ठंढा पड़ा और युद्ध का भी अन्त हुआ और भारत के शासन-प्रकरण ने एक नया ही रंग पकड़ा। एक दृष्टि से राष्ट्रीय सभा का पहला उद्देश्य सिद्ध हो गया और उसके आगे के उद्योगों में बड़ा रूपांतर हो गया।

---

# सोलहवाँ अध्याय

## स्वराज्य की स्थापना

### सन् १९२१

१—माट फोर्ड-सुधार-कानून
२—गांधी का सत्याग्रह व बहिष्कार
३—खिलाफत का आन्दोलन
४—स्वराज्य दल, मुडीमैन-कमेटी
५—नरेंद्र-मंडल
६—राज्य-व्यवस्था
७—ब्रिटिश साम्राज्य
८—भारत की विशेषोन्नति
९—इतिहास ज्ञान का निष्कर्ष

(१) माट-फ़ोर्ड सुधार-क़ानून ( १९१९ )—वास्तविक महत्व के सुधार को सार्थक करने के लिए दृढ़ मनुष्य की आवश्यकता पड़ती है। भारत मंत्री की जगह माटेग्यू की तैनाती हुई। उसने दृढ़ता के साथ इस प्रश्न का निर्णय किया। उपर्युक्त सूचना को अमल में लाने के लिए किस योजना की आवश्यकता है, इसकी जाँच करने व उसपर विचार करने के लिए माटेग्यू स्वयं अगले नवम्बर मास में भारत आया। उसने गवर्नर-जनरल चेम्सफोर्ड को अपने साथ लेकर देश भर के विभिन्न नेताओं से भेंट की और दोनों ने मिलकर सभी बातों का वर्णन लिख कर उसे सन् १९१८ के जुलाई मास में पार्लामेंट में पेश किया। इसमें पहले भारत का शासन-सम्बन्धी आज तक का इतिहास बताया। बाद को अमल में लाने के लिए जिन सुधारों

की आवश्यकता थी उसकी सूचना भी उसमें दी। पार्लमेंट की आज्ञा से मांटेग्यू ने कानून का एक मसविदा तैयार किया और उसे पार्लमेंट में पेश किया। इसके साथ ही साथ एक जाँच कमिटी भारत में भेजी गई। भारतीय लोगों के प्रतिनिधि चुनने के हक़ किसको कितने दिये जाँय, और कौन से शासन विभाग अपने अधीन रखकर किस-किस विभाग का कार्य लोगों के अधीन किया जाय, इसका निर्णय इस जाँच कमेटी-द्वारा किया गया। इसके बाद पार्लमेंट की दोनों सभाओं की एक संयुक्त कमेटी बनी और उसमें एक बार फिर इस सारे मामले पर पूरी तरह से विचार किया गया। इस संयुक्त-समिति की सूचना के अनुसार पहले के मसविदे में अनुकूल फेरफार करने पर वह पार्लमेंट में मंजूर हो गया। २३ दिसम्बर सन् १९१९ को बादशाह की सम्मति भी मिल गई और उस मसविदे को कानून का रूप दे दिया गया। इस कानून का सम्बन्ध दो विषयों से है—एक मुख्य अर्थात् मध्यवर्ती सरकार से, दूसरा प्रान्तीय या आहातों के शासन से। मांटेग्यू और चेम्स फोर्ड इन दोनों के परिश्रम से यह कानून बन पाया, इसलिए यह कानून मांट-फोर्ड-सुधार के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें निम्नलिखित बातें हैं—

इग्लैंड में भारत-मन्त्री, उसकी कौंसिल व अधिकार बहुत कुछ पहले ही के समान रक्खे गये। गवर्नर-जनरल की कार्य कारिणी-कौंसिल में पहले जो सात सभासद रहते थे उनमें से अब तीन सभासदों के पदों पर भारतीयों को नियुक्त करना निश्चित हुआ। इन सब सभासदों के हाथ में परराष्ट्र व भारतीय राज्यों के प्रति व्यवहार, फौज, जहाजी बेड़ा, रेल्वे, डाक व तार, अफीम, चुङ्गी, करंसी और कर्ज आदि विभागों का

बातें हैं जिनका विचार यहाँ नहीं हो सकता। इस नवीन कानून के जारी होते ही बंगाल के सुप्रसिद्ध कानून विशारद सत्येन्द्र-प्रसन्नसिंह को लार्ड की पदवी दी गई और पहले सन् १९१८ में सहकारी भारत-मन्त्री और बाद को बिहार प्रान्त के गवर्नर तैनात किये गये।

सन् १९१९ के दिसम्बर के अन्त में सुधार का यह कानून मंज़ूर हुआ। सन् १९२० में सदस्यों का निर्वाचन हुआ और प्रान्तीय व बड़ी व्यवस्थापिका सभाएँ तैयार हो गईं। इस नवीन शासन का प्रारंभ करने के लिए बादशाह के चाचा ड्यूक-आव-कनाट सन् १९२१ के आरंभ में भारत आये। उन्होंने ९ फरवरी को दिल्ली में बड़ी व्यवस्थापिका अर्थात् लेजिस्लेटिव एसेम्बली की स्थापना की और बादशाह का संदेश सुनाया कि "साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य का यह प्रारंभ है।" इस प्रकार बादशाह का संदेश लोगों को सुनाकर उस कानून का अमल शुरू हुआ। लेकिन कुछ ऐसे कारण आ उपस्थित हुए जिनसे लोगों को जितना उत्साह इस समय प्रदर्शित करना चाहिए था वह न हो सका। वे कारण निम्न-लिखित हैं —

(२) गान्धी का सत्याग्रह और बहिष्कार—स्वराज्य की योजना का भारत में प्रचार करने की सूचना निकालने पर सन् १९१७ से सन् १९२१ में उसका प्रत्यक्ष प्रयोग करने से पहले लोक मत तैयार करके जितना अधिक अधिकार मिल सके उतना ले लेना राष्ट्रीय सभा का मुख्य काम था। सुधार के मसविदे के प्रकाशित होते ही उसमें वास्तविक स्वराज्य के अधिकार न होने से अनेक हिन्दू और मुस्लिम नेताओं ने उसे अग्राह्य बताकर

उसका विरोध करने का निश्चय किया। दूसरी ओर सुधार की इस पहली क़िश्त को लेकर सहयोग द्वारा उसका उपयोग करने और १० वर्ष बाद इसकी जाँच होने पर दूसरी किश्त मिलने के समय जिन अधिक अधिकारों की आवश्यकता हो उनकी माँग करने का अनुरोध सरकार ने किया। सरकार की इस सूचना का समर्थन नरम-दल ने भी किया। इससे राष्ट्रीयसभा में दो दल हो गये। सन् १९१८ से नरमदल ने राष्ट्रीयसभा से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और तब से बराबर अपने दल की एक अलग सभा प्रतिवर्ष वह करता है। अत सरकार की इस नीति तथा लोगों में दलबन्दियाँ बन जाने से कलह उत्पन्न हो गई। इससे वास्तविक लोकहित की प्रगति बहुत कुछ धीमी पड़ गई। सन् १९१८ में राष्ट्रीयसभा और मुस्लिमलीग की सयुक्त बैठकें दिल्ली में हुईं। इसमें राजनैतिक उद्योग के विषय में दोनों का ऐक्य हो गया। वास्तव में इस समय बड़ी धूम धाम मच गई थी। बलवा, और राजद्रोह को निर्मूल करके देश में शाति व प्रबन्ध स्थिर रखने के लिये सरकार ने सन् १९१९ में बड़े कडे नियम बनाये। ये रौलेट-एक्ट के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन नियमों से जनता बडी क्षुब्ध हुई। पंजाब का प्रबन्ध स्थिर रखने के लिए वहाँ मार्शल ला जारी किया गया। उसी साल एप्रिल मास में अमृतसर के जलियाँवाला बाग में सभा के लिए लोगों की भारी भीड़ एकत्र हुई। पंजाब के तत्कालीन लेफ्टनेंट-गवर्नर ओडायर ने यह आज्ञा निकाली कि जनता उस बाग़ से एकदम निकल जाय और भीड़ न करे। इस आज्ञा को लोगों ने न माना। तब भय उत्पन्न करने के लिए जनरल डायर ने जनता पर तोपें छोडीं। इससे बहुत लोग मारे गये और इस कृत्य का समाचार

उसका विरोध करने का निश्चय किया। दूसरी ओर सुधार की इस पहली क़िश्त को लेकर सहयोग द्वारा उसका उपयोग करने और १० वर्ष बाद इसकी जाँच होने पर दूसरी किश्त मिलने के समय जिन अधिक अधिकारों की आवश्यकता हो उनकी माँग करने का अनुरोध सरकार ने किया। सरकार की इस सूचना का समर्थन नरम-दल ने भी किया। इससे राष्ट्रीयसभा में दो दल हो गये। सन् १९१८ से नरमदल ने राष्ट्रीयसभा से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और तब से बराबर अपने दल की एक अलग सभा प्रतिवर्ष वह करता है। अत सरकार की इस नीति तथा लोगों में दलबन्दियाँ बन जाने से कलह उत्पन्न हो गई। इससे वास्तविक लोकहित की प्रगति बहुत कुछ धीमी पड़ गई। सन् १९१८ में राष्ट्रीयसभा और मुस्लिमलीग की सयुक्त बैठकें दिल्ली में हुईं। इसमें राजनैतिक उद्योग के विषय में दोनों का ऐक्य हो गया। वास्तव में इस समय बड़ी धूम धाम मच गई थी। बलवा, और राजद्रोह को निर्मूल करके देश में शांति व प्रबन्ध स्थिर रखने के लिये सरकार ने सन् १९१९ में बड़े कड़े नियम बनाये। ये रौलेट-एक्ट के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन नियमों से जनता बड़ी क्षुब्ध हुई। पंजाब का प्रबन्ध स्थिर रखने के लिए वहाँ मार्शल ला जारी किया गया। उसी साल एप्रिल मास में अमृतसर के जलियाँवाला बाग में सभा के लिए लोगों की भारी भीड़ एकत्र हुई। पजाब के तत्कालीन लेफ्टनेंट-गवर्नर ओडायर ने यह आज्ञा निकाली कि जनता उस बाग़ से एकदम निकल जाय और भीड़ न करे। इस आज्ञा को लोगों ने न माना। तब भय उत्पन्न करने के लिए जनरल डायर ने जनता पर तोपें छोड़ीं। इससे बहुत लोग मारे गये और इस कृत्य का समाचार

देश में फैलते ही जनता में हाहाकार मच गया। गान्धी की सहायता से लोगों ने यह प्रस्ताव किया कि जो सरकारी पदाधिकारी इस हत्याकाण्ड के ज़िम्मेदार हों उनको सरकार सज़ा दे और यदि ऐसा वह न करेगी तो जनता सरकार का वहिष्कार कर उसका विरोध करेगी। इस प्रकार सत्याग्रह का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। वहिष्कार और सत्याग्रह इन दोनों आन्दोलनों का ज़ोर तीन वर्ष तक रहा। सरकार के साथ किसी भी प्रकार का सहयोग न करना, अधिकारियों को मान पत्रादि देकर उनका स्वागत न करना, नवीन सुधार-क़ानून के अनुसार निर्वाचन के लिए न खड़ा होना, ऐसा करके कौंसिलों को ठंढा कर देना, यदि सरकार अत्याचार करे तो उसको शान्ति के साथ सह लेना, उसे रोकने का कोई प्रतिकार न करना, जेल अथवा अन्य जो सज़ा दी जाय उसको चुपचाप स्वीकार कर लेना, और यदि वैसी परिस्थिति आ जाय तो सरकार को कर देना भी बन्द कर देना यही बातें इस आन्दोलन की विधायक थीं। ऐसे विरोध द्वारा सरकार को जनता की इच्छा के अनुसार चलाने के लिए वाध्य करना ही सत्याग्रह-आन्दोलन का स्वरूप है। इसे निःशस्त्र प्रतीकार या निष्क्रिय प्रतिरोध भी कहते हैं। इस आन्दोलन का दूसरा अंग वहिष्कार था। ( १ ) स्कूल ( २ ) अदालतें ( ३ ) कपड़ा इत्यादि विदेशी माल का वहिष्कार करके मद्य पान आदि व्यसनों से लोगों को निवृत्त करा देना, हिन्दू-समाज में जो पाँच करोड़ अस्पृश्य माने जाते हैं उनकी अस्पृश्यता दूर करके सार्वजनिक राहें, मंदिर, पनघट, स्कूल सभा इत्यादि सभी स्थान सभी के लिए खोल देना और अपना रहन-सहन सादा रख अपने हाथ से सूत कातकर उसका

कपड़ा पहनना आदि बातें महात्मा गान्धी के उपर्युक्त आन्दोलन में शामिल हैं। सन् १९२० में लोकमान्य तिलक परलोक-वासी हुए तब लोकपक्ष का नेतृत्व गान्धी को मिला। इन्होंने ऊपर लिखे अनुसार अपना आन्दोलन चलाया। इससे सरकार की सुधार-योजना का यथावत् प्रभाव जनता पर न पड़ सका।

(३) खिलाफत का आन्दोलन—इसी समय हिन्दू और मुसलमानों में एकता हो जाने का एक और कारण हो गया। महायुद्ध से पहले तुर्की का बादशाह ही सब मुसलमानों का खलीफा अथवा धर्मगुरु समझा जाता था। तुर्की ने जर्मनी का पक्ष लिया था। इससे अंग्रेज़ों ने उसको चारों तरफ से घेर लिया। उस समय भारत के मुसलमानों की अवस्था बड़े पेंच की हो गई और उनको अपने धर्म भाइयों से युद्ध करना पड़ा। बाद को अंग्रेजों के साथ तुर्की की सधि हो गई। इसका निर्णय करने में डेढ़ वर्ष लग गये। यह संधि सन् १९२० के मई मास में हुई। इसके अनुसार अरब, सीरिया, पेलेस्टाइन, मेसोपोटामियाँ तुर्की से छीन लिये। लीग-आव-नेशन्स की आज्ञा से अंग्रेज और फ्रेंचों ने उनपर अधिकार कर लिया। तुर्की के बादशाह को यूरोप से निकाल दिया गया। इससे कास्टेंटिनोपल और खलीफा का सम्बन्ध टूट गया। खलीफा की बादशाही टूट गई। अपने धर्म-गुरु की पुरानी राजधानी टूटने के कारण भारत में मुसलमानों को क्षोभ हुआ और इस खलीफा को फिर से वहाँ बैठाने के लिए वे प्रयत्न करने लगे। मुसलमानों को इस मनोवृत्ति को देखकर महात्मा गान्धी ने उनके नेताओं को अपने सत्याग्रह के आन्दोलन में शामिल किया। दोनों समाजों ने यह निश्चित किया कि जब तक जलियाँवाला-हत्याकाड के

अपराधियों को सरकार दण्ड न दे तव तक नवीन सुधारों का वहिष्कार किया जाय, सरकार के साथ किसी प्रकार का सहयोग न किया जाय, और ख़िलाफ़त के आन्दोलन में हिन्दू मुसलमानों का साथ दें। इस प्रकार दोनों ने एक मत होकर गान्धी के आन्दोलन को आगे बढ़ाया और सरकार का विरोध किया। सन् १९२० के सितम्बर मास में कलकत्ते में राष्ट्रीयसभा और मुस्लिमलीग के संयुक्त विशेष अधिवेशन हुए। उनमें दोनों ने असहयोग करने का निश्चय किया और उसी निश्चय को आगे दिसम्बर में होनेवाले उसके नागपुर के अधिवेशनों में क़ायम रक्खा। इसके अलावा "उपनिवेशों के आधार पर साम्राज्यन्तर्गत स्वराज्य मिलने का राष्ट्रीयसभा का जो उद्देश सन् १९०८ में निश्चित किया गया था वह नागपुर में बदल दिया गया और उसमें से "साम्राज्यन्तर्गत" शब्द निकाल दिये गये। अर्थात्, दूसरे शब्दों में, निश्चित हुआ कि आवश्यकता पड़ने पर ब्रुटिश-साम्राज्य से सदैव के लिए सम्बन्ध तोड़ने में कभी आगा-पीछा न किया जायगा। राष्ट्र सभा में यह निश्चित होने पर अंग्रेज़ी राष्ट्र और भारत-सरकार दोनों ही भारतीयों पर रुष्ट हो गये। ऐसी स्थिति में जिस समय सन् १९२१ में नवीन सुधार-कानून का उपक्रम करने के लिए ड्यूक-आव-कनाट भारत में आये, उस समय भारतीयों ने उनके स्वागत में भाग नहीं लिया। तब बाद को गवर्नर-जनरल ने गान्धी से भेटकर उनसे अपना सत्याग्रह बंद करने के लिए कहकर एक सर्वदल-सम्मेलन ( राउंड-टेबुल-कान्फरेंस ) बुलाने के सलाह दी। इधर जनता ने भी ऐसी सर्वदल-समिति का एक अधिवेशन बम्बई में किया। इसके अध्यक्ष सर शंकरन

नायर बने। ये सर शंकरन नायर पहले गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी-कौंसिल के सभासद थे और पंजाब के दंगे के सम्बन्ध में सरकारी नीति से नाराज़ होकर उन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया था, लेकिन मतभेद अधिक होने से बम्बई की यह सर्वदल-समिति टूट गई। तब बाद को वर्त्तमान स्वराज्य-दल की स्थापना हुई।

सरकार और जनता की परस्पर बिगड़ती ही गई। सन् १९२२ के आरंभ में जिस समय प्रिंस-आव-वेल्स भारत में आये, उस समय बम्बई तथा अन्य स्थानों में उनका बहिष्कार किया गया। उस समय बम्बई में दंगा भी हो गया। इसलिए सरकार ने गांधी को गिरफ्तार कर प्रतिबंध में रक्खा। अत नेता के न होने से आन्दोलन ठंढा हो गया। इधर स्कूल व अदालतों का बहिष्कार भी असम्भव समझा गया। केवल कपड़े के बहिष्कार के सम्बन्ध में अनेक लोगों ने चरखा चलाकर स्वयं सूत कात खादी पहननी शुरू की। गान्धी की इस शिक्षा को बहुतेरे लोगों ने स्वीकार किया और उसका सम्बन्ध राष्ट्रीय सभा में भी पहुँचा। बाद को सन् १९२३ में तुर्को ने पक्का करके राज्यक्रान्ति की और ख़लीफा को पदच्युत करके मुस्तफा कमालपाशा को अध्यक्ष बनाकर अंगोरा में प्रजासत्तात्मक राज्य की स्थापना थी। इससे ख़िलाफत का प्रश्न अपने आप हल हो गया और हिन्दू मुसलमानों में जो परस्पर ऐक्य था वह नष्ट हो गया। गान्धी का भी बाद को कैद से छुटकारा हुआ। हिन्दुओं में अनेक जातियाँ होने के कारण और इसी प्रकार भारतीयों में मुसलमान, ईसाई व पारसी इत्यादि अनेक विभिन्न धर्मी लोगों की खिचड़ी होने से राष्ट्रीयसभा के

उद्योग में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती, अर्थात् उसका प्रयत्न एकमुखी नहीं हो पाता। हिन्दुओं के अलावा जो लोग इस देश में बसे हैं उनमें इस देश के प्रति यथावश्यक प्रेम नहीं दिखलाई पड़ता है।

(४) स्वराज्य-दल, मुडीमैन-कमेटी—गान्धी के बहिष्कार और सत्याग्रह के आन्दोलन विफल हो जाने पर राष्ट्रीय सभा में दो दल खड़े हुए। सरकार पर किसी बात का प्रभाव नहीं पड़ता तो कौंसिलों में घुसकर वहीं सरकार का विरोध किया जाय, ऐसा कहनेवालों के दल का नाम स्वराज्य-दल पड़ा। और जिन्होंने पहले की भाँति निर्वाचन में न खड़े होकर उनका पूर्ववत् बहिष्कार करना ही अपना कर्त्तव्य समझा उनका दल सत्याग्रही दल कहलाया। सन १९२३ में एसेम्बली व प्रान्तीय कौंसिलों का नवीन चुनाव हुआ। इस चुनाव में देश ने स्वराज्य दल का साथ दिया। इससे राष्ट्रीय सभा की नीति उनके हाथ में आ गई (१९२५)। स्वराज्य-दल के अभिमानी विट्ठल भाई पटेल बड़ी व्यवस्थापिका सभा के सदस्य चुने गये और बाद को उसके अध्यक्ष भी बन गये। सुधारों का निर्माण लार्ड चेम्सफोर्ड के समय में हुआ, लेकिन उस विकट परिस्थिति में सुधारों को अमल में लाने का भार लार्ड रेडिङ्ग पर पड़ा।

इंग्लैंड में सन् १९२४ में मजदूर दल को प्राधान्य मिलने पर वहाँ "लेबर गवर्नमेंट" स्थापित हुई। उस समय स्वतन्त्रता का परिष्कार करनेवाला लार्ड आलिवर भारत मंत्री बना। उसे भारतीयों के साथ विशेष सहानुभूति होने के कारण उसके अधिकारी

रूढ़ होने पर स्वराज्य की गति तनिक अधिक तेज़ हो गई। अंग्रेज़ी नौकरशाही ने आन्दोलन किया कि स्वराज्यपक्ष राजद्रोही है। लेकिन लार्ड आलिवर ने कहा कि स्वराज्य दल राजद्रोही नहीं है, उसकी पद्धति नीति-युक्त है। उसी समय से स्वराज्य दल का कार्य बड़ी मज़बूती से होने लगा। यह मज़बूती इतनी बढ़ी कि बड़ी व्यवस्थापक सभा में लोक पक्ष की बार-बार जीत होने लगी और सरकारी पक्ष की हार हुई। सरकार का कहना था कि प्रस्तुत क़ानून के अनुसार दस वर्ष तक कोई परिवर्त्तन होने का नहीं। तब जनता के प्रतिनिधियों ने यह माँग पेश की कि द्विविध शासन बिलकुल निरुपयोगी है, उसे नष्ट कर प्रान्तीय सरकारों को बिलकुल स्वतन्त्रता दे दी जाय। इस विवादात्मक प्रश्न पर विचार करने के लिए एक जाँच-कमेटी बैठाई गई। इस जाँच कमेटी के अध्यक्ष सर मुडीमेन बने। इस समिति के अपनी जाँच प्रकाशित करने के पहले ही विलायत का लेबर मंत्रिमण्डल टूट गया और उसके स्थान पर कंजरवेटिव दल अर्थात् अनुदार ने अपना मन्त्रिमण्डल बनाया। इसमें भारतीयों को लाभ की बहुत कम आशा रह गई। मुडीमेन-समिति में भी मतभेद हो गया। इससे भारतीय सदस्यों के मत और सरकारी मत में परस्पर बड़ा विरोध था। तब उस समय इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए सन् १९२५ की गरमियों में लार्ड रेडिङ्ग को सरकार ने लंदन में बुलाया। वहाँ विचार होने पर भारत मंत्री लार्ड बर्कनहेड ने यह प्रकाशित किया कि दस वर्ष पूरे होने से पहले शासन व्यवस्था में किसी प्रकार का फेरफार नहीं हो सकता। जो सुविधाएँ पहले दी जा चुकी हैं उनका उपयोग जनता सरकार के साथ सहयोग करके करे।

इसके बाद आगे का मार्ग देखा जायगा। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने अपना मनोभाव बार बार प्रकट किया। सुधार-क़ानून की पहली क़िश्त की अवधि सन् १९२१ में पूरी होती है। प्रांत तीन वर्ष का नवीन चुनाव होता है। इस नियम के अनुसार सन् १९२६ के अन्त में एसेम्बली और कौंसिल का निर्वाचन हुआ। उसमें लोकपक्ष के प्रतिनिधियों में सरकार का विरोध पहले के ही समान है। सन् १९२६ के एप्रिल मास में रेडिङ्ग का कार्य काल समाप्त हुआ और उनकी जगह पर पहले के सर चार्ल्स वुड के नाती एडवर्ड वुड को लार्ड अर्विन की उपाधि मिली और वह भारत का गवर्नर-जनरल बनाया गया। भारत में खेती ही लोगों का मुख्य धंधा है। उसमें लोगों को जैसा लाभ होना चाहिए, वैसा नहीं होता। इस सम्बन्ध में विशेष उपाय करने का निश्चय भारतमंत्री और लार्ड अर्विन ने मिलकर किया। और इस विषय की जाँच करने के लिये बादशाह ने एक कमीशन बैठाला। वह अभी भारत में जाँच कर रहा है (१९२७)।

(५) नरेन्द्र-मंडल—भारत में छोटे बड़े ७३१ भारतीय राज्य ब्रिटिश-सरकार के अधीन हैं। सारे देश का ⅓ भूभाग और सारे देश की जन-संख्या का चतुर्थांश भाग इन देशी रजवाड़ों के अधीन है। इन सब रजवाड़ों में निजाम का राज्य बहुत बड़ा है। भीतरी मामलों में वह बहुत कुछ स्वतंत्र है। लेकिन सब के लिए एक ही कानून लागू नहीं है। अंग्रेज़ी सत्ता जैसे-जैसे बढ़ती गई और देशी रजवाड़ों का उससे जैसा सम्बन्ध होता गया वह वैसा ही आज तक बना हुआ है। अर्थात् कई देशी रजवाड़े पंजाब के सिक्ख, सिन्ध के अमीर इत्यादि अंग्रेजों ने

लड़ाई लड़कर जीते हैं। कुछ ऐसी भी रियासतें हैं, जिनका निर्माण ही अंग्रेज़ों के समय में हुआ है, जैसे मैसूर, काश्मीर इत्यादि। कई ऐसी भी रियासतें हैं जिनकी मित्रता शुरू से ही अंग्रेजों के साथ होगई थी। जैसे बड़ोदा, कोल्हापुर, हैदराबाद इत्यादि। राजपूतों की रियासतें बाद में विशेष सधियों द्वारा ब्रिटेन के अधीन हुईं। वास्तव में चाहे किसी रियासत के साथ मित्रता की संधि हो, चाहे किसी को जीतकर संधि की गई हो—सभी रियासतो पर इस समय ब्रिटिश सत्ता का समान अधिकार है। जिस रियासत के साथ जैसी संधि है, उसके अनुसार कार्रवाई की जाती है। यदि किसी रियासत में गड़बड़ या कुप्रबन्ध हो तो उसमें हाथ डालकर उसे सुव्यवस्थित करने के अधिकार को अवश्य ही ब्रिटिश सरकार काम में लाती है। विदेशी राज्यों के साथ व्यवहार स्थापित करने का अधिकार किसी राज्य को नहीं है। पहले अनेक रियासतें गोद लिये वारिसों को नामजूर कर जब्त कर ली गईं। लेकिन सन् १८५८ से उत्तराधिकारी न होने पर किसी रियासत के जब्त न किये जाने का वचन महारानी विक्टोरिया ने अपने संदेश में दिया है। तैनाती फौज की पद्धति सब रियासतों के लिए जारी की गई। तब दोनों पक्षों का व्यवहार सफल करने के लिए सरकार ने सभी रियासतों में रेजीडेंट की नियुक्ति की। यह सरकारी पदाधिकारी है। रेजीडेंट को स्वतंत्र अधिकार कुछ भी न था। लेकिन उसकी सिफारिश पर ही राजा और राज्य दोनों का हिताहित निर्भर रहने से अप्रत्यक्ष रूप में उसका दबदबा बहुत बढ़ा। राजा जरा रोबदार हुआ कि उसके और रेजीडेंट के बीच में खटक गई, और राजा कुछ नरम हुआ कि

उसको चाहे जिस तरफ दबा घुमाकर अपना मतलब सिद्ध करने में सरकार ने कमी नहीं की। मुख्यतः अंग्रेज़ सरकार के हित को कहीं बाधा नहीं पहुँच सकती। यह फल सरकार को प्रत्येक रियासत में अपने रेज़ीडेंट तैनात करने से मिला है। साम्राज्य पर संकट आने पर अथवा उसके जरूरत के समय जिस बात की आवश्यकता सरकार को पड़े तो जिस रीति से शक्य हो उस रीति से इन रियासतों-द्वारा पूरी की जासकती है। किसी सामान्य विषय पर, जिसमें सब का हित हो, उसको सार्वभौम सरकार ने अपनी अधीनता में रक्खा है। रुपया, नमक, तार, डाक, फ़ौज, हथियार, छापेखाने इत्यादि विषयों में सरकार के चलाये नियम सर्वत्र एक समान लागू रहते हैं। विदेशी आक्रमणों से सब राज्यों की रक्षा ब्रिटिश छत्र के नीचे आने से अपने आप ही होती है। इसके ख़र्च के लिए एक पाई भी सरकार इन रियासतों से नहीं लेती, इसी प्रकार रियासतों में बलवे या दंगे हो जाने पर उनको शान्त करने का भी काम सरकार ही करती है, अर्थात् भीतरी शासन के अलावा दूसरा कोई भी कार्य इन रियासतों को नहीं करना पड़ता, अर्थात् बाहरी अथवा परस्पर में किसी से युद्ध करने की आवश्यकता नहीं, निश्चित संख्या से अधिक संख्या में सेना रखने का अधिकार उन्हें नहीं है अथवा रियासतें हथियार या युद्धोपयोगी सामग्री तैयार नहीं कर सकतीं। इसलिए रियासतों की निज की सेना केवल प्रदर्शन या शोभा के लिए है। दूसरों की रियासत से सम्बन्ध करने अथवा वहाँ रहने के लिए राजाओं को सरकार की परवानगी लेनी पड़ती है। आपसी झगड़े का जो निपटारा सरकार करे वही इन राजाओं को मानना पड़ता है। इस दृष्टि से सरकार और रियासतों का शासन एक समान ही है। रियासतों

में उनकी पदाधार और श्रेणी के अनुसार उनका गट बाँध दिया गया है। उसका ही पालन शासन-सम्बन्धी कार्यों में किया जाता है। रियासत की भीतरी व्यवस्था अथवा असंतोष बढ़ने पर केवल पहले की संधियों के अनुसार व्यवहार किया जाय अथवा सरकार बीच में पड़कर अव्यवस्था को दूर कर दे इस विषय का एक प्रश्न हाल में उठा था। इसका स्पष्ट निर्णय लार्ड रेडिङ्ग ने सन् १९२६ में यह किया कि सब प्रजा की यथा योग्य रक्षा करने तथा उसकी अभिवृद्धि करने का भार सार्वभौम सरकार पर अन्तत निर्भर है। इस कर्त्तव्य का पालन करने में किसी संधि के किसी नियम का ध्यान न रक्खा जायगा। सभी रियासतों के मान व उनके पद की रक्षा करने में सरकार पूर्ण रूप से दक्ष है। ब्रिटिश-भारत में जनता को अपना शासन करने का विशेष अधिकार खुल्लम-खुल्ला देने का उपक्रम सरकार ने किया है। सरकार की इच्छा है कि इसी परिमाण में रियासतें भी अपने अपने राज्यों में जनता को वैसे ही अधिकार दें। महायुद्ध में इन रियासतों ने जो भारी सहायता सरकार की की, उसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। युद्ध के अनन्तर लोगों को स्वराज्य का अधिकार मिलने की आवश्यकता विदित हुई। यही आवश्यकता इन रियासतों में भी उपस्थित हुई। लेकिन नौकरशाही के लिए इस तृतीयांश भारत का इतना आधार अति महत्व का प्रतीत होने से, इन रियासतों के कारबार में बाहरी आन्दोलनों का सम्पर्क न होने देने के लिए "प्रिंसेस-प्रोटेक्शन बिल" "अर्थात् रियासत-दारों के बचाव का कानून" बनाया गया। सारांश यह कि भारत की ब्रिटिश प्रजा व देशी रजवाड़ों की प्रजा का एक होना कठिन है। महायुद्ध में जो सहायता इन देशी रजवाड़ों ने की उसके बदले में सरकार ने उनको पूर्ण अन्तर्गत स्वातन्त्र्य दे-

कर उनका प्रेम-सम्पादन किया। प्राय उन पर तनिक भी आँच न आने देने का प्रयत्न सरकार बराबर करती है। इसके साथ ही साथ सन् १९१९ के कानून द्वारा "नरेन्द्र-मण्डल" नाम की सब राज्यों के राजाओं का हिताहित देखनेवाली एक परिषद् बनाई गई है। इसमें अनेक प्रमुख रियासतें भी सम्मिलित हैं। इस परिषद् की दो-चार बैठकें हो चुकी हैं। लेकिन इनसे कोई विशेष कार्य निष्पत्ति होने का मौका आज तक नहीं आया।

यह नरेंद्र मंडल सन् १९२१ में ड्यूक-आव कनॉट ने खोला। इसके खुलने से परस्पर सलाह-मशविरा करने का सुभीता इन राजाओं को मिल गया है। बीकानेर के राजा इन सब के नियंता बनाये गये हैं। उनकी सहायता से छः सदस्यों का एक कार्यकारी मंडल बना है। यह मंडल आवश्यकतानुसार अपनी बैठकें करके उपस्थित प्रश्नों पर विचार करके उसकी सूचना सरकार को देता है।

( ६ ) राज्य-व्यवस्था—ऐतिहासिक दृष्टि से शासन-सम्बन्धी क्या-क्या परिवर्तन शासन में हुए, उनका वर्णन अब तक किया जा चुका है। लेकिन इस वर्णन से कितने ही शासन-सम्बन्धी विषयों का स्वरूप-ज्ञान यथावत् नहीं होता। जनता को अपना शासन स्वयं करना चाहिए, इस नवीन तत्व का प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायगा। अतः जो आज विद्यार्थी हैं वे कल भारत के नागरिक बनेंगे। इस कारण उन्हें प्रारम्भ से ही अपने अधिकार व अपनी ज़िम्मेदारी जान लेनी चाहिए। इसलिए विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए यह विषय मुख्य है। इसके लिए यहाँ कुछ महत्व की बातें दी जाती हैं।

१—ब्रिटिश पार्लामेंट—इंग्लैंड का शासन पार्लामेंट

सभा की इच्छा के अनुसार राजा द्वारा चलाया जाता है। पार्लामेंट में एक लार्डों की सभा, दूसरी सामान्य प्रजा की सभा, इस प्रकार दो सभाएं हैं। सामान्य सभा में ६१५ लोक-निर्वाचित सदस्य हैं। इनमें अधिकारी दल की ओर के २१ सदस्यों का एक प्रधान मंडल बनाकर मंडल द्वारा राज्य का समस्त कारबार चलाया जाता है। इस प्रधान मंडल का अध्यक्ष ही प्रधानमंत्री बनता है और बहुमतवाले दल का नेता होता है। इसी मंडल में भारत के राज-शासन का निरीक्षण करनेवाला भारत-मंत्री भी एक सदस्य होता है। उसकी सहायता के लिए ८ से १२ सदस्यों तक की एक परामर्श दात्री-समिति भी रहती है। इस कौंसिल में आजकल ३ भारतीय सदस्य रहते हैं। वास्तव में भारतमंत्री का भारत के शासन में कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं। अधिकार पार्लामेंट और राजा का रहता है, लेकिन इस अधिकार के अनुसार जो कुछ कार्रवाई होती है वह केवल इसी भारत मंत्री के द्वारा ही हुआ करती है। जमा खर्च के विषय में उसे अपनी परामर्श-दात्री समिति के ही अनुसार चलना पड़ता है। अन्य बातों में वह अपनी समिति के अनुसार न भी चले तो कोई रुकावट नहीं पड़ती। पूरे भारत की मिलकियत या उसका शासन प्रबन्ध करने की सत्ता सर्वथा ब्रिटिश पार्लामेंट के ही हाथ में है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए।

२—कानून—किसी भी नवीन कानून को बनाने या पुराने कानून को तोड़ने का अधिकार बड़ी व्यवस्थापिका सभा को है। ऐसे कानूनी मसविदों पर विचार करने के लिए सभा के सामने पेश करने की आज्ञा सरकार से लेनी पड़ती है। सरकार की स्वीकृति मिलने पर वह मसविदा छापकर सभा के

सदस्यों में बाँटा जाता है और तीन बार उस पर सभा विचार करती है। वहाँ उस पर विचार होता है और उसके ऊपर सूचनाओं-उपसूचनाओं के हो चुकने पर उक्त मसविदे से क़ानून बनाया जाता है। कितने ही ऐसे मौक़े आते हैं कि उन मसविदों पर विचार करने के लिए एक उपसमिति बैठाई जाती है। और उस समिति की अनुमति के साथ-साथ उसका विचार सभा में होता है और सभा के बहुमत से वह क़ानून बन पाता है। ऐसे मसविदों के उपस्थित करने का अधिकार सभा के प्रत्येक सदस्य को है। सरकार भी यथावश्यक मसविदे सभा में पेश कर मंज़ूरी ले लेती है। कौंसिल-आव स्टेट तथा एसेम्बली दोनों में से कोई सभा किसी मसविदे पर पहले विचार कर सकती है और पहली विचार करनेवाली सभा में उसकी मंज़ूरी होने पर वह मसविदा दूसरी सभा में रक्खा जाकर मंजूर किया जाता है। दोनों सभाओं में स्वीकृत होने पर वह मसविदा गवर्नर-जनरल की मंज़ूरी के लिए भेजा जाता है। इस प्रकार तीनो की मजूरी मिलने पर वह मसविदा कानून बनता और अमल में लाया जाता है। दोनो सभाओं में मज़ूर होने पर भी नामंजूर करने अथवा उक्त दोनों सभाओं द्वारा अस्वीकृत किये गये प्रस्ताव पर स्वीकृति देने का अधिकार गवर्नर-जनरल को है। दोनों ही सभाएँ एकत्र होकर मतभेद को दूर करती हैं—दोनों ही सभाओं को बरखास्त करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को है।

३—इण्डियन सिविल-सर्विस—जिस समय ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी भारत का शासन करती थी उस समय यहाँ विभिन्न पदों पर काम करने के लिए यूरोपीयों की तैनाती होती थी। उनके नियम, परीक्षा, वेतन इत्यादि के सम्बन्ध में अनेक

सुधार किये गये। अतएव यहाँ का शासन करनेवाले नौकरों की एक विशिष्ट संस्था ही बन गई है। इसे इण्डियन-सिविल-सर्विस कहते हैं। इसकी परीक्षा इंग्लैंड में होती है और इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए व्यक्तियों को यहाँ नौकरी मिलती है। शासन के विभिन्न विभागों में सभी उच्च व महत्व के पदों पर इन लोगों की तैनाती की जाती है। सारा कार-बार बड़ी नेकनियती से इस संस्था द्वारा होने पर इसकी सब जगह बड़ी तारीफ होती है। भारतीय भी इंग्लैंड जाकर इस परीक्षा में बैठते हैं और योग्यता के अनुसार उनका पद मिलते हैं। भारतीयों को उत्तरोत्तर अधिक पद देने का निश्चय अब सरकार ने किया है। इसके अलावा प्रत्येक प्रान्त में प्राविंशियल इन्डियन-सिविल सर्विस है जो बिलकुल निम्न नौकरियों की सबार्डिनेट सर्विस है। प्रत्येक के नियम और वेतन अलग अलग निश्चित हैं। इधर अब सिविल-सर्विस की परीक्षा भारत में भी ली जाने लगी है।

४—**फौज, जलसेना और विमान**—देश की रक्षा करने के लिए फौज और जलसेना की योजना पहले से ही है। इधर हवाई जहाज भी रक्खे जाने लगे हैं। भारत के पास कोई स्वतन्त्र जल सेना नहीं है, ब्रिटिश जल सेना की ही एक शाखा यहाँ पर तैनात है। फौज के पैदल, घुड़ सवार, तोप-खाना और इञ्जीनियर आदि चार मुख्य अंग हैं। इन सब का बड़ा अफसर सेनापति कमांडर इन-चीफ है। वह बड़ी व्यवस्थापिका सभा और गवर्नर जनरल की कार्य-कारिणी कौंसिल का एक सदस्य है। इस सम्पूर्ण सेना के चार विभाग किये गये हैं। उनके रहने का स्थान उत्तर में मरी, दक्षिण में पूना, पूर्व में नैनीताल और पश्चिम में क्वेटा है। कुछ भारतीय स्वयं-सेवक तैयार

और भारतीय लोगों को फ़ौज के पदाधिकारी बनाने की योग्य शिक्षा देना धीरे-धीरे शुरू किया गया है। आजकल सम्पूर्ण सेना का ख़र्च ६० करोड़ रुपया वार्षिक है। भारतीयों की भरती भारतीय सेना में करने की जो माँग जनता करती है उसका नाम इण्डियनाइजेशन अर्थात् भारतीयकरण है।

५—न्याय-विभाग—इसमें दीवानी और फ़ौजदारी दो भिन्न भिन्न विभाग हैं। दीवानी-विभाग में मिलकियत, ज़मीन के अधिकार अथवा धन-सम्बन्धी झगड़ों का निर्णय किया जाता है। फौजदारी में हत्या करने, लड़ाई लड़ने, जीवन को हानि पहुँचाने के मुक़द्दमे तय किये जाते हैं। इन अपराधों को रोकने अथवा घटना हो जाने पर उसकी तत्काल जाँच करने के लिए स्थानीय अथवा दौरा की अदालतें तैनात हैं। इनके अपराधों के प्रमाण के अनुसार कम या अधिक पहले, दूसरे या तीसरे दर्जे के अधिकार दिये गये हैं। इनके अलावा ज़िले भर के लिए शहर-मजिस्ट्रेट तैनात हैं। कितने ही स्थानों में सामान्य नागरिकों को इस काम के लिए अधिकार दिये गये हैं। दीवानी और फौजदारी-क़ानून सरकार के बनाये रहते हैं। इनके अनुसार न्याय करने का काम अदालतों या मजिस्ट्रेटों-द्वारा होता है। सब अदालतों के ऊपर प्रान्त में एक हाईकोर्ट रहता है। इसके निर्णय के विरुद्ध अपील इंग्लैंड में राजा व उनकी प्रिवि-कौंसिल के सामने पेश की जाती है। मुख्यत न्याय के सब काम काजों की देखभाल इस हाईकोर्ट-द्वारा ही होती है।

६—पुलिस व जेल—न्याय-विभाग को पुलिस की विशेष आवश्यकता है। जिस प्रकार विदेशों से देश की रक्षा करने के

लिये फौज की आवश्यकता है, उसी प्रकार देश में जनता के जीवन की रक्षा व उनके माल मता की रक्षा करने का भार भी सरकार पर ही है। इसके लिए पुलिस का विभाग खुला है। चोरी, हत्या इत्यादि न होने देना, अपराधियों को पकडकर उनके अपराधों की जाँच करके अदालतों द्वारा उन्हें दण्ड मिलना, मार्ग में यात्रा के लिए तथा सभी स्थानों में हरेक प्रकार का प्रबंध करना आदि काम पुलिस का है। गुप्तरीति से अपराधों की जाँच करने के काम के लिए गुप्त पुलिस विभाग अलग नियत है। इसी प्रकार सरकार के विरुद्ध बागी होने तथा अनेक प्रकार के अन्य अनिष्टकारी आन्दोलन खडे करनेवालों पर निगाह रखने तथा उन्हें अदालत में पेश करने के लिए क्रिमिनल इनवेस्टिगेशन डिपार्टमेंट अर्थात् सी० आई० डी० बनाई गई है। पुलिस की व्यवस्था के काम व अधिकार इत्यादि के विषय में समय समय पर नवीन कानून बने। परिस्थिति के अनुसार सरकार उसमें व्यवस्थापिका सभाओं के द्वारा आवश्यक फेर फार कर लेती है। रेलों में अपराधों को रोकने के लिए रेलवे-पुलिस तैनात की गई है। सीमान्त प्रदेश में प्रबन्ध रखने के लिए कहीं-कहीं युद्ध का उपक्रम रचना पडता है। इससे वहाँ फौजी पुलिस है। इसके अलावा जब देश में भयकर दंगे होते हैं तब पुलिस की सहायता के लिए फौज भी उसका साथ देती है। अपराधियों के दंडित किये जाने पर उन्हें दण्ड भुगतने के लिए जेलें बनाई गई हैं। इधर जेलों में अनेक सुधार करके अपराधियों के साथ क्रूर व्यवहार न होने तथा उन्हें कुछ अच्छा काम सिखाने का प्रयत्न चल रहा है। इसी प्रकार जेलों में सफाई, दवादारू, शिक्षा इत्यादि के सम्बन्ध में उपयुक्त सुधार सरकार कर रही है।

७—आरोग्य और औषधोपचार—रोगियों को समय पर दवा देकर अच्छा करने के लिए दवाखाने खोले गये हैं। इनमें औषधि व जर्राही दोनों ही तरह से शरीर को आराम पहुँचाने के लिए डाक्टरों की तैनाती की गई है। बड़े बड़े शहरों में दवा करने के लिए अस्पताल खुले हैं, स्त्रियों के लिए प्रसूति-गृह भी स्थान-स्थान पर खुले हुए हैं। अर्थात् जितना हो सकता है उतना लोगों के शारीरिक रोगों को दूर करने की सुविधा कर दी गई है। इस सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल अथवा उनकी स्त्रियों ने अधिक ध्यान रक्खा है। इससे धनिक लोगों से चंदा वसूल कर अनेक प्रकार के सुभीते लोगों के लिए कर दिये गये हैं। लड़कों की रक्षा करने के लिए सरकार विशेष प्रयत्न कर रही है। इनके अतिरिक्त प्लेग, क्षय, मेलेरिया, श्वानदंश इत्यादि बड़े बड़े रोगों को दूर करने के लिए भी अलग प्रबन्ध है। लेकिन सब की जड़ स्थान की अस्वच्छता ही है। उसे दूर करने के लिए आरोग्य-विभाग (Health Department) अलग खोले गये हैं। इस विभाग में पीने का पानी, मैला, गटर इत्यादि के काम हैं। इनके अलावा लोकोपद्रवी धंधे, अस्वच्छ मकान, स्मशान-भूमि, अस्वच्छ अन्न, चेचक के समान छुआछूत से होनेवाले रोग इत्यादि का प्रबन्ध इसी विभाग को दिया गया है।

शिक्षा, औषधोपचार और आरोग्य इत्यादि विभागों से लोगों को प्रत्यक्ष और अत्यधिक लाभ पहुँचता है। पब्लिक-वर्क्स अर्थात् सार्वजनिक इमारतों के बनाने का काम करने के लिए स्वतंत्र विभाग है। उसके द्वारा बनाये गये मार्ग, पुल, धर्मशालाएँ इत्यादि जनता के उपयोग में आती हैं। खेती का सुधार, मद्यपान प्रतिबंध, जङ्गल का महकमा इत्यादि अनेक विभाग

हैं। इन सब का अध्ययन करने से समग्र भारतीय शासन में सरकार का कितना प्रभाव पड़ता है और सरकार की निगाह चारों तरफ कितनी तेज है, यह बात जानी जा सकती है। समग्र शासन को चलाने के लिए प्रत्येक जिले में कौन-कौन सरकारी पदाधिकारी रहते हैं, यह जानने के लिए एक कोष्ठक परिशिष्ट में दिया गया है। इसे देखने से विद्यार्थी जिले के शासन को स्वयं समझ लें।

८—स्थानीय स्वराज्य—लोगों को अपना शासन स्वयं अपनी संघ शक्ति द्वारा चलाने के लिए विभिन्न स्थानों में विशिष्ट संस्थाएँ हैं। इनके द्वारा सार्वजनिक हित के अनेक काम करने का अधिकार सरकार ने लोगों को दिया है। लोगों की आवश्यकताएँ व अड़चनें इतनी हैं कि उनके ही स्थानों में, उनकी सुविधा के अनुसार जैसा प्रबन्ध हो सकता है, वैसा प्रबन्ध दूर रहनेवाले सरकारी पदाधिकारी नहीं कर सकते। इसलिए उनकी कठिनाइयों को दूर करने का अधिकार उन्हें ही देने पर उन्हें कोई शिकायत करने का मौका नहीं मिलता और इससे उनको राज्य चलाने का व लोक निर्वाचित संस्था के चलाने का अनुभव भी मिलता है। यह विषय बड़े महत्व का है। प्राथमिक शिक्षा, पुस्तकालय, मार्ग, जल प्रबन्ध, रोगों का निवारण, रोशनी, गंदगी दूर करने आदि की व्यवस्था, दवाखाने, दूध देनेवाले जानवरों की निगरानी—इस प्रकार के अनेक छोटे-मोटे परन्तु सार्वजनिक हित के विषय इस संस्था को सौंपे गये हैं। ये संस्थाएँ तीन दर्जों में बटी हैं। बड़े शहरों की संस्थाओं को म्युनिसिपैलेटी कहते हैं, परन्तु राजधानी की म्युनिसिपैलिटी को कार्पोरेशन कहते हैं। प्रत्येक बड़े गाँव में एक ग्राम पंचायत रहती है। इन पंचायतों द्वारा छोटे-छोटे झगड़ों

का निर्णय होता है। छोटे-छोटे गाँवों की सार्वजनिक बातों के लिये प्रत्येक ताल्लुके या जिले में तालुका या ज़िला-बोर्ड खुले हैं।

स्थानीय स्वराज्य का पहले पहले आरम्भ यद्यपि कम्पनी के समय में हुआ, तथापि उसकी योजना ज़ोरों के साथ लार्ड रिपन के समय में हुई थी। इसके बाद लार्ड मिन्टो के समय में भी इसका थोड़ा बहुत प्रचार हुआ। लेकिन इधर शासन-सम्बन्धी सुधारों के अमल में आने पर उपर्युक्त संस्थायें बहुत कुछ लोकमतानुसारिणी हो गई हैं। अर्थात् इनमें से अधिकांश संस्थाओं के तीन-चौथाई सदस्य लोकनिर्वाचित होने से अध्यक्ष व इतर अधिकारी तैनात करने का अधिकार भी मताधिक्य द्वारा उनके हाथ में है। प्रान्तीय राजधानियों में कार्पोरेशन का अध्यक्ष बनना एक बड़े महत्व की बात समझी जाती है। शहर में आनेवाले माल पर चुङ्गी वसूल करना, ज़मीन व घर बार का महसूल उगाहना, व्यापार धंधों और बाज़ार से टैक्स वसूल करना, राह की दस्तूरी, गाड़ियों का टैक्स, पानी की फीस, शालाओं की फीस, और सरकार से मिलनेवाली सहायता— इस प्रकार इन संस्थाओं को धन मिलने के साधन हैं और इनसे जो आमदनी होती है उससे इन संस्थाओं का ख़र्च चलता है। इनका काम जैसी अधिक योग्यता के साथ किया जायगा, वैसे ही अधिक अधिकार इनको सौंपने का इरादा सरकार करती है जिससे जनता को अपना शासन स्वयं अपने द्वारा करने की सुविधा मिलने लगे। बड़े-बड़े शहरों में विशेष कामों के लिए सरकार स्वतन्त्र संस्थायें स्थापित करती है। वे उपर्युक्त संस्थाओं से मिलती-जुलती हैं। बन्दरगाहों की व्यवस्था के लिए पोर्ट ट्रस्ट, बस्तियों को बढ़ाने के लिए इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, अथवा

पश्चिमी समुद्र को पाटने के लिए येकवेरिक्लेमेशन इत्यादि की गिनती भी ऐसी ही संस्थाओं में होती है। आजकल भारत में ७५० म्युनिसिपेलिटियाँ हैं। अंग्रेजी अमलदारी शुरू होने से पहले भी यहाँ लोकनिर्वाचित ग्राम-सस्थाएँ थीं। ये उपर्युक्त सभी काम उनके द्वारा होते थे। इस प्रकार अधिकाश कारवार उन्हीं के हाथों में था। इन ग्राम-सस्थाओं या गाँव की पचायतों का फिर से निर्माण किये जाने का प्रयत्न आजकल चल रहा है। सहकारी बैंक से, अर्थात् एक-दूसरे की जामिनगरी द्वारा, लोगों को क़र्ज मिल जाता है। इससे अनेक उपयुक्त लोकोपयोगी काम करने की योजना आजकल सारे देश में जारी है। पाठशालाओ में 'बालचर' अर्थात् ब्वाय स्काउट की शिक्षा देने का प्रारम्भ अनेक स्थानो में हो गया है। युनिवर्सिटियों में फौजी शिक्षा के क्लास प्रारम्भ हो गये हैं। इनको युनिवर्सिटी-ट्रेनिङ्ग-कोर ( यू० टी० सी० ) कहते हैं।

७—ब्रिटिश साम्राज्य—अर्वाचीन काल में ससार में अनेक साम्राज्यो का प्रसार हुआ। रोमन बादशाही, अरबी खिलाफत, यूरोप में शार्लमेन का साम्राज्य और भारत में मुगल बादशाही सामान्यत समकालीन हैं। प्राचीन काल म अशोक का साम्राज्य अथवा उसके बाद गुप्त, हर्ष इत्यादि के राज्य, भारत में उदय हुए। परन्तु आजकल के राज्य तन्त्र से यदि उनकी तुलना की जाय तो पता चलेगा कि जितनी बातें प्रस्तुत राज्य तन्त्र की विदित हैं उतनी बातें अन्य राज्यों की नहीं विदित हैं। इसी प्रकार चीन की बादशाही हजारों वर्ष रही, उसकी भी अनेक बातें अज्ञात हैं। इन सब से ब्रिटिश साम्राज्य की अनेक बात बिलकुल भिन्न हैं। एक तो यही कि यह साम्राज्य अविच्छिन्न

नहीं है, पृथिवी के अनेक भूभागों, द्वीपुओं, समुद्रतटों पर इस साम्राज्य का विस्तार है। इस साम्राज्य में सूर्य कभी नहीं अस्त होता, अर्थात् इसके किसी न किसी भाग पर हर समय सूर्य का प्रकाश पड़ता रहता है। मूल ब्रिटिश लोगों की संख्या केवल चार करोड़ है। लेकिन वे ४४ करोड़ जन-संख्या का शासन करते हैं। देश-विस्तार की दृष्टि से उनका देश केवल एक लाख वर्ग मील है, लेकिन उनकी सत्ता एक करोड़ वर्ग मील के क्षेत्र पर है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इंग्लैंड की मूल-शक्ति उसके जहाज़ी बेड़े की शक्ति में है। जहाज़ी सेना ही इस बड़े साम्राज्य की रक्षा करती है। इस साम्राज्य से हर काम में अपने बुद्धि-सामर्थ्य से शासन चलाने का भरपूर क्षेत्र मिलने से, आज डेढ़ सौ वर्षों के अनुभव से, दूसरों के देशों पर चतुरता से राज्य करने की शक्ति उन्हें प्राप्त हो गई है। भारतीय व अन्य विदेशी लोगों को क़ानून-द्वारा निशस्त्र करने से उन पर शासन करने की सभी कठिनाइयाँ दूर हो गईं। सारांश यह कि अन्यान्य साम्राज्यों से यह साम्राज्य बिलकुल भिन्न है। पहले के साम्राज्यों में एक अपना देश और दूसरा कर देनेवाले माडलिक राजाओं का देश रहता था। इस प्रकार दो प्रकार के देश पहले के साम्राज्यों में रहते थे। परन्तु अंग्रेज़ी साम्राज्य में राज-सत्ता की दृष्टि से ४-५ विभाग हैं। इन सब को समझ लेना मानों अंग्रेज़ों के इन डेढ सौ वर्षों के इतिहास को ही पढ़ लेना है। पहले इंग्लैंड में जन-संख्या बढ़ने से धर्मछल होने लगा। इससे अनेक इंग्लैंड-निवासी एलिज़बेथ के शासन-काल में अमेरिका, इत्यादि देशों में जा बसे। इसके बाद शीघ्र ही ईस्ट-इंडिया-कंपनी स्थापित हुई। उसने लगभग डेढ सौ वर्षों तक व्यापार तथा उपनिवेशों में अंग्रेज़ों की नई बस्ती बसाने का काम करने पर उसकी फ्रेंचों

के साथ अनवन हो गई। सन् १७५६-६२ तक सात वर्ष का युद्ध हुआ। इसमें फ्रांस की हार हुई और अंग्रेजों की समुद्री सत्ता स्थापित होगई। इसके बाद इस शक्ति के बल पर उसने अपना व्यापार, अपने उपनिवेश और राज्य बढाने का प्रारम्भ किया। उपर्युक्त सात वर्षों के युद्ध के बद होने पर उत्तर अमरीका के संयुक्त राज्यों ने इग्लैंड की अधीनता अपने ऊपर से हटा दी और वे स्वतंत्र हो गये। बाद को नेपोलियन के युद्ध में उसकी उन्नति में जो कुछ बाधा पड़ी, उसकी पूर्ति महारानी विक्टोरिया के शासन-काल में पूर्ण हो गई। वर्त्तमान अंग्रेजी-साम्राज्य निम्नांकित सात विभागों में विभक्त है—

१—इग्लैंड, स्काटलैंड, वेल्स—ख़ास स्वामी की मूल मातृभूमि।

२—आयर्लैंड—इसे अब "फ्री स्टेट" कहते हैं। इसे स्वतंत्र राज्य मिला है।

३—स्वतंत्र उपनिवेश—कनेडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, और दक्षिण-अफ्रीका—इनको पूर्ण अन्तर्गत-स्वातन्त्र्य मिला है।

४—क्राउन कालोनीस—माल्टा, जमैका, सीलोन, मलाया इत्यादि, इनका शासन पार्लमेंट द्वारा तैनात किये गये गवर्नर करते हैं।

५—अधीन देश—भारत इत्यादि—ये परतंत्र हैं। अपने अन्तर्गत शासन-स्वतंत्रता चाहते हैं। भारत में ७०० देशी रियासतें हैं, जिन्हें अन्तर्गत-स्वातंत्र्य प्राप्त है।

६—सरक्षित प्रदेश (प्रोटेक्टरेट्स)—इजिप्ट, ब्रिटिश पूर्व अफ्रीका, नैजीरिया इत्यादि। ये विशिष्ट सन्धियों द्वारा इंग्लैंड की अधीनता में आ गये हैं।

७—सधि-प्राप्त प्रदेश (मैंडेटरी रिजेंस)—पेलेस्टाइन, मेसोपोटामियाँ, ये प्रदेश महायुद्ध के अनन्तर लीग-आव-नेशंस की आज्ञा से निश्चित काल तक अंग्रेजों के सुप्रबंध में दिये गये हैं।

यह अपूर्व खिचड़ी ब्रिटिश साम्राज्य की है। भारत में ही वास्तव में उसका साम्राज्य नाम सार्थक होता है। इन सभी का एक ही पद्धति द्वारा अर्थात् पार्लमेंट की सलाह से इंग्लैंड का राजा शासन करता है। इससे अंग्रेज़ों की यह व्याप्ति कितनी प्रचंड है, इसकी क्या कल्पना हो सकती है?

ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति मुख्यतः सामुद्रिक अर्थात् जल सेना पर निर्भर होने के कारण उसके समझने के लिए महासागर उनके किनारे, विभिन्न टापुओं व नाकेबंदी के मौक़ों पर निगाह रखनी चाहिए। सामान्यतः किसी भी दिशा से समुद्र में प्रवेश क्यों न करो, सभी जगह ब्रिटिश-सरकार के जहाज़ी अड्डे मिलेंगे। इंग्लिश चेनेल से अटलांटिक में आकर वहाँ से भूमध्यसागर में प्रवेश करते ही पहले जिब्राल्टर व बाद को माल्टा, सायप्रस और स्वेज़ की नहर उनके ही अधिकार में हैं। उधर दक्षिणी अटलांटिक मे प्रवेश करने पर सेंटहेलिना द्वीप तथा अन्यान्य स्थान अफ़्रीक़ा के पश्चिमी समुद्रों की रक्षा करते हैं। अफ़्रीक़ा के पूर्वी किनारे पर जंजीबार, मारिशस इत्यादि जहाजी बेड़ो को सामग्री लेने के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। वास्तव में युद्ध के बाद उत्तरी भाग के अलावा अधिकांश अफ़्रीक़ा ब्रिटेन के अधिकार में आजाने से उस भूखंड के तीन समुद्र-तटों पर उसका कोई प्रतिस्पर्धी अब नहीं रहा। लाल समुद्र के दक्षिणी सिरे के समीप पेरिम द्वीप को सन् १७०९ में ब्रिटेन ने फ़्रांस से और सीलोन सन् १७९६ में डचों से छीन लिया था। सीलोन का शासन भारत के

साथ नहीं बल्कि विलायत की पार्लमेंट के औपनिवेशिक विभाग द्वारा सीधा होता है। अदन की मरुभूमि में सन् १७३९ में उन्होंने एक मज़बूत दीवार खड़ी की। स्वेज की नहर व अदन भारत की रक्षा के पूर्वी नाके हैं। स्वेज़ की नहर के लिए ही अंग्रेजों को इजिप्ट के झगड़ों को निपटाना पड़ता है। आगे पीछे इजिप्ट के स्वतंत्र होने पर यदि स्वेज़ की नहर हाथ से निकल गई तो भारत की रक्षा करने के लिए पूर्वी समुद्रों में जहाजी बेड़ों का पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। इसलिए सिंगापुर में एक बड़ा जहाजी अड्डा तैयार किया जा रहा है। यह सिंगापुर मलय प्रायद्वीप के दक्षिणी सिरे पर है। इस प्रायद्वीप को सन् १८१९ में लार्ड हेस्टिंग्ज ने डच लोगों से लेलिया था। इस प्रायद्वीप के पश्चिमी तट पर पहले पिनाङ्ग और मलाका के बन्दरगाहों पर पुर्त्तगीज़ों का अधिकार था। लेकिन सिंगापुर के सामने उनका कुछ भी महत्व नहीं रह गया। सिंगापुर में जहाजी अड्डा तैयार होते ही चीन, जापान, आस्ट्रेलिया व समग्र पेसिफिक महासागर तथा उसके टापुओं पर अंग्रेजों का प्रभाव पड़ेगा। उसके आगे उत्तर-अमरीका में, दक्षिण म जमैका इत्यादि द्वीप ब्रिटिश औपनिवेशिक विभाग के शासनाधीन हैं। उत्तर में कनाडा का स्वतंत्र ब्रिटिश उपनिवेश है। इन सभी स्थानों के समुद्री मार्गों पर अधिकार रखने में सरकार की दक्षता का परिचय मिलता है।

इग्लैंड के जिन उपनिवेशों का प्रसार पृथिवी पर हुआ है उनमें आज कितने ही वर्षों से अनेक भारतीय लोग विभिन्न उद्योग-धंधों के सहारे जा बसे हैं और वे उपनिवेशों में बसे हुए यूरोपीयों की बराबरी के अधिकार उक्त देशों में चाहते हैं।

लेकिन यूरोपीय उपनिवेशोंवाले भारतीय प्रवासियों को बराबरी के नाते के अधिकार नहीं देते, इससे अनेक पेंचीदे प्रश्न उपस्थित होते हैं और उनसे ब्रिटिश-साम्राज्य का शासन बड़ा जटिल हो हा जाता है। विशेषतः दक्षिण व पूर्व अफ्रीका में भारतीय-प्रवासियों की बस्ती अधिक है। इसलिए वहाँ यूरोपियों आर भारतीय-प्रवासियों के अनेक विषयों के झगड़े खड़े होते हैं। उपनिवेशों के भीतरी शासन में दख़ल देने का अधिकार ब्रिटिश सरकार को न होने से कई मौक़ो पर उनकी स्थिति बड़ी जटिल हो जाती है। इधर उपनिवेशवालों का जी दुखाया नहीं जा सकता और उधर भारतीयों के योग्य अधिकारों की रक्षा करने की जिम्मेदारी पूरी नहीं हो पाती। ब्रिटिश-सरकार जब-तब ऐसी अड़चन में पड़ जाती है। पूर्व-अफ्रीका में केनिया नाम का एक उपनिवेश है। इस प्रदेश में बहुत पहले से भारतीय रहते हैं। पहले यह भू भाग जर्मनी के अधिकार में था, युद्ध के बाद यह अंग्रेज़ों को मिल गया। केनिया का यह उपनिवेश भारतीयों के बसने के लिए अलग रखने की माँग भारतीयों ने सरकार से की थी, लेकिन सरकार ने उसे नामंज़ूर किया और केनिया के उत्तम भूभाग यूरोपीयों के बसाने के लिए अलग रखे गये हैं। इस मामले में भारतीयों और सरकार में बड़ी अनबन हो गई। साराश यह कि ब्रिटिश-साम्राज्य के शासन में जो जटिल प्रश्न किसी प्रकार उत्पन्न हो जाते हैं उनकी कल्पना इस उदाहरण से की जा सकती है।

८—भारत की विद्योन्नति—साम्राज्य का विस्तार, शासन, व्यापकत्व इत्यादि की जानकारी भारतीय लोगों को लार्ड कर्ज़न के ज़माने से विशेष रूप से होने लगी। विभिन्न विश्वविद्यालयों

म यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी। इसके अलावा प्रतिवर्ष अधिकाधिक संख्या में भारतीय विद्यार्थी इग्लैंड, अमरीका, जर्मनी, फ्रांस इत्यादि विदेशों में जाने से भारतीय जनता की दृष्टि विस्तृत हुई। तरुणों में उत्साह की वृद्धि हुई और वे अपने अधिकारों को जानने लगे। ऐसी स्थिति में लार्ड कर्जन ने विद्यार्थियों का नियंत्रण करने के लिए युनिवर्सिटी-एक्ट अर्थात् भारत के समस्त विश्वविद्यालयों के लिए एक नवीन कानून बनाया। इस एक्ट के द्वारा सब की व्यवस्था व देख-रेख एक सी रख उसका बहुत कुछ काम सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों की भावना बदल गई और उन सरकारी स्कूलों और युनिवर्सिटियों में लोक हित पोषक शिक्षा का अभाव उन्हें देख पड़ने लगा। लोग शिक्षा के विषय को पूर्ण रूप से अपने अधीन करने के लिए तत्पर हुए। इसका प्रारम्भ पहले बंगाल म हुआ और नेशनल एज्यूकेशन अर्थात् राष्ट्रीय शिक्षा की स्वतंत्र संस्था स्थापित होने लगी। लेकिन इसके साथ ही साथ राजद्रोह का प्रसार होता देख सरकार ने ऐसी संस्थाओं पर अपना नियंत्रण कुछ काल तक अधिक रक्खा। बाद को लार्ड हार्डिंज ने लोक क्षोभ का शमन करने के लिए जो अनेक उपाय किये उनमें उसने लोक शिक्षा पर से सरकारी सख्ती बहुत कुछ हटा दी। मिसेज बीसेंट का थियासफी के द्वारा लोक शिक्षा का उद्योग बहुत दिनों तक जारी रहने से बनारस में उसका एक सेंट्रल हिन्दू-कालेज बहुत प्रसिद्ध हुआ। इस संस्था के क्षेत्र को और भी अधिक विस्तृत करके वहाँ हिन्दू-युनिवर्सिटी स्थापित करना और उसमें हिन्दू धर्म की व अन्य विषयों की शिक्षा यथेच्छ रीति से देने के उद्देश से पंडित मदन-

मोहन मालवीय इत्यादि कितने ही धर्माभिमानियों ने चन्दे की बड़ी बड़ी रक़में एकत्र कीं और सरकार की परवानगी लेकर सन् १९१५ में बनारस-हिन्दू-युनिवर्सिटी स्थापित की। यह युनिवर्सिटी बड़ी उन्नति कर रही है। इसी नमूने का मुसलमानों का एक स्वतन्त्र विद्यालय अलीगढ़ में था। उसका क्षेत्र बढ़ाकर मुसलमानों ने भी चंदा एकत्र कर अपनी अलीगढ़ की मुस्लिम युनिवर्सिटी स्थापित की ( सन् १९२० )। अर्थात् इन दो सरकार-सम्मत युनिवर्सिटियों का अधिकांश काम लोगों को मिला।

इधर इसी समय यूरोप में महायुद्ध शुरू हुआ। उसका प्रभाव संसार के सभी राष्ट्रों पर पड़ा। इससे पृथिवी के जितने भी राष्ट्र थे उनमे अपनी अन्तःस्थिति को सर्वत्र सुलभ रीति से चलाने का प्रयास हुआ। इसी प्रकार व्यापार मार्ग एवं व्यापार के साधनों की वाढ़ स्थान-स्थान में होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों की चर्चा भी खुलकर होने लगी। इससे प्रत्येक राष्ट्र में नवीन जागृति हुई, अपनी स्थिति व अधिकारों की रक्षा का उत्साह बढ़ा और स्वयं-निर्णय के तत्त्व के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र को अपने शासन को सँभालने का अधिकार मिला। वास्तव में यदि देखा जाय तो इसकी जड़ युद्ध के बंद होने पर ही जमी। लीग-आव-नेशन्स नाम का एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ स्थापित किया गया। प्रबल राष्ट्रों ने यह निश्चय किया कि अब से आगे सभी राष्ट्र अपने झगड़ों का निर्णय पहले इस संघ-द्वारा करालें, और उसका निर्णय हुए बिना कोई राष्ट्र युद्ध न करे। तदनुसार आजकल इस राष्ट्र की स्थापना हुई है और वर्त्तमान अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का निर्णय

इसी संस्था के द्वारा होता है। इससे किसी नये युद्ध का अचानक प्रारंभ हो जाना बहुत कम संभव है। इस संघ में भारत का भी एक प्रतिनिधि है। इस योजना से भी विभिन्न देशों में नई राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न हो गई है और उसका परिणाम भारत में भी व्यक्त हुआ है।

इस स्वयं निर्णय के तत्त्व पर भारत में भी कितने ही महत्त्व के प्रश्न खड़े हो रहे हैं। गान्धी द्वारा सरकारी स्कूलों का बहिष्कार होने पर, राष्ट्रीय शिक्षा की अनेक संस्थाएँ व शालाएँ स्थान-स्थान पर खुलीं। धन का अभाव होने से यद्यपि ये संस्थाएँ ठीक-ठीक न चल सकीं, तथापि इनसे लोकमत की अनुकूलता दिखाई पड़ती है। पुना में तिलक महाविद्यालय और अहमदाबाद में गुजरात-विद्यापीठ राष्ट्रीय संस्थाएँ हैं। आर्य-समाज द्वारा कागड़ी, जालंधर इत्यादि स्थानों में स्थापित 'गुरुकुल' संस्थाएँ भी राष्ट्रीय पद्धति पर चल रही हैं। इससे सम्पूर्ण लोक शिक्षा के विषय में सरकार ने अपनी पहले की नीति बहुत कुछ बदलकर जनता की माँगों को अधिकांश में स्वीकृत किया है। ढाका, रंगून, पटना, लखनऊ, दिल्ली, नागपुर, मैसूर, आगरा व हैदराबाद की उस्मानियाँ युनिवर्सिटियाँ स्थापित हो गई हैं तथा अन्य स्थानों में भी खुलने की चर्चा हो रही है। इसी विषय में किन्तु भिन्न प्रकार का एक और उद्योग रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विश्व-भारती है। गांधी व रवीन्द्रनाथ इन दोनों के प्रयत्नों द्वारा प्राच्य व पाश्चात्य संस्कृतियों का मेल कराकर समस्त भूमंडल की मानव जातियों में समभाव और प्रेम भाव उत्पन्न किया जा रहा है। इन दोनों के कार्यों में अन्तर केवल

माहन मालवीय इत्यादि कितने ही धर्माभिमानियों ने चन्दे की बड़ी बड़ी रक़मे एकत्र कीं और सरकार की परवानगी लेकर सन् १९१५ में बनारस-हिन्दू-युनिवर्सिटी स्थापित की। यह युनिवर्सिटी बड़ी उन्नति कर रही है। इसी नमूने का मुसलमानों का एक स्वतंत्र विद्यालय अलीगढ़ में था। उसका क्षेत्र बढाकर मुसलमानों ने भी चंदा एकत्र कर अपनी अलीगढ की मुस्लिम युनिवर्सिटी स्थापित की (सन् १९२०)। अर्थात् इन दो सरकार-सम्मत युनिवर्सिटियों का अधिकांश काम लोगों को मिला।

इधर इसी समय यूरोप में महायुद्ध शुरू हुआ। उसका प्रभाव संसार के सभी राष्ट्रों पर पड़ा। इससे पृथिवी के जितने भी राष्ट्र थे उनमें अपनी अन्तःस्थिति को सर्वत्र सुलभ रीति से चलाने का प्रयास हुआ। इसी प्रकार व्यापार-मार्ग एवं व्यापार के साधनों की बाढ़ स्थान-स्थान में होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों की चर्चा भी खुलकर होने लगी। इससे प्रत्येक राष्ट्र में नवीन जागृति हुई, अपनी स्थिति व अधिकारों की रक्षा का उत्साह बढ़ा और स्वयं-निर्णय के तत्त्व के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र को अपने शासन को सँभालने का अधिकार मिला। वास्तव में यदि देखा जाय तो इसकी जड़ युद्ध के बंद होने पर ही जमी। लीग-आव-नेशन्स नाम का एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ स्थापित किया गया। प्रबल राष्ट्रों ने यह निश्चय किया कि अब से आगे सभी राष्ट्र अपने झगड़ों का निर्णय पहले इस संघ द्वारा करालें, और उसका निर्णय हुए बिना कोई राष्ट्र युद्ध न करे। तदनुसार आजकल इस राष्ट्र की स्थापना हुई है और वर्त्तमान अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ो का निर्णय

धारा के बहने का सतत प्रवाह है। एक समय वह था कि जब आर्य-संस्कृति का फैलाव चीन से पश्चिमी एशिया तक तथा पूर्व एवं पश्चिम के समुद्रों तक पहुँच गया था। जावा द्वीप में बोरो बुडूर में बुद्ध-स्तूप का मन्दिर सन् ईस्वी के ८ वें शतक का भारतीय कला का नमूना है। ऐसी अप्रतिम स्थापत्य-रचनाएँ भूतल पर इनी गिनी ही हैं। साराश यह कि हमारे राष्ट्रीय इतिहास के संशोधन और खोज का कार्य अभी प्रारम्भ हुआ है। यह कार्य प्रस्तुत अंग्रेजी शासन-काल मे शक्य है। अत इसे स्वयं सिद्ध करने की सामर्थ्य प्राप्त करनी चाहिए। ऐसे शान्तिमय काल को प्रस्तुत करने के लिए बादशाह पचम जार्ज के दीर्घ यशस्वी जीवन की कामना करते हुए तुम उनके प्रति अपने चित्त में श्रद्धा रक्खो। अंग्रेज़ी शासन में ज्ञान-ज्योति का विलक्षण प्रकाश देश में फैल रहा है और पाँच हजार मील दूर पर स्थित भाग्यशाली ब्रिटिश राष्ट्र का भारत से सम्बन्ध जुड गया है। आत्मोद्धार की ऐसी सुसंधि बडे भाग्य से ही प्राप्त होती है। तुम बडे होने पर राज्य शासकों की सन्तोष-प्रद रीति से सहायता कर उनसे अपनी व अपने देश की उन्नति करा सकते हो। पीछे दिये हुए साद्यन्त इतिहास को पढ़कर यह उपदेश तुम्हें अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। तभी तुम्हारा इतिहास पढना सार्थक होगा।

---

॥ समाप्त ॥

इतना ही है कि गान्धी राजनैतिक मार्ग में है और रवीन्द्रनाथ का उद्योग उभय संस्कृतियों से सम्बद्ध हो रहा है। यूरोपीय एशियाई संस्कृति के परस्पर मेल के लिए 'विश्वभारती' में अनेक वैज्ञानिक विषयों की चर्चा और अध्ययन हो रहा है। इसी प्रकार रसायन-शास्त्र मे प्रफुल्लचन्द्रराय और वनस्पति शास्त्र मे जगदीशचन्द्र बोस के नवीन अनुसंधान पश्चिमी देशों में भी मान्य हो रहे हैं। इससे ब्रिटिश साम्राज्य मे भारत की वियोन्नति कैसी हो रही है—उसकी कल्पना की जा सकती है। संसार सभी ओर आगे बढ़ रहा है, वह कभी पीछे नहीं हट सकता, इसी बात की शिक्षा हमें इतिहास से मिलती है।

वास्तव मे यहाँ तक जिस वृत्तान्त का उल्लेख किया गया वह मुख्यत राजनैतिक ही है। परन्तु किसी भी देश का सागोपांग इतिहास लिखना अर्थात् उसमे राजकीय विषय, विद्या, कला, साहित्य, भाषा, धर्म, व्यापार, समाज इत्यादि अनेक विषयों का समावेश होना चाहिए। लेकिन ऐसे सम्पूर्ण इतिहास का वर्णन करना इस पुस्तक का उद्देश नहीं है। राष्ट्र के विचारवान पुरुष अपनी वक्तृताओं-द्वारा, लेखों द्वारा व उद्योगों-द्वारा जनता को सन्मार्ग का प्रदर्शन करते हैं। इस दृष्टि से पहले दी ग नामावली मे डाक्टर भांडारकर, हरिनारायण आपटे, राजा राम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, बंकिमचन्द्र चटर्जी, दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, राजवाड़े इत्यादि के नाम इतिहास में चिरस्मरणीय हैं।

१—इतिहास-ज्ञान का निष्कर्ष—बालको, तुम्हारा इतिहास यहाँ समाप्त हुआ। परन्तु इतिहास इतना विस्तृत विषय है कि उसका अंत कभी नहीं हुआ। इतिहास मनुष्य की विचार

धारा के बहने का सतत प्रवाह है। एक समय वह था कि जब आर्य संस्कृति का फैलाव चीन से पश्चिमी एशिया तक तथा पूर्व एवं पश्चिम के समुद्रों तक पहुँच गया था। जावा द्वीप में बोरो बुडर मे बुद्ध-स्तूप का मन्दिर सन् ईस्वी के ८ वें शतक का भारतीय कला का नमूना है। ऐसी अप्रतिम स्थापत्य-रचनाएँ भूतल पर इनी गिनी ही हैं। साराश यह कि हमारे राष्ट्रीय इतिहास के संशोधन और खोज का कार्य अभी प्रारम्भ हुआ है। यह कार्य प्रस्तुत अंग्रेजी शासन-काल में शक्य है। अत इसे स्वयं सिद्ध करने की सामर्थ्य प्राप्त करनी चाहिए। ऐसे शान्तिमय काल को प्रस्तुत करने के लिए बादशाह पचम जार्ज के दीर्घ यशस्वी जीवन की कामना करते हुए तुम उनके प्रति अपने चित्त में श्रद्धा रक्खो। अंग्रेजी शासन में ज्ञान-ज्योति का विलक्षण प्रकाश देश में फैल रहा है और पाँच हजार मील दूर पर स्थित भाग्यशाली ब्रिटिश राष्ट्र का भारत से सम्बन्ध जुड गया है। आत्मोद्धार की ऐसी सुसंधि बड़े भाग्य से ही प्राप्त होती है। तुम बडे होने पर राज्य शासकों की सन्तोप-प्रद रीति से सहायता कर उनसे अपनी व अपने देश की उन्नति करा सकते हो। पीछे दिये हुए साद्यन्त इतिहास को पढकर यह उपदेश तुम्हें अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। तभी तुम्हारा इतिहास पढना सार्थक होगा।

---

॥ समाप्त ॥

# १—भारत के गवर्नर-जनरल

इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधान मंत्रियों के नाम वाम पार्श्व में दिये गये हैं।

| | | |
|---|---|---|
| लार्ड नार्थ | १ वारेन हेस्टिंग्स | १७७४-८५ |
| | २ लार्ड कार्नवालिस | १७८५-९३ |
| | ३ सर जान शोर | १७९३-९८ |
| छोटा पिट | ४ लार्ड वेलेज़ली | १७९८-१८०५ |
| | ५ लार्ड कार्नवालिस ( पुन ) | १८०५-मृ० |
| | ६ सर जार्ज बार्लो | १८०५-०७ |
| | ७ लार्ड मिन्टो | १८०७-१३ |
| केनिङ्ग | ८ लार्ड हेस्टिंग्स | १८१३-२३ |
| | ९ लार्ड एमहर्स्ट | १८२३-२८ |
| | १० लार्ड विलियम बेंटिंक | १८२८-३५ |
| मेलबोर्न | ११ सर चार्लस मेटकाफ | १८३५-३६ |
| | १२ लार्ड आक्लैंड | १८३६-४२ |
| | १३ लार्ड एलिनबरो | १८४२-४४ |
| लार्ड रेसल | १४ लार्ड हार्डिंज | १८४४-४८ |
| | १५ लार्ड डलहौसी | १८४८-५६ |
| लार्ड पामर्स्टन | १६ लार्ड केनिङ्ग | १८५६-६२ |
| लार्ड डर्बी | १७ लार्ड एल्गिन | १८६२-६३ |
| | १८ लार्ड लारेंस | १८६३-६९ |
| ग्लेडस्टन | १९ लार्ड मेयो | १८६९-७२ |
| | २० लार्ड नार्थब्रुक | १८७२-७६ |

| | | |
|---|---|---|
| डिजरायली उर्फ बीकन्सफील्ड | २१ लार्ड लिटन | १८७६-८० |
| ग्लेडस्टन | २२ लार्ड रिपन | १८८०-८४ |
| | २३ लार्ड डफरिन | १८८४-८८ |
| सालसबरी | २४ लार्ड लैंसडाउन | १८८८-९४ |
| रोजबरी | २५ लार्ड एल्गिन | १८९४ ९८ |
| सालसबरी | २६ लार्ड कर्जन | १८९८-१९०५ |
| बनर्मन | २७ लार्ड मिन्टो | १९०५-१० |
| एस्किथ | २८ लार्ड हार्डिंञ्ज | १९१०-१५ |
| लायड जार्ज | २९ लार्ड चेम्सफर्ड | १९१६ २१ |
| बाल्डविन मेकडानल्ड | ३० लार्ड रेडिंग | १९२१-२६ |
| बाल्डविन | ३१ लार्ड अर्विन | १९२६-चालू |

---

## २—भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध घटनाओं की सूची और उनका समय

| | | | |
|---|---|---|---|
| महम्मद बिनकासिम की चढ़ाई | ७१२ | सीकरी की लड़ाई | १५२८ |
| महमूद की सोमनाथ पर चढ़ाई | १०२४ | बक्सर की लड़ाई | १५२९ |
| स्थानेश्वर की लड़ाई | ११९३ | कन्नौज की लड़ाई | १५४० |
| बहामनी राज्य की स्थापना | १३४७ | सरहिन्द की लड़ाई | १५५५ |
| तैमूर की चढ़ाई | १३९८ | पानीपत की लड़ाई दूसरी | १५५६ |
| वास्को डागामा की भारत पहुँच | १४९८ | तालिकोट | १५६५ |
| पानीपत की पहिली लड़ाई | १५२६ ई० पू० | | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| सर टामसरो का दौत्य | १६१६ | निजाम की मृत्यु और अब्दाली | |
| शिवाजी का जन्म | १६२७ | की चढ़ाई पहली | १७४८ |
| अंबोयना में कतल आम | १६२३ | बादशाह की मराठों के साथ संधि | १७५० |
| अहमदनगर का पतन | १६३७ | अब्दाली की दूसरी चढ़ाई | १७५१ |
| मद्रास की स्थापना | १६३९ | आर्काट का घेरा | १७५१ |
| अफजलखाँ का बध | १६५९ | प्लासी की लड़ाई | १७५७ |
| शिवाजी का सूरत पर हमला | १६६४ | अब्दाली की चढ़ाई चौथी | १७५९-६१ |
| शिवाजी की दिल्ली यात्रा | १६६६ | दत्ताजी सिंधिया का बध | १७६० |
| बम्बई अंग्रेजों के अधिकार में | १६६८ | उद्गीर की लड़ाई | १७६० |
| शिवाजी का राज्याभिषेक | १६७४ | पानीपत की लड़ाई तीसरी | १७६१ |
| शिवाजी की मृत्यु | १६८० | राक्षस भुवन की लड़ाई | १७६३ |
| औरंगजेब का दक्षिण पर हमला | १६८२ | पाटन की कतल | १७६३ |
| बीजापुर का पतन | १६८६ | बक्सर की लड़ाई | १७६४ |
| गोलकुंडा का पतन | १६८७ | मराठों का दिल्ली पर अधिकार | १७७१ |
| संभाजी का बध | १६८९ | पहिले माधवराव की मृत्यु | १७७२ |
| कलकत्ते में फोर्ट विलियम बना | १६९८ | नारायणराव का बध | १७७३ |
| राजाराम की मृत्यु | १७०० | रेग्युलेटिङ्ग एक्ट | १७७३ |
| औरङ्गजेब की मृत्यु | १७०७ | फाक्स और पिट के बिल | १७८३-८४ |
| बालाजी विश्वनाथ पेशवा | १७१३ | महादाजी की मृत्यु | १७९४ |
| बालापुर की लड़ाई | १७२० | खर्डा की लड़ाई | १७९५ |
| निजामुल्मुल्क की राज्यस्था | १७२३ | नाना फडनावीस की मृत्यु | १८०० |
| पालखेड की लड़ाई | १७२८ | रणजीतसिंह के साथ अंग्रेजों | |
| डभोई की लड़ाई | १७३१ | की संधि | १८०९ |
| भूपाल की लड़ाई | १७३८ | पेशवाई का अंत | १८१८ |
| नादिरशाह की चढ़ाई | १७३८ | फौजों का बलवा | १८५७ |
| बसई पर मराठों का अधिकार | १७३९ | महाराणी की विज्ञप्ति | १८५८ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| महाराणी विक्टोरिया की मृत्यु | १९०१ | फीरोजशाह मेहता मृ० | १९१७ |
| मार्लेमिंटो सुधार | १९०९ | स्वराज्य का दान | १९१७ |
| बादशाह एडवर्ड की मृत्यु | १९१० | बा० ग तिलक मृ० | १९२० |
| पंचमजार्ज की गद्दी | १९११ | प्रतिनिधि सभा की स्था० | १९२१ |
| दादाभाई नौरोजी की मृत्यु | १९१५ | चित्तरंजनदास की मृ० | १९२५ |
| गो० कृ० गोखले की मृत्यु | १९१६ | सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की मृ० | १९२५ |

---

## २—युद्ध-सूची

१—औरङ्गजेब की दक्षिण पर चढ़ाई सन् १६८२—१७०७

२—फ्रेंच-युद्ध पहला १७४४—१७४८

मद्रास पर फ्रेंच का कब्जा १७४५, २ एक्सलाशेपल की सन्धि १७४८

३—कर्नाटक-युद्ध पहला १७४९—१७५४

१—अम्बूर की लड़ाई १७४९, आर्काट का घेरा १७५१

२—कावेरी पाक श्रीरङ्ग और बाहर की लड़ाई १७५२

४—फ्रेंच युद्ध दूसरा १७५६—६३

१—वादिवाश की लड़ाई १७६०, पांडिचरी का घेरा और कब्जा १७६१

५—मीरकासिम से युद्ध १ घेरिया की लड़ाई १७६३, बक्सर की लड़ाई १७६४

६—अंग्रेज-मैसूर युद्ध पहला १७६७-

७—अंग्रेज-रुहेला युद्ध १७७४

८—अंग्रेज-मराठा युद्ध पहला १७७५—१७८२

१—सूरत की सन्धि १७७५, २—आरास की लड़ाई १७७५

३—पुरन्दर की सन्धि १७७६, ४—कारला की लड़ाई १७७९

५—बडगाँव की सन्धि १७७९, ६—सालबाई की सन्धि १७८२

९—अंग्रेज-मैसूर-युद्ध दूसरा १७८०—१७८४

१—पोर्टोनोवो २—शिवलिंग गढ़ की लड़ाइयाँ १७८१, ३—मंगलोर का घेरा १७८४, ४—मङ्गलोर की सन्धि १७८४

१०—अंग्रेज-मैसूर युद्ध तीसरा १७९०—१७९२

१—आरिकेर की लड़ाई १७९१, २—श्रीरङ्गपट्टन की सन्धि १७९२

११—अंग्रेज-मैसूर युद्ध चौथा, सन् १७९९

१—मलवल्ली की लड़ाई, श्रीरङ्गपट्टन की लड़ाई १७९९

१२—अंग्रेज मराठा युद्ध दूसरा सन् १८०३—१८०५

१—वसई की सन्धि १८०२, २—अहमदनगर पर कब्जा, ३—असाई की लड़ाई ४—अलीगढ़ की लड़ाई ५—दिल्ली की लड़ाई, ६—लासवाड़ी की लड़ाई, ७—आडगाँव की लड़ाई, १८०३, ८—सिन्धिया से सर्जे अजनगाँव की सन्धि ९—भोंसले के साथ देव गाँव की सन्धि, होल्कर से युद्ध, १०—दिल्ली की लड़ाई १८०४, ११—डीग, १२—फर्रुखाबाद की लड़ाई

१८०४, और १३—भरतपुर का घेरा १८०५

१३—नैपाल युद्ध सन् १९१३—१९१६,

१—कलुङ्ग का घेरा १८१४, २—मालोन पर कब्जा १८१५, ३—मकानपुर की लड़ाई १८१६, ४—सेगाली की सधि १८१६

१४—पिंडारी युद्ध १८१० १८१८

१५—अंग्रेज-मराठा युद्ध तीसरा १८१७ १८१८

१—खड़की की लड़ाई १८१७, २—कोरेगाँव की लड़ाई १८१८, ३—आष्टी की लड़ाई १८१८, ४—महीदपुर की लड़ाई १८१७, ५—सीतावर्डी की लड़ाई १८१७, ६—नागपुर सधि १८१७

१६—बरमी युद्ध पहला १—डोनोबू की लड़ाई १८२५, २—मेलोन और ३—प्रोम की लड़ाइयाँ, ४—यादेबू की सधि १८२६

१७—भरतपुर-युद्ध १८२६

१८—अफगान-युद्ध पहला १८३९ १८४२

१९—सिंधी अमीर युद्ध १—मियानी और दुबा में लड़ाइयाँ, सन् १८४३

२०—सिंधिया युद्ध-१—महाराजपुर और २—पन्यार की लड़ाइयाँ सन् १८४३

२१—सिक्ख युद्ध पहला १८४५-१८४६

१—मुडकी, २—फीरोजशहर १८४५, ३—अलीवाल और ४—सोब्रो की लड़ाइयाँ १८४६, ५—लाहोर की सधि १८४६

२२—सिक्ख युद्ध दूसरा, सन् १८४८-१८४९

१—रामनगर १८४८, २—चिलियाँवाला और ३—गुजरात १८४९

२३—बरमी युद्ध दूसरा १—रगून, २—बेसीन की लड़ाइयाँ, ३—दक्षिणी

*Printed by K. P. Dar at the Allahabad Law Journal Press, Allahabad*

*Published by Sahitya Bhawan Limited, Allahabad*